भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

Peer Reviewed

ISSN 0973-9777
GISI Impact Factor 3.5628
वर्ष-१० अंक-५
सितम्बर-अक्टूबर २०१६

एम.पी.ए.एस.वी.ओ.
द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य
सहसंयोजन से प्रकाशित

वर्ष-१०
अंक-५
सितम्बर-अक्टूबर २०१६

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. मंजु वर्मा, डॉ. अमित जोशी, डॉ. अर्चना तिवारी, डॉ. सीमा रानी, डॉ. सुमन दुबे, डॉ. सच्चिदानंद द्विवेदी, डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री, पाल सिंह, डॉ. पौलमी चटर्जी, डॉ. राम अग्रवाल, डॉ. शीला यादव, डॉ. प्रतीक श्रीवास्तव, जय प्रकाश मल्ल, डॉ. त्रिलोकीनाथ मिश्र, प्रो. अंजली श्रीवास्तव, विजय कुमार प्रभात, डॉ. ममता अग्रवाल, डॉ. जे.पी. तिवारी, डॉ. योगेश मिश्रा, डॉ. निर्मला देवी, डॉ. आरती यादव, डॉ. कविता सिंह, डॉ. सुभाष मिश्र, डॉ. पूनम सिंह, डॉ. रीता मौर्या, डॉ. सौरभ गुप्ता, डॉ. श्रुति विग

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), माजिद करीमजादेह (ईराक), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी, भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1300+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387,

टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 सितम्बर 2016

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-10 अंक-5 सितम्बर-2016

शोध प्रपत्र

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी की भूमिका -डॉ. निशा यादव 1-4
श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवतगीता में निहित पारिवारिक मूल्यों का वर्तमान संदर्भ -डॉ. बी.जे. पटेल 5-9

दलित चेतना -दशा एवं दिशा का वर्तमान परिदृश्य -डॉ. मंजु वर्मा 10-14
यात्रा साहित्य की प्रासंगिकता और हिन्दी में विकास -डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी 15-21

लोक-बोलियों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक साम्यता -डॉ. उत्तम पटेल 22-27
रामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड की विशिष्टता -डॉ. एम. रघुनाथ 28-32

धूमिल की कविताओं में राजनीतिक यथार्थ -हरिकेश मीना 33-35
भीष्म साहनी का तमस उपन्यास : एक विश्लेषण -पाल सिंह 36-41

प्राचीन विधि और न्याय-व्यवस्था का बदलता परिदृश्य -डॉ. गीता यादव 42-45
कृषि उत्पादकता में महिला किसानों की सहभागिता, चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ [एक अध्ययन] -डॉ. प्रिया सोनी खरे 46-49

"पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोश अन्तर्गत हेल्प लाइन के प्रभाव का अध्ययन
छ.ग. पंचायत राजव्यवस्था के परिदृश्य में -प्रकाश कुमार छाटा 50-60

शिक्षा का अर्थ : विवेकानन्द -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 61-62
महात्मा गांधी के आर्थिक विचार -प्रो. अंजली श्रीवास्तव 63-65

भारत में आयकर -मनोज कुमार साहु 66-69
वर्तमान पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव -संजीव सराफ एवं अरुण कुमार गुप्त 70-74

गुप्तकाल में चित्रकला एक सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम : एक खोज -राम कुमार 75-81
"प्राचीन स्थल- शृंग्वेरपुर के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों का अवलोकन -डॉ. ज़ेबा इस्लाम 82-84

वैदिक साहित्य में ऋतु-विमर्श -डॉ. सुमन दूबे 85-87
नाट्यगृहभूमि: -विजय कुमार 88-90

वेदान्त दर्शन की शिक्षा तथा वर्तमान शिक्षा में इसकी उपादेयता -प्रियंका सिंह 91-96
वैदिक विवाह संस्था की अवधारणा -डॉ. शारदा कुमारी 97-101

वेदों में वर्णित अन्त्येष्टि संस्कार और पर्यावरण -डॉ. सुमन दूबे 102-105
"मम्मट विरचित काव्य प्रयोजन को समझना और उसका निदर्शन विद्वानों के अनुकूल करना" -डॉ. मनीषा शुक्ला 106-111

प्लेटो का राजनीतिशास्त्र -डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री 112-114
लोक कलायें और लोक परम्परायें -डॉ. योगेश मिश्र 115-127

शैक्षणिक पुस्तकालय में पुस्तकालय स्वचालन एवं उपयोगिता -संजीव सराफ एवं अरुण कुमार गुप्त 128-132
आसावरी थाट के अप्रचलित राग और बंदिशें -डॉ. रूपाली जैन 133-139

भारतीय वित्तीय बाजार -मनोज कुमार साहु 140-143
प्राचीन भारतीय चिंतन एवं मूल्यों के द्वारा वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक पुनरूत्थान -श्रुति विग 144-148

जनपक्षधरता की गूँजती आवाजें [हिन्दी गज़ल के परिप्रेक्ष्य में] -डॉ. ममता चौरसिया 149-151
आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी के संदर्भ में -श्रीमती पूनम आर्या 152-155

कवि जायसी की रचनाओं में नारी विमर्श -डॉ. अंशुमाला मिश्रा 156-159

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,1-4
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 जुलाई 2016

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी की भूमिका

डॉ. निशा यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में नारी की भूमिका* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *निशा यादव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिन्दी साहित्य जगत् में विरले ही कवि, लेखक अथवा रचनाकार हुए हैं जिनका नाम स्कूली शिक्षा से लेकर शिक्षा के उच्चतर सोपानों तक हर पाठक की ज़ुबान पर चढ़ा रहता है, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की पहचान ऐसे ही विरल कवि के रूप में विद्यमान है जिन्होंने साहित्यजगत् में अपनी कालजयी कृतियों के माध्यम से लेखन की अमिट छाप छोड़ी है। मैथिलीशरण गुप्त की पहचान जितनी एक राष्ट्र कवि के रूप में है उससे ज्यादा इसमें है कि उन्होंने अपनी काव्य रचना का विषय उन नारी पात्रों को बनाया जो समाज में चिर उपेक्षित थीं। गुप्त जी की प्रारम्भिक यात्रा के स्रोत प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महावीर प्रसाद द्विवेदी रहे हैं। इसे गुप्त जी ने निम्न पंक्तियों के माध्यम से स्वीकार किया है। ''करते तुलसीदास भी कैसे मानस-नाद?/ महावीर का यदि नहीं मिलता उन्हें प्रसाद।[१]

जिस समय महावीर द्विवेदी खड़ी बोली को काव्य-भाषा के रूप में स्थिरता दिलाने के लिये अपने विरोधियों का सामना कर रहे थे, उस समय गुप्त जी ने द्विवेदी जी के दिशा-निर्देशन में हिन्दी साहित्य के खड़ी बोली के महाकाव्य 'साकेत' की रचना की और इसकी सफलता उन सब आलोचकों के मुंह पर एक तमाचा साबित हुई। गुप्त जी ने अपने काव्य का विषय उन नारी पात्रों को बनाया है जो यह तो किसी भर्त्सना का शिकार रही है या जिनका नाम इतिहास के पन्नों में कहीं गुम हो गया है। प्राचीन वाङ्मय के अनेक ऐसे पात्रों को जिनके केवल नाम का ही उल्लेख है, मैथिलीशरण गुप्त ने एक भरा पूरा व्यक्तित्व प्रदान कर दिया। उर्मिला और यशोधरा, चैतन्य महाप्रभु की सहधर्मिणी विष्णुप्रिया और एक सीमा तक तुलसीदास की पत्नी रत्नावली और कार्ल मार्क्स की सहचरी जयती इसके महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।[२] गुप्त जी द्वारा रचित साकेत, महाकाव्य रामकथा पर आधारित है। जिसका मूल उद्देश्य रामकथा की उपेक्षिता 'उर्मिला' को महिमा मण्डित करना ही माना जा सकता है। उर्मिला को साकेत में कवि ने त्याग एवं धैर्य की सजीव प्रतिमा के रूप में चित्रित किया है जिससे नारी सुलभ सुकुमारता एवं शालीनता भी विद्यमान है। साकेत की उर्मिला

* असिस्टेंट प्रोफेसर (आमंत्रित) कन्या गुरुकुल महाविद्यालय देहरादून [गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय] हरिद्वार (उत्तराखण्ड) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पति-परायण अनुरागिनी पत्नी है, वह उनके पथ का विघ्न नहीं बनना चाहती। वह कहती है, ''हे मन!, तू प्रिय पथ का विघ्न न बन।[३]

दूसरी तरफ गुप्त जी ने सदियों से भर्त्सना की शिकार कैकेई को भी विशिष्ठ पात्र के रूप में उभारा है। कवियों ने इस पात्र को अपने- अपने ढंग से देखा है, किसी ने कैकेई को खलनायिका के रूप में चित्रित किया तो किसी ने उसके साथ पूर्ण सहानुभूति रखते हुये मानव स्वभाव को दोषी ठहराया, कैकेई को नहीं। ''जिस भरत के लिये उसने ये सारे कुकृत्य किये, उसके द्वारा भर्त्सना पाने पर उसे कृत्य की निस्सारता का बोध नहीं हुआ होगा? अवश्य हुआ होगा, लेकिन अब तक के कवियों की इस ओर दृष्टि नहीं गयी। पाप या गलती करना मनुष्य मात्र के लिये स्वाभाविक है, किन्तु यदि वो अपनी भूल का बोध कर पश्चाताप करता है तो और भी ऊँचा उठ जाता है। कैकेई में इस पश्चाताप की अपार संभावनायें थीं। गुप्त जी ने उन सम्भावनाओं का उपयोग किया है।[४]

तभी तो कैकेई से आघात पाने वाले तथा उच्च सामाजिक और मानवीय मूल्यों के प्रतिमान राम कह उठते हैं, ''सौ बार धन्य वह एक लाल की माई/ जिस जननी ने है जना भरत सा भाई।''[५]

गुप्त जी चूँकि द्विवेदी युगीन कवि हैं और द्विवेदी युग में नारी का वर्णन किसी कल्पना लोक की सुन्दरी के रूप में नहीं किया गया बल्कि नारी के उस रूप का वर्णन किया गया है जो त्याग और धैर्य की मूर्ति है तथा पुरूष के पथ में विघ्न नहीं बनना चाहती बल्कि उसे अपने पथ पर अग्रसर करने के लिये अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करती है। मैथिलीशरण गुप्त का साहित्य जगत में प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब नारी को सिर्फ वासना की वस्तु मात्र समझा जाता था और उसे सामाजिक बन्धनों का लबादा ओढ़ने के लिये मजबूर किया जाता था। गुप्त जी ने अपनी काव्य रचना द्वारा यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि नारी नर से कमजोर नहीं है बल्कि पुरूष ने अपनी सुविधाओं और स्वार्थपूर्तियों हेतु उसे सामाजिक बन्धनों की बेड़ियों में जकड़ दिया है, जैसा कि गुप्त जी ने स्वयं कहा है, ''नरकृत शास्त्रों के बन्धन हैं सब नारी ही को लेकर। अपने लिये सभी सुविधाएं, पहले ही कर बैठे नर।''[६]

मैथिलीशरण गुप्त के नारी पात्र स्वाभिमान से पूर्ण है। 'यशोधरा' में गुप्त जी यशोधरा को श्रद्धा और सम्मान के साथ देखते हैं। यशोधरा भी मानती है कि सिद्धार्थ उनसे कहकर गृह-त्याग करते तो उसे सुख होता, पर उन्होंने ऐसा किया नहीं और इसीलिये वे जब गौतम बुद्ध बनकर नगर में आते हैं तो उनसे मिलने नहीं जातीं और इसीलिये कहती हैं, ''सखि वे मुझ से कहकर जाते। सिद्धि हेतु स्वामी गये यह गौरव की बात। पर चोरी चोरी गये यही बड़ा व्याघात।''[७]

गुप्त जी ने नारी के विविध रूपों का चित्रण अपने काव्य में किया है। कहीं वह कुल-वधु है, तो कहीं गृहस्थ जीवन का भार वहन करती गृहिणी है, कहीं प्रिया है तो कहीं विरहणी, तो कहीं जनसेविका के रूप में समाज के लिये सबकुछ अर्पित कर देने वाले तेजस्विनी नारी है।

''डॉ० हेतु भारद्वाज की यह मान्यता सही है कि गुप्त जी अपने नारी पात्रों को पुरूष के सामने छोटा नहीं होने देते और उनके पात्र आंसू से भीगे आंचल पर संधि पत्र नहीं लिखते।''[८]

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने नारी सम्बन्धी विचारों को अपनी काव्य रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति दी है। समाज में व्याप्त नारी सम्बन्धी समस्याओं तथा कु-रीतियों का गुप्त जी ने खुलकर विरोध किया। स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व नारी की स्थिति समाज में बहुत ही दयनीय थी। अत्याचार के नाम पर वह बहुत सारे अत्याचारों को तो सहती थी लेकिन अधिकार उसके पास नगण्य थे। इस स्थिति का चित्रण गुप्त जी ने अपनी कृति द्वापर में किया है। द्वापर में विधृता के माध्यम से गुप्त जी ने स्वयं अपनी नारी भावना की अभिव्यक्ति की है, ''नर के बांटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आयी?/ मां बेटी या बहिन हाय क्या संग नहीं वह लायी?[९]

'द्वापर' की विधृता को गुप्त जी ने एक तेजस्विनी नारी के रूप में चित्रित किया है जो अन्याय के समक्ष कभी न झुकने का आह्वान करते हुये कहती है, ''जाती हूँ जाती हूँ अब मैं और नहीं रूक सकती। इस अन्याय समक्ष मरूँ मैं कभी नहीं झुक सकती।''

गुप्त जी की नारी भावना 'रंग में भंग' से लेकर 'विष्णुप्रिया' तक विकसित होती रही है। 'भारत-भारती' में भी देश की ह्रासकालीन स्थिति में नारी की दुर्गति पर दुख व्यक्त करते हुये वे नारी-शक्ति की महत्ता का आख्यान करते हैं।

''हमारे समाज के चार प्रमुख शोषित वर्ग आजादी के आन्दोलन के केन्द्र में रहे थे- किसान, हरिजन, मध्यवर्ग और नारियां। इनमें से नारी को मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में लिया। गुप्त जी की कृतियों में नारी पात्र इतिहास और पुराणों की अवहेलित और उपेक्षिता नारियां नहीं है बल्कि उनके माध्यम से गुप्त जी ने तत्कालीन समाज में नारी की जो दुर्दशा और कमजोर हालत थी उसे करूणा के माध्यम से चित्रित किया है। उनकी कृतियों में जितने नारी पात्र केन्द्र में रहे हैं उन्हें मैं इसी दृष्टि से देखता हूँ।''[१०]

गुप्त जी ने अपने काव्य में नारी के पत्नी रूप का वर्णन करते हुये उसे अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने का संदेश दिया है; क्योंकि गुप्त जी मानते हैं कि समाज में व्याप्त अधिकतर कु-रीतियों को नारी को ही भोगना पड़ता है, ''विद्या हमारी भी न तब तक काम में कुछ आयेगी। अर्द्धांगिनियों को भी सुशिक्षा दी न जब तक जायेगी।।''[११]

मैथिलीशरण गुप्त ने अपने काव्य में इस बात को भी स्पष्ट किया है कि कविता का अर्थ सिर्फ मनोरंजन तक ही सीमित नहीं। वह सही अर्थों में कविता तभी है जब उसमें कोई उचित संदेश दिया गया हो। यही कारण है कि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी सभी रचनाओं के माध्यम से कोई न कोई संदेश जनता तक प्रेषित करने का प्रयास किया है। बाल-विवाह, नारी शिक्षा निषेध, अनमोल विवाह आदि को लेकर इनकी दृष्टि सिर्फ कोरी भाववादी नहीं जान पड़ती बल्कि समाज में व्याप्त बुराइयों को निर्मूल करने के लिये एक सीमा तक सामाजिक क्रान्ति को भी सही ठहराते प्रतीत होते हैं। ''इतिवृत्त अथवा घटनाओं के मर्म अथवा उसमें निहित मानव हृदय के स्पन्दन को पहचानने की उनमें अपूर्व क्षमता थी। इनकी दृष्टि यथार्थ पर केन्द्रित रहती थी। 'जयभारत' का 'द्रौपदी वस्त्र हरण', प्रकरण में मैथिलीशरण गुप्त ने गहन-गूढ़ मनोविज्ञान-सामुहिक अवचेतन मनोविज्ञान का आश्रय लिया है। उस दारूण परिस्थिति में द्रौपदी एक ओर भगवान से प्रार्थना करती है और दूसरी ओर शक्तिरूपा नारी के सहज आत्मबल द्वारा दुशासन के पाप-रूग्ण मन में एक प्रकार का अप्रत्याशित संत्रास भी उत्पन्न कर देती है।''[१२]

तथा कहती है, ''रे नर, आगे नरक-वह्नी में तू निज मुख की लालीं देख/ पीछे खड़ी पंचमुख शिव पर नग्न कराला काली देख।''

नारी सम्बन्धी अपने विचारों को व्यक्त करते हुये गुप्त जी ने नारी के सम्पूर्ण जीवन को जिन दो पंक्तियों में व्यक्त किया है, वे उनकी नारी भावना को मार्मिकता से अभिव्यक्त करती है।

''अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी। आंचल में है दूध और आंखों में पानी।।[१३]

नारी की विवशता का यह कितना मार्मिक दृश्य है। पतिवंचिता यशोधरा का जीवन दो धाराओं में बंट गया था। एक का आधार था वात्सल्य (आंचल में दूध) और दूसरे का आधार था पति विरह (आंखों में पानी)। यशोधरा की साधना को गुप्त जी ने गौतम की साधना से श्रेष्ठ चित्रित किया है।

डॉ० कमलाकांत पाठक लिखते हैं, ''माता के रूप में उसने राहुल की जननी का कर्त्तव्य पालन किया, पत्नी के रूप में पति वियोग का संताप भोगा, गृहिणी के रूप में निवृत्त मार्ग की विगर्हणा की और अखण्ड नारी के रूप में वह विनयशील होकर भी आत्मगौरवपूर्ण रही। राहुल के लिये गाती है और गौतम के लिये रोती है।''[१४]

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवरण के निष्कर्षतः यह कह सकते हैं कि गुप्त जी ने अपनी विभिन्न कृतियों के माध्यम से अपने नारी सम्बन्धी विचारों की अभिव्यक्ति की है। नवजागरण की भावना ने जन-मानस में नारी के प्रति सहानुभूति एवं सम्मान की जिस भावना को जागृत किया था, वह कवि के भीतर से इन कृतियों के माध्यम से व्यक्त हुई है।

संदर्भ ग्रंथ

[१]साकेत महाकाव्य -मैथिलीशरण गुप्त
[२]मैथिलीशरण गुप्त -पूनर्मूल्यांकन (डॉ० नगेन्द्र)
[३]साकेत महाकाव्य, चतुर्थ सर्ग, मैथिलीशरण गुप्त
[४]मैथिलीशरण गुप्त -युग और कविता (ललित शुक्ल)
[५]साकेत महाकाव्य, अष्ट सर्ग, मैथिलीशरण गुप्त
[६]पञ्चवटी, प्रबन्धकाव्य, मैथिलीशरण गुप्त
[७]यशोधरा खण्डकाव्य, मैथिलीशरण गुप्त
[८]मधुमति, नवम्बर-दिसम्बर १९८६, पृष्ठ संख्या १४३, मैथिलीशरण गुप्त -युग और कविता (ललित शुक्ल), पृष्ठ संख्या १४०
[९]द्वापर, खण्डकाव्य, मैथिलीशरण गुप्त
[१०]मैथिलीशरण गुप्त -युग और कविता (ललित शुक्ल), पृष्ठ संख्या २२
[११]वही, पृष्ठ संख्या १४०
[१२]मैथिलीशरण गुप्त -पूनर्मूल्यांकन (डॉ० नगेन्द्र), पृष्ठ संख्या ७१
[१३]यशोधरा खण्डकाव्य, मैथिलीशरण गुप्त
[१४]मैथिलीशरण गुप्त -युग और कविता (ललित शुक्ल), पृष्ठ संख्या ३२

सहायक ग्रंथ

विष्णुप्रिया, खण्डकाव्य- मैथिलीशरण गुप्त
हिन्दी साहित्य का इतिहास -(सम्पादक) डॉ० नगेन्द्र
हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास -डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी
मैथिलीशरण गुप्त काव्य-संदर्भ कोष -(सम्पादक) डॉ० नगेन्द्र
साकेत में काव्य, संस्कृति और दर्शन -डॉ० द्वारिका प्रसाद सक्सेना

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,5-9
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 अगस्त 2016

श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवतगीता में निहित पारिवारिक मूल्यों का वर्तमान संदर्भ

डॉ. बी.जे. पटेल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *श्रीरामचरितमानस और श्रीमद्भगवतगीता में निहित पारिवारिक मूल्यों का वर्तमान संदर्भ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *बी.जे. पटेल* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

हमारा भारतीय साहित्य बहुत ही सक्षम एवं समृद्ध है। संसार का सिरमौर ग्रन्थ वही हो सकता है, जिसमें जीवन की उन तमाम समस्याओं या प्रश्नों का समुचित ढंग से हल हो। आज जब पूरी दुनिया अनेकविध समस्याओं से परेशान है, ऐसे में स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान ऐसे ग्रंथों की ओर जाता है; कि जिन ग्रन्थों में जीवन जीने का वाजिब ढंग सिखाया गया हो। भारतीय संस्कृति में 'श्रीरामचरितमानस' और 'श्रीमद्भगवद्गीता' जैसे विश्वप्रसिद्ध मूल्यवान ग्रन्थ हैं, जिनकी कायल पूरी दुनिया है। इन दोनों ग्रंथों में योग्य तरीके से जीवन जीने के वो मार्ग प्रशस्त हैं, जिससे मानवजीवन समुन्नत व उदीयमान हो सकता है। कुछ साहित्य इस तरह का होता है, जो हमेशा प्रासंगिक बना रहता है। उन ग्रन्थों के रचयिता या उद्घोषक सदा के लिये अमर हो जाते हैं। जीवन के सार्वभौम सत्य को जीवंत और गतिशीलता प्रदान करने की दृष्टि से कवि का महत्त्व जितना सर्वोपरि होता है उसका उत्तरदायित्व उतना ही महान। सच्चा कवि विगत का विवेचक, वर्तमान का सूक्ष्म द्रष्टा और आगत का उद्घोषक होता है। उसकी वाणी युग-सत्य को मुखरित करने की विलक्षण-प्रतिभा से मंडित होती है। उसकी प्रतिभा का प्रकाश दिग-दिगन्त व्यापी होता है, जो दिग्भ्रमित मानवता को युग-युगों महनीय आदर्शों की ओर उत्प्रेरित और अग्रसर करता है।[1] सच तो यह है कि इन दोनों ग्रंथों में जीवन-मूल्यों की जो विवेचना की गयी है और जो प्रतिमान निरूपित किये गये हैं, वे सार्वभौमिक और सर्वकालिक हैं। मैंने यहाँ 'श्रीरामचरितमानस' और 'श्रीमद् भगवद्गीता' के कथ्य में निहित पारिवारिक मूल्यों का वर्तमान सन्दर्भ तलाशने की कोशिश की है।

भारत का साहित्य अत्यंत विशाल एवं समृद्ध है। यह वह दर्पण है, जिसमें हमें अपनी सभ्यता एवं संस्कृति के सच्चे स्वरूप की झाँकी दिखाई देती है। यदि कोई भारतीय संस्कृति के दर्शन करना चाहे, तो उसे भारतीय साहित्य का अध्ययन करना चाहिए। हमारे देश की संस्कृति के विकास में रामायण और महाभारत आदि प्रतिनिधि काव्यों ने तथा कालिदास एवं तुलसीदास

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, श्रीमती बी.वी. धाणक आर्ट्स, कॉमर्स, साइंस एण्ड मैनेजमेंट कॉलेज [बगसरा] अमरेली (गुजरात) भारत। (आजीवन सदस्य)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जैसे प्रतिनिधि महाकवियों ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। रामायण और महाभारत हमारे अत्यन्त प्राचीन महाकाव्य हैं, जिनमें हम प्राचीन भारत की सभ्यता एवं संस्कृति के समग्र रूप को देख सकते हैं। तुलसी और व्यास जी भारतीय संस्कृति के उत्कृष्ट कवि हैं, जिनकी रचनाओं में हमें तत्कालीन समाज के स्वरूप और सांस्कृतिक चेतना के दर्शन होते हैं। तुलसीदास मध्यकाल की भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि महाकवि हैं, जिनकी रचनाओं में भारतीयों के आदर्श, जीवनमूल्य, नैतिक विचार आदि की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है।[2]

मनुष्य को सुखपूर्वक भवसागर पार करने की युक्ति बताने के लिए शास्त्रों की रचना हुई है। परन्तु शास्त्र अनेक हैं और उनका विस्तार भी बहुत है। मनुष्य जीवन अल्प है और कालगति प्रतिकूल होने से साधन भी कठिन हो गये हैं। धर्माचरण में पुरुषार्थ की कमी हो गयी है। गोस्वामी तुलसीदासजी ने इन्हीं बातों का विचार कर 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' श्रीरामचरितमानस की रचना लोक-कल्याण-कामना से की। इसके अवलंबन से मनुष्य भवसागर इस प्रकार पार कर सकता है मानो उसको एक सेतु का आधार मिल गया हो। मानस में रोचक कथा, नीति, सदाचार, धर्मरहस्य, ज्ञान, और भक्ति सभी की उत्तम शिक्षा और आर्य जाति के उच्चादर्श भगवान की लोकपावनी लीला के साथ वर्णित हैं।

'महाभारत' के भीष्मपर्व का एक अंश 'गीता' है (अध्याय 25-42)। 'महाभारत' को शास्त्रों में पञ्चम वेद' कहा गया है। वस्तुतः जनसाधारण के लिए तथा विद्वानों के लिए भी महाभारत, उपयोगिता की दृष्टि से, वेदों से भी विशेष महत्त्व का समझा जाता है और इसके वचन को श्रुति के सामान ही सभी प्रामाणिक मानते हैं। यही एक मात्र ग्रन्थ है जिसमें समस्त ज्ञान भरा है और इसमें नहीं है, वह कहीं नहीं है। इस ग्रन्थ को पढ़ने का अधिकार सभी वर्णों को, स्त्री तथा पुरुष को एवं म्लेच्छों को भी सामान रूप से है।[3] परब्रह्म परमात्मा के गुणों की प्रतीति, भगवान श्रीकृष्ण के गीतों की अभिव्यक्ति, करीब 5000 वर्षों पूर्व उनके मुखारविंद से अवतरित ज्ञान, कर्म और भक्ति की श्रृंखला को गीता कहते हैं। श्रीमद् भगवद्गीता के रचयिता श्री वेदव्यास (बादरायण) हैं, जिन्हें कृष्णद्वैपायन के नाम से भी जाना जाता है। यह ग्रन्थ 700 श्लोकों में निबद्ध 18 अध्यायों में विभाजित है।

पारिवारिक मूल्यों के सन्दर्भ में देखें तो आलोच्य दोनों ग्रन्थ अपनी निजी महत्ता प्रस्थापित करते हैं। समाज की निरंतरता व्यक्ति विशेष से न होकर व्यक्तियों के समूहों से है, जो प्राणीशास्त्रीय संबंधों के आधार पर बने होते हैं। इन समूहों को परिवार कहते हैं। परिवार के बारे में यही कहा जा सकता है कि समाज की आधारभूत इकाई परिवार, वास्तव में मानवजाति को आत्म-संरक्षित करने, वंश की वृद्धि करने और जातीय जीवन की निरंतरता को बनाए रखने का मुख्य साधन है। व्यक्ति, सर्वप्रथम पारिवारिक स्तर पर मूल्यों को ही आत्मसात करता है। हमें यह कहना अनुचित नहीं लगता कि श्रीरामचरितमानस और श्रीमद् भगवद्गीता भारतीय जनमानस के लिए एक संबल है, जो उसे अंधकार में भी प्रकाश-पुंज से मार्ग प्रशस्त करते हैं। व्यक्ति परिवार में रहते हुए कुछ मूलभूत आधारों को ग्रहण करता है जो उसे सामाजिक व्यवहार के स्वीकृत मानदंडों के अनुरूप व्यवहार करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं और अंततः उसकी सामाजिकता के अनिवार्य अंग बन जाते हैं, उन्हें पारिवारिक मूल्य कहा जाता है। सभ्यता, शिष्टता, मधुरता, विनम्रता आदि हमारे समाज के मूलभूत आधार रहे हैं। पारिवारिक शिष्टाचार अथवा अतिथिसत्कार, बड़ों के प्रति श्रद्धा, गुरुजनों का आदर और पारिवारिक मर्यादा-कर्तव्य आदि पारिवारिक जीवन की मुख्य-धारा वे पारिवारिक जीवन-मूल्य हैं, जो सामाजिकता का अनिवार्य अंग बनकर सामाजिक उन्नयन में सहायक सिद्ध होते हैं।

तुलसीदास ने श्रीरामचरितमानस के मंगलाचरण में ही काव्य के उद्देश्य का उल्लेख किया है- स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथा भाषा निबन्ध मतिमंजुल मातनोती।[4] यह स्वान्तः सुखाय लिखी गयी वह रचना है, जिसका लक्ष्य समाज कल्याण है। यहाँ यह स्पष्ट है कि वैयक्तिक दृष्टि से उनकी कविता का प्रयोजन स्वान्तः सुख है और सामाजिक दृष्टि से लोकमंगलकारी है। श्रीरामचरितमानस में जीवन-मूल्य दो रूपों में अभिव्यक्त हुए हैं, यथा-(1) चिन्तन-विवेचन तथा उपदेश के रूप में और (2) पात्रों के व्यावहारिक क्रिया-कलाप के रूप में। आचार्य शुक्ल जी का स्पष्ट मत है, ''गोस्वामीजी का लक्ष्य था मनुष्यत्व के सर्वतोमुख उत्कर्ष द्वारा भगवान के लोकपालक रूप का आभास देना।''[5] श्रीरामचरितमानस आत्म-विस्तार का लोक रंजनकारी और कर्तव्य-विधायक सन्देश देता है। इस लोकमंगलकारी ग्रन्थ का एक-एक पात्र ऐसा है जो भलाई अथवा बुराई का कोई न कोई आदर्श लेकर जीवन-क्षेत्र में अवतीर्ण होता है। उन्होंने (तुलसी ने) देखा और समझा था कि जीवन के हर क्षेत्र में सहज, उदात्त मानवीय मूल्यों का ह्रास विघटन एवं पतन हो रहा है। सभी प्रकार की मर्यादाएँ किसी अतीत की परछाईं और कहानी

बन जाना चाहती हैं। उन्होंने अनुभव किया कि ऐसी विषम स्थितियों में ऐसे व्यक्तित्त्वों और उनके कृतित्त्वों के आदर्शों को अपनाने की आवश्यकता है कि जिनसे सभी प्रकार की उदात्त और प्राणदायक मानवीय मर्यादाओं की रक्षा, पुनर्निर्माण एवं उन्नयन हो सके। राम के भक्त वे थे ही और कल्पनाशील कवि-हृदय भी उनके पास विद्यमान था। सो उन्होंने अपने आराध्य राम के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में उन सब तत्त्वों प्राणदायक संजीवनीवश आदर्शों, सहज मानो-मूल्यों के दर्शन किए जिनको अपनाने से सभी प्रकार की उदात्त-उदार मानवीय मर्यादाओं की रक्षा, उन्नयन एवं पुनर्निर्माण और मानो-मूल्यों की पुनर्रचना की सम्भावना की जा सकती है।[6] तुलसीदास राम-कथा के द्वारा जनोद्धार का बीड़ा उठाते हैं। श्रीरामचरितमानस का यही वर्तमान सन्दर्भ है।

जहाँ तक श्रीरामचरितमानस के पारिवारिक मूल्यों का सवाल है, हम मानते हैं कि पूरा रघुकुल पारिवारिक रिश्तों को निभाने में सराबोर है। हमें यह नहीं लगता कि कोई भी पात्र अपना व्यवहार बेमन निभा रहा है। यहाँ हर एक प्रकार के सम्बन्ध विद्यमान है, यथा- माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-भाभी, भाई-भाई, माता-पुत्र, पिता-पुत्र, सास-बहू, ससुर-बहू, भाभी-देवर....सब रिश्ते पूरी मान-मर्यादा में निभाये जा रहे हैं। कहीं पर भी कड़वाहट नहीं है। पारिवारिक शिष्टाचार का महत्त्व सबको पता है। ये सभी रिश्ते प्यार से निभाये जा रहे है। प्रेम की यह विशेषता है कि वह विरह में तपकर निखरता है। वत्सल-स्नेह की भी यही गति है। राम के वियोग में कौशल्या और दशरथ का प्रेम तीव्रतर हो गया है। यद्यपि तुलसी ने विश्वामित्र के प्रसंग में भी वियोग-वात्सल्य का आलेखन किया है, तथापि उसका व्यापक निरूपण राम-वन-गमन के सन्दर्भ में हुआ है। पुत्र के प्रति माँ के वात्सल्य की अतिशयता प्रायः सर्वत्र देखी जाती है, परन्तु पुत्र-वियोग से कातर पिता की पीड़ा तुलसी ही व्यक्त कर सकते हैं- जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना।। / कहऊँ सुभाउ न छल मन माहीं। जीवनु मोर राम बिनु नाहीं।। / समुझि देखु जिअ प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना।।[7] / अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौंबरु सुरपुर जाऊ।। / सब दुख दुसह सहबउ मोहीं। लोचन ओट रामु जनि होहिं।।[8]

राजा दशरथ मुनि विश्वामित्र जी का आतिथ्य भारतीय परम्परा के अनुरूप करते हैं, ''करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी।।'' उन्होंने बड़े आदर के साथ मुनि को अपने ही आसन पर ला बिठाया। दशरथजी विद्वान् है, पर अभिमानी नहीं; मुनिमंडली उनकी आश्रित है, पर वे उसकी आज्ञा का पालन करते हैं; शास्त्रज्ञ है, पर कुलपराम्परानुसार गुरुओं का आदर करते हैं। राजा हैं, सत्यप्रतिज्ञ और प्रजा के हित में तत्पर हैं; शासक हैं, अनुचर उनकी परिचर्या करते हैं; पर मुनि की सेवा व सत्कार वे स्वयं ही करते हैं। राजा दशरथ की सत्यप्रतिज्ञ पर मंथरा को भी विश्वास है, ''भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि वचन न टरई।।'' राजा असत्य को सबसे बड़ा पातक मानते हैं- रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहूँ बरु बचनु न जाई।। / नहिं असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहिंकि कोटिक गुंजा।।

राम कर्तव्यपालन में सतत नियुक्त पुरुषोत्तम, सीता कर्तव्य के चरणों में चिरन्तन नारी, लक्ष्मण कर्तव्य की प्रतिमूर्ति है। कौशल्याजी के कथनानुसार भरतजी के 'राम प्रानहु ते प्रान' थे और 'सियपति सेवकाई' उनका 'हित' था। भरत सच पूछिये तो श्रीराम के स्नेह के स्वरूप थे- 'धरें देह जनु राम सनेहु'। सीता की पति-सेवा अनन्य है; परन्तु लक्ष्मण का घर, माता-पिता -पत्नी को छोड़कर क्षणभर में चौदह वर्ष तक राम के साथ वन में चल देना साधारण नहीं है। यहाँ उनकी सेवाभावना एवं भातृप्रेम दृष्टिगत होता है। भरत को जब राम द्वारा कहा गया कि पिताजी ने मुझे वनवास देकर भी अपने सत्य को रक्खा और मेरे स्नेह का प्रण रखते हुए शरीर को त्याग दिया। ऐसे पिता का वचन मेटने में बड़ा विषाद होता है, उससे भी बढ़कर तुम्हारा संकोच है। इस पर भी गुरु महाराज ने आज्ञा दी है, इसलिए जो कुछ तुम कहोगे उस प्रकार से मैं करूँगा। परन्तु भरत भी आखिर राम के ही भ्राता है, उन्होंने राम की चरणपादुकाएं लेकर नंदीग्राम में रहकर निमित्तभाव से राज्य का कारोबार सँभाला। यहाँ वचनपालन, सत्य और भ्रातृप्रेम विद्यमान है।

भ्रातृप्रेम और भ्रातृकलह के विभिन्न परिणाम, पातिव्रत धर्म, दुष्टों और सज्जनों के प्रति कैसा बर्ताव करना, संसार की और गृहस्थाश्रम की कठिन परिस्थितियों को कैसे पार करना, सती का स्वाभिमान किस प्रकार का है, पिता का पुत्र के प्रति कर्तव्य -पुत्र को सुशिक्षित करना और वयस्क होने पर गृहस्थाश्रम का भार उसे सौंपकर उसे धर्म, अर्थ, काम की सुविधा देकर सामाजिक ऋण चुकाना और खुद आत्म-कल्याण में रम जाना, पुत्र का पिता के प्रति कर्तव्य-पिता के हित के लिए अपने सांसारिक स्वार्थों को छोड़ देना, यहाँ तक कि अतुल प्रेम और आज्ञाकारिता रखते हुए भी पितृहित के लिए उसकी मोहवश दी गयी आज्ञा को भी न मानना, जैसा कि श्रीराम ने सुमंत्र के साथ न लौटकर दिखाया था, आदि अगणित शिक्षाएँ जो मानस में मिलती हैं

उन्हें कौन हिन्दू नहीं जानता? मानस ने आर्यसभ्यता की रक्षा की है, हिन्दुओं के हृदयों और जीवन में हिंदुत्व को सुरक्षित रखा है। आज जब कि संसार विस्मृत प्राचीन काल और अनुभवहीन नवोदित काल के अभिशापों से-विकृत रूढियों और मिथ्या अहंकारों से, अन्धविश्वास और चकाचौंध से, अज्ञान और कुज्ञान से, त्रस्त हो रहा है तब रामचरितमानस ही आसरा है। 'कलिमल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावने' -वाला है। आज जब कि रामराज्य की चाहना चारों ओर से सुनायी पड़ती है, रामचरितमानस देश का और जगत् का मार्गप्रदर्शक हो ![9]

श्रीमद् भगवद्गीता में भी पारिवारिक मूल्यों का कम मात्रा में, पर वर्णन अवश्य हुआ है। श्रीमद् भगवद्गीता की पारिवारिक मूल्यों की दृष्टि वैश्विक धरातल पर स्थित है। उसका परिवार 'विश्व-परिवार' है। अर्जुन के बहाने श्रीकृष्ण मानो सारे विश्व को संदेश देते हैं। विश्व लोक समाज की सम्भावना गीता के 'विश्वरूपदर्शन' में अन्तर्निहित है। इसमें सत्य, धर्म, ज्ञान, कर्म के सोपानों की सहायता से नैतिक कर्तव्य-निष्ठा एवं नैतिकता के आधार मूल तत्त्वों-स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्त्व की समा-लोचना की गयी है। अखिल विश्व (संसार) एक समाज है। अतः समाज के संचालन एवं लौकिक व्यवहार के लिए उन समस्त वैयक्तिक गुणों-प्रेम, करुणा, मैत्री सहृदयता, सेवा, त्याग, पतितों का उत्थान एवं सामाजिक गुणों एवं कर्मों की आवश्यकता होती है। जिसके द्वारा सामाजिक न्याय एवं समाज कल्याण को प्राप्त किया जा सकता है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति गीता दर्शन के चरम आदर्श में निहित है। समस्त गुणों एवं कर्मों का विकास केवल शुद्ध चित्त, नित्य-मुक्त आत्मा द्वारा लोक कल्याण के लिए स्थापित किया जा सकता है। व्यक्ति, परिवार, समुदाय, संघ संस्थाओं, राज्यों एवं राष्ट्रों के साथ जगत् एवं अखिल विश्व समाज में सुख, शांति के संदेशों का पाठ पढ़ाना ही भगवद्गीता का परम उद्देश्य है।[10]

श्रीमद् भगवद्गीता के प्रथम व द्वितीय अध्याय में अर्जुन का शोकग्रस्त होना, स्वजनों को मारने के लिए तैयार न होना, उन सबके प्रति भावविभोर होकर दयाभाव दिखाना, 'कुलक्षयकृतं दोषम्' कहकर वह परिवार के नाश का दोष अपने पर लेना नहीं चाहता- इन सभी बातों में अर्जुन का परिवार के प्रति प्रेम ही दिखाई देता है। गीता में सामाजिक कर्म सिद्धांत के अनुसार व्यक्ति, परिवार, समुदाय एवं राष्ट्रों को एकाकार किया गया है। उनके गुणकर्मों के आधार पर सत्य के समस्त स्तरों- स्वतंत्रता, समानता एवं बान्धुत्व (प्रेम) को सम्बद्ध कर सत्यं, शिवं व सुन्दरम् की भावना से सार्वभौमिक एकता प्रस्थापित की गयी है। गीताकार नैतिक उपदेश, वैयक्तिक उपदेश, सामाजिक दायित्व और आत्मिक अनुशासन के माध्यम से अखिल विश्व समाज की स्थापना करते हैं। श्रीमद् भगवद्गीता 18वें अध्याय में कहती है- धृत्या यया धारयते मनः प्राणेन्द्रियक्रियाः। योगेनाव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्त्विकी।। / यतदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमाम्। तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।। / मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः। सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते।।[11]

अर्थात् जो मनुष्य एकनिष्ठ धृति (धीरज) के साथ मन, प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को (आत्म) योग से धारण करती है वही सात्त्विक धृति है। जो सुख शुरुआत में जहर के समान लगता है, वह सुख अमृत के समान आत्मज्ञान की प्रसन्नता से निःसृत सात्त्विक कहा गया है। जो कर्ता आसक्तिरहित, अहंकार न रखनेवाला और धैर्य व उत्साहयुक्त है; कार्य सिद्ध हो कि न हो उसमें निर्विकारी (हर्ष-शोक विहीन) हो, वही सात्त्विक कर्ता है। अर्जुन का कहना कि- 'स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव' अर्थात् अब मैं संदेहरहित हो गया हूँ, अब मैं आपके वचनों का अनुसरण करूँगा। यहाँ गुरु की आज्ञा का पालन करने की जो सीख दी गयी है, वह उच्चतम मूल्य माना जा सकता है। जिस तरह अर्जुन गुरु की आज्ञा का पालन कर शंकारहित हुआ, ठीक वैसे ही प्रत्येक मनुष्य इस मूल्य का पालन कर अपने जीवन को संशयमुक्त कर सकता है। गीता वर्तमान समय में समस्त जगत् को एकरूपता प्रदान कर विश्व में शांति का सन्देश प्रकाशित कर सकती है। वह मानव के शाश्वत मूल्यों-सत्य, धर्म, ज्ञान और कर्मों (कर्तव्यों) की निष्ठा से विश्व बंधुत्व की दिशा का भी निर्देश देती है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्रीरामचरितमानस में राम की महान पितृभक्ति, मातृस्नेह, भ्रातृप्रेम, अपूर्व त्याग, सहिष्णुता, भक्तवत्सलता, न्यायप्रियता और दिव्य पराक्रम का वर्णन है। लक्ष्मण के अनन्यतम त्याग, सेवा और भ्रातृभक्ति, भरत के अपूर्व त्याग, निर्लोभ तथा अग्रजभक्ति, शत्रुघ्न की भ्रातृभक्ति एवं पराक्रम, दशरथ का पुत्रप्रेम और वचनपालन, कौशल्या के हृदय की निर्मलता, सुमित्रा के हृदय की ओजस्विता एवं महानता, सीता की पतिभक्ति एवं उदारता, वालि की वीरता, सुग्रीव की दीनता, अंगद की स्वामीभक्ति एवं हनुमान की स्वामीभक्ति व पराक्रम-सच में देखा जाये तो वर्तमान समय में ऐसे पारिवारिक मूल्यों की बहुतेरी माँग है। श्रीमद् भगवद्गीता में नैतिक मूल्यों- प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, विनय, विनम्रता, साधुता एवं सम्मान-के अनुगमन

से विश्व परिवार की संकल्पना फलीभूत हो सकती है। वर्तमान सन्दर्भ में गीता के वचनों का पालन कर, उनके नैतिक मूल्यों के परिपालन से विश्व को कई बुराइयों से बचाया जा सकता है। आज जब समूचा संसार विषाक्त हो चूका है ऐसे में श्रीराम-चरितमानस और श्रीमद् भगवद्गीता के ये अमूल्य जीवनमूल्य राह भटके मानव को नयी राह दिखा सकते हैं। बिखरते-टूटते परिवार को ये मूल्य-पारिवारिक शिष्टाचार, अतिथिसत्कार, बड़ों के प्रति श्रद्धा, गुरुजनों का आदर और पारिवारिक मर्यादा-कर्तव्य, सत्यप्रतिज्ञ, वात्सल्य, कर्तव्यपालन, सेवाभाव, आत्मसंतोष, स्नेह-ममता...आदि बचा सकते हैं। सच तो यह है कि सम्प्रति मानव को मूल्यनिष्ठ जीवन के बलबूते पर अपने जीवन को सजाना-सँवारना है; ताकि व्यक्ति, समाज, देश व विश्व एकसूत्रता में बंधकर सुख-चैन व अमन से रह सकें।

सन्दर्भ संकेत

[1]वर्मा, डॉ0 अखिलेश -पद्मावत और रामचरितमानस का तुलनात्मक काव्यशास्त्रीय अनुशीलन, पृष्ठ संख्या 472-473
[2]नागोरी, एस.एल. -भारतीय संस्कृति, पृष्ठ संख्या 107
[3]मिश्र, डॉ0 उमेश -भारतीय दर्शन, पृष्ठ संख्या 67
[4]शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र -जायसी ग्रंथावली (भूमिका), पृष्ठ संख्या 121
[5]तुलसीदास -रामचरितमानस, 1/1/7
[6]श्रीशरण -तुलसीदास व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृष्ठ संख्या 138
[7]तुलसीदास -रामचरितमानस, 2/33/1-2
[8]तुलसीदास -रामचरितमानस, 2/45/1
[9]पंड्या, श्रीताराचंद्रजी -श्रीरामचरितमानस, (कल्याण, वर्ष-13, अक्टूबर-1938), पृष्ठ संख्या 1087
[10]वर्मा, डॉ0 बी.एम. -भगवद्गीता दर्शन का कर्म सिद्धांत, पृष्ठ संख्या 287
[11]श्रीमद् भगवद्गीता-18/33, 37, 26

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,10-14
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 अगस्त 2016

दलित चेतना - दशा एवं दिशा का वर्तमान परिदृश्य

डॉ. मंजु वर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित दलित चेतना - दशा एवं दिशा का वर्तमान परिदृश्य शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं मंजु वर्मा घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्रेमचन्द ने अपनी एक टिप्पणी में कहा, ''संस्कृति अमीरों का, पेट भरों का, बेफिक्रों का व्यसन है, दरिद्रों के लिए प्राणरक्षा ही सबसे बड़ी समस्या है। उस संस्कृति में था क्या जिसकी वे रक्षा करें। जब मूर्छित थी तब उस पर धन और संस्कृति का मोह छाया हुआ था, ज्यों-ज्यों उसकी चेतना जाग्रत होती जाती है वह देखने लगती है कि, यह संस्कृति लुटेरों की संस्कृति थी, जो राजा बनकर, विद्वान बनकर, जगत सेठ बनकर जनता को लूटती है।'' ऐसी सांस्कृतिक विरासत का विरोध करना ही दलित चेतना में शामिल हुआ। जो साहित्य यथार्थ और जीवन की सच्चाइयों से कटकर हो वह साहित्य निर्जीव ही माना जायेगा।

आज दलित समाज की मानसिकता में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ है। दलित चेतना का तात्पर्य इस प्रश्न से है कि 'मैं कौन हूँ? समाज में मेरा असित्व क्या है? यही प्रश्न दलितों में चेतना या ऊर्जा का विकास करते हैं। दलित की व्यथा, पीड़ा, दुख या शोषण का वर्णन करना ही दलित चेतना नहीं है। जो विचार उन सांस्कृतिक, ऐतिहासिक, सामाजिक भूमिका की छवि, जिसमें मौलिक चेतना न हो, को तोड़ते हैं वह दलित चेतना के अन्तर्गत आते हैं। दलित अर्थात मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक रूप से जिसे नकारा गया हो, उसकी चेतना-दलित चेतना कहलाती है। दलित चेतना पर विचार करने से पहले हमें पीछे जाना होगा। जब हमारा देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद के चंगुल से मुक्त होना चाहता था। वह भी समय आया जब 15 अगस्त, 1947 ई0 को भारत स्वतंत्र हुआ।

स्वतंत्र भारत के नेताओं ने भारत में एक आधुनिक, समतामूलक प्रगतिशील राज्य की स्थापना के लिए कामना की। वह एक ऐसे भारत का स्वप्न देख रहे थे, जिसमें जाति-धर्म लिंग के नाम पर कोई भी भेदभाव न हो। सभी को जीवन में आगे बढ़ने का समान अवसर मिले। उनकी ये कल्पनाएँ नये भारतीय संविधान में स्वीकृत हुईं। भारतीय संविधान के निर्माण में बाबा साहब अम्बेडकर का अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा। उन्हें संविधान प्रारूप-निर्माण समिति का अध्यक्ष मनोनीत किया गया। संविधान के माध्यम से सदियों से भारत में चली आ रही सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था सामंतकारी ढांचे पर खड़ी थी जिसमें

* असि. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, एस. आर. डी. ए. के. पी. जी. कॉलेज हाथरस (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

जातिगत विभेदों का बोलबाला था। सभी राज्य सांमतवादी कु-प्रथाओं के दलदल में फंसे हुए थे। चाहे पिछड़ी जाति हो, अल्प-संख्यक या दलित इन सभी को हेय दृष्टि से देखा जाता था। यह सर्वविदित है कि मानवीय प्रादुर्भाव के साथ ही सामाजिक कल्याण की भावना का भी विकास होता है। प्राचीन काल में जिस वर्ग को सामाजिक आर्थिक एवं शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ा जाता था, जिसे सामान्य तौर पर अछूत, अस्पृश्य एवं मलेच्छ आदि विभिन्न नामों से पुकारा जाता था, वे आज के दलित वर्ग ही हैं।

दलित शब्द का अर्थ है- जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीड़ित, शोषित सताया गया, गिरा हुआ, उपेक्षित, घृणित, मसला हुआ, कुचला हुआ, वंचित, हतोत्साहित आदि। डा0 श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं, ''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।''[1]

कॅवल भारती का मानना है कि, ''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया जाता है और जिस पर सछूतों से सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, यही और यही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियॉ आती हैं जिन्हें अनुसूचित जातियॉ कहा जाता है।''[2]

मोहनदास नैमिशराय 'दलित' शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं, ''दलित शब्द मार्क्स प्रणीत 'सर्वहारा' शब्द के लिए समानार्थी लगाता है। लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है, सर्वहारा की सीमित। दलित के अंतर्गत सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है, तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है।''[3]

दलित शब्द व्यापक अर्थ बोध की अभिव्यंजना देता है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृश्य माना गया है वह व्यक्ति ही दलित है। दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवन यापन करने वाले आदिवासी, उनकी जनजातियॉ आदि सभी इसी दायरें में आती हैं। कहने का तात्पर्य है कि दलित शब्द उन व्यक्तियों के लिए प्रयोग होता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे नीचे स्थान पर हैं। वर्ण-व्यवस्था ने जिसे अछूत की श्रेणी में रखा है। उसका दलन हुआ है, शोषण हुआ इस समूह को ही संविधान में अनुसूचित जातियॉ कहा गया है जो जन्मना अछूत है।

मराठी कवि सूर्वे का कहना उचित प्रतीत लगता है कि, ''दलित शब्द का अर्थ बौद्ध या पिछड़ी जातियॉ ही नहीं, समाज में जो भी पीड़ित है, वह दलित है।''[4]

लेखन केवल लिखना ही नहीं होता बल्कि समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने में सहायता करना होता है। लेखक, चाहे वह किसी भी जाति विशेष का हो वह तो केवल साहित्य की मूल संवेदना से ही बंधा रहता है। वह चाहता है कि संघर्ष करते हुए समाज में समानता, बंधुता तथा मैत्री की भावना का विकास हो। सार्त्र के शब्दों में कहें तो ''लेखन केवल लिखना ही नहीं, एक कार्यवाही है, और बुराई के खिलाफ मनुष्य के सतत संघर्ष में लेखन को सायास एक हथियार की तरह इस्तेमाल करना चाहिए।''

शिक्षा के माध्यम से दलितों का न केवल आर्थिक विकास हुआ बल्कि उनके अधिकार ने समाज में एक प्रतिष्ठा भी प्राप्त की है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में दलितों की स्थिति को समझें बिना दलित चेतना की तीव्रता को समझना कठिन है। हजारों वर्ष की प्रताड़ना, शोषण, द्वेष, वैमनस्य और भेदभाव से दबी अपनी अस्मिता की खोज के लिए जागरूक दिखायी पड़ता है। ऐतिहासिक परिदृश्य में उसकी कोई पहचान दिखाई नहीं पड़ती अतीत उसके लिए नर्क से भी भयावह दिखाई पड़ता है। कहने का यही अर्थ है कि कोई भी संस्कृति कई सोपानों से रूबरू होते हुए ही अपने विकास को रूपायित करती है। निम्न वर्ग की धरती, बौद्धिक भूख अपने को आधुनिकता से जोड़ने के लिए अथक परिश्रम करती है। अपनी पुरानी संस्कृति, संवेदना और नये जमाने के जीवन-मूल्यों से तुलना करके देखने से एक नया दृष्टिकोण भारतीय निम्न वर्ग को आज प्राप्त हुआ है।

बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था काफी जटिल हो चुकी थी। आर्थिक शोषण से सभी भारतीय पीड़ित थे। खासकर अछूत और दलित की स्थिति काफी सोचनींय हो गयी थी। भूख, बीमारी, अशिक्षा, बेरोजगारी आदि के कारण लोग मौत के शिकार हो रहे थे। ब्रिटिश सरकार ने अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए बंगाल का विभाजन किया। जब यह योजना बनीं तो इसके विरुद्ध शोरगुल मच गया, अखबारों ने इसकी निंदा की। अमृत बाजार पत्रिका, संजीवनी, ढाका

प्रकाश बंगाली, ढाका गजट आदि अन्य अनेक पत्रों ने तीखी आलोचना करते हुए शेषपूर्ण लेख लिखे।''[5] बंगाल विभाजन का विरोध पूरे देश में जबरदस्त हुआ। इस कार्य में अछूत दलित और पिछड़े लोगों ने बढ़-चढ़ कर भाग लिया। ब्रिटिश सरकार ने जोरदार प्रक्रिया को देखते हुए जल्दी ही मार्ग निकाल लिया था। बंगाल से बिहार को अलग करने की योजना बनाई जिससे राष्ट्रीय एकता में दरार पैदा हो जाए। बंगाल से बिहार को अलग कर देने के बाद भी बिहार का सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिदृश्य मूल राज्य से अलग नहीं हो सकता था। उस समय समाज में उच्च वर्गों का प्रभुत्व था। अछूतों की सामाजिक स्थिति सबसे निम्न थी तथा आर्थिक एवं सामाजिक रूप से उन्नत लोगों के द्वारा ही इनका शोषण और दुर्व्यवहार किया जाता था। मात्र धर्म परिवर्तन की इन्हें बचा सकता था।

शिक्षा से ही दलितों का विकास हुआ तथा नये-नये रोजगार खोजने का पर्याप्त अवसर भी प्राप्त हुआ। इसलिए समय-समय दलितों को शिक्षित करने का प्रयास किया जाता रहा है। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुए धर्मसुधार आंदोलन में अछूतों, दलितों और पिछड़े वर्ग को ऊपर उठाने पर बल दिया। दलित वर्ग पढ़ाई- लिखाई से वंचित एवं कई पीढ़ियों से तिरस्कृत थे। माता-पिता में निरक्षरता, परिवार के आर्थिक क्रियाकलापों में बच्चों की भूमिका तथा बाल विवाह की सामाजिक प्रथा ने शिक्षित होने में अवरोध का काम किया।

ज्योतिराव फूले ने दलितों की शिक्षा के लिए आंदोलन छेड़ा और नई शिक्षा नीति की घोषणा की। अछूतों के लिए स्कूल के लिए अनुदान सहभाग प्रणाली से आर्थिक समर्थन मिला। समकालीन मिशनरियों एवं कर्मचारियों के द्वारा भी गरीब वर्ग के लोगों के लिए देशी भाषा के स्कूल स्थापित किये गए। सरकारी स्तर पर बम्बई प्रेसीडेंसी इस प्रयास में आगे रहा। 1882 के शिक्षा आयोग ने दलितों में शिक्षा प्रसार के लिए क्रमबद्ध प्रयास की शिफारिश की।''[6] 1922 में द्वैध शासन की स्वीकृति के बाद अछूत एवं दलित कल्याण एवं उनके शिक्षा सम्बन्धी पहलू को राज्य के नियंत्रण में दे दिया गया। साक्षर भारत के स्वप्न को पूरा करने लिए बहुत सारी योजना बनाईं गयी। मुस्लिम समुदाय जो लम्बे समय से पिछड़ी थी, ने भी शिक्षा पर जोर दिया। प्रबुद्ध महिलाओं ने बालिकाओं की शिक्षा पर जोर दिया।

शिक्षा के हस्तांतरण नीति में राज्य सरकार को पीड़ित और पिछड़े वर्ग के शैक्षिक विकास को महत्व देने की सलाह दी। विट्ठल भाई पटेल ने गोखले के अधूरे कार्य को देखा जिसके परिणाम स्वरूप पटेल एक्ट (1918) बम्बई विधान परिषद् द्वारा पास हुआ। इस प्रकार बम्बई, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, पंजाब, मद्रास एवं आसाम ने अनिवार्य-शिक्षा के लिए कानून बनाया, लेकिन इससे भी कोई लाभ नहीं हुआ। अभी भी दलितों का शोषण हो रहा था। भारत सरकार के 1919 के अधिनियम के तहत फिलिप हार्टांग के नेतृत्व में एक सहायक कमेटी का गठन किया गया। कमेटी ने दलितों की प्रगति के संबंध में निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए - ''प्राथमिक विद्यालय में बढ़ता नामांकन इस बात को इंगित करता है कि सामान्य लोगों में शिक्षा के प्रति उदासीनता खत्म हुयी है। दबे पिछड़े वर्ग के उत्थान के लिए प्रयास किया गया है और अन्य वर्ग भी इससे सही तौर पर प्रभावित हुए हैं। रोजगार के अवसर उन्हें दिये जाने चाहिए और सामाजिक अयोग्यता को समाप्त करना चाहिए। हार्टांग कमेटी ने न केवल अछूत बच्चों को सामान्य स्कूल में नामांकन की बात की बल्कि उनके साथ समान व्यवहार पर भी जोर दिया। अछूत समुदाय के बीच शिक्षा की शुरुआत 1950 के दशक में हुयी। 1931 तक वे निरक्षरता में पूरी तरह डूबे हुए थे।

दलितों की दास्तां उतनी की पुरानी लगती है जितना हिन्दू समाज का सूत्र, जिसे आधुनिकीकरण के प्रभाव के बाद भी दूर नहीं किया जा सकता है। छुआछूत समाप्त तो हुआ है लेकिन दलितों पर अत्याचार की घटनाएँ सुनने को मिलती ही रहती हैं। महात्मा गांधी के राजनीति में आने से पहले छूआछूत भारतीय समाज में व्यापक पैमाने पर व्याप्त था। दलित अछूत समझे जाते थे। उनका आवास भी आबादी से हटकर होता था। उनके पेशे को निम्न समझा जाता था। उनका भोजन उचित विकास की दृष्टि से अपर्याप्त था और शैक्षणिक प्रगति धीमी थी। यह सब चीजें आज के समय में भी देखने को मिलती हैं।

स्वामी दयानंद ने अप्रैल 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। यह एक सामाजिक धार्मिक सुधार संगठन था जिसका प्रभाव उत्तर भारत पर काफी था। इसका उद्देश्य-लैंगिग समानता, पूर्ण न्याय, सभी लोगों के साथ न्याय, व्यवहार, योग्यता के अनुसार समान अवसर और सबके प्रति प्रेम और दयालुता होना था। इन आदर्शों के अनुसरण के लिए संगठन ने दलितों के सामाजिक उत्थान में विशेष अभिरुचि दिखायी।

स्वामी विवेकानन्द जिन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की हरिजनों के प्रति जोरदार सहानुभूति व्यक्त की। दलितों की शिक्षा और सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार की जोरदार वकालत भी की। स्वामी विवेकानन्द का ध्यान दलितों की समस्याओं पर था। उनके विचार में भारत के पतन का कारण शिक्षा पर मुट्ठी भर लोगों का अधिकार रहा है। यदि उन्नति चाहिए तो शिक्षा का प्रसार सभी वर्गों में होना चाहिए।

विकास की प्रक्रिया अचानक नहीं बल्कि धीरे-धीरे विकसित होती है। आज जितनी भी योजनाएँ चल रहीं हैं वे दलितों को समुज्ज्वल प्रकाश प्रदान करने वाली हैं। आज रूढ़िवादी परम्पराएँ, छुआछूत, ऊँच-नींच की भावना दूर हो रही है। शिक्षा के विकास के द्वारा ही यह उन्नति सम्भव हो सकती है। आज दलितों में राजनैतिक, शैक्षणिक एवं सामाजिक चेतना का विकास हो चुका है। भारतीय संविधान के द्वारा आरक्षण का लाभ उठाकर संसद से लेकर विधान सभा तक उनकी भागीदारी सुनिश्चित हो चुकी थी। सरकारी सेवाओं से मिले आरक्षण का लाभ अब नजर आने लगा है। उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा भी मिलने लगी है। इन सुविधाओं का लाभ सभी दलित जाति के लोगों को नहीं मिल पाता है। कुछ जाति जैसे जाटव, धोबी, पासी, मल्लाह आदि ने ही आगे बढ़कर इन सुविधाओं को प्राप्त कर लिया है और उनके बच्चे भी आरक्षण का भरपूर लाभ उठाने लगे हैं। दलितों की कुछ जातियॉ- डोम, मुसहर, मेहतर आदि आज भी आर्थिक रूप से अत्यन्त पिछड़े हैं। आज कुछ दलित वर्ग राजनीतिक, सामाजिक, शैक्षणिक तथा आर्थिक स्थिति में समाज के ऊँची जाति के लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने लगे हैं। 1970 से लेकर आज तक संसद और विधान सभा में दलितों एवं मुसलमानों का प्रतिनिधित्व बड़े पैमाने पर हुआ है। दलितों में आज राजनीतिक जागरूकता का विकास पूर्णरूप से हुआ है। उनकी उभरती चेतना से ही उनका विकास संभव हुआ है।

आज दलित साहित्य को देखने से यह पता चलता है कि दलित चेतना दलित साहित्य की अन्तः ऊर्जा में तीव्ररूप से समाविष्ट है। यही चेतना या ऊर्जा उन्हें पारम्परिक साहित्य से भी अलग करती है।

समीक्षक मैनेजर पाण्डेय का कथन उपयुक्त ही है कि ''राख ही जानती है जलने का दर्द, दलित होने की पीड़ा सिर्फ दलित ही जानता है।''

विराट समाज चेतना के अभाव में साहित्य सही अर्थों में साहित्य नहीं होता है। दलितों के मुक्ति संघर्षों ने शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित, उपेक्षित दलितों को वाणी देकर उनमें चेतना का संचार किया। वह उपेक्षित समाज, जो सामन्ती अर्थव्यवस्था, ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना और धार्मिक कूपमंडूकता में हजारों साल से पिस रहा था, आंदोलनों तथा समाजसुधारकों के प्रयत्नों से वैचारिक स्तर पर पहुँचा। आज दलित चेतना उसी विद्रोह का जागरण है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध न होकर अपनी पूर्व परम्पराओं तथा अपने अस्तित्व की पहचान के लिए है।

दलितों की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति सुधारने में पाश्चात्य सभ्यता के लोग, बुद्धिजीवियों, समाज सुधारकों, सवर्णों, राजनेताओं इत्यादि ने सहयोग किया। इन सुधारकों का प्रतिफल यह हुआ है कि आज इन वर्गों को समाज में समुचित स्थान मिल चुका है। इन सुधारकों में राजा राममोहन राय, ज्योतिराव गोविन्दराव फूले, सी0एन0 मुदलियार, गोविन्द महादेव रानाडे, स्वामी विवेकानन्द, दयानन्द सरस्वती, महात्मा गांधी, 'बी0आर0 अम्बेडकर', राममनोहर लोहिया एवं जयप्रकाश नारायण का नाम अग्रणी है। दलित वर्ग के लोगों को जागृत करने तथा नई आशा का संचार करने में गांधी जी का योगदान अतुलनीय है। गांधी जी अछूत एवं दलितों के एकमात्र मसीहा थे। उन्होनें दलितों को स्थान दिलाने में जीवनपर्यन्त कार्य किया।

दलितों के कुछ विशिष्ट लक्षणों को आज का समाज सहज रूप से अनुकरण करता हुआ दिखाई दे रहा है। जैसे- पर्दा प्रथा का न होना, सामूहिक श्रम करना, विधवा पुनर्विवाह, जन कल्याणकारी भावना, सामूहिकता में विश्वास आदि कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो आधुनिकता के दौर में महिलाओं में बढ़ती जा रही है। दलित चेतना का ही यह परिणाम है कि आज दलित समाज अपने ऊपर लदी हुई सामाजिक कु-रीतियों को तोड़ने में सफल हो सका है।

संदर्भ-ग्रंथ

[1]डा0 श्यौराज सिंह बैचेन -युद्धरत आम आदमी, पृष्ठ संख्या 14
[2]कंवल भारती -युद्धरत आम आदमी, पृष्ठ संख्या 41
[3]मोहनदास नैमिशराय -साहित्य और संस्कृति में दलित अस्मिता और पहचान का सवाल, नया पथ, पृष्ठ संख्या 104
[4]कवि नारायण सूर्वे-हंस, 1993
[5]रिपोर्ट ऑन द नेटिव न्यूजपेपर्स, बंगाल
[6]गोयल, ओ0पी0सिट, पृष्ठ संख्या 82

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,15-21
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 13 अगस्त 2016

यात्रा साहित्य की प्रासंगिकता और हिन्दी में विकास

डॉ. सच्चिदानन्द द्विवेदी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *यात्रा साहित्य की प्रासंगिकता और हिन्दी में विकास* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सच्चिदानन्द द्विवेदी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

जिस प्रकार मनुष्य शरीर के लिए वायु की जरूरत है उसी प्रकार मानव जीवन के लिए यात्रा की भी आवश्यकता है। जब कोई व्यक्ति एक कमरे में बन्द होता हैं और बाहरी दुनिया से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है तो उसका जीवन नीरस हो जाता है। जो व्यक्ति विदेश में जाते हैं और वहाँ की संस्कृति, रीति-रिवाज आदि की जानकारी अर्जित करते हैं; उसमें दूसरे को समझकर जीने की क्षमता आ जाती है। उसके मन में स्नेह रहता है, घृणा का भाव नहीं रहता। वस्तुतः यात्राएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण के लिए सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार व्यक्ति-व्यक्ति, देश-विदेश, संस्कृति-संस्कृति के बीच की दूरी कम हो जाती है। प्रसिद्ध यायावर स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की राय में, *''जो जातियाँ दूसरे देशों में भ्रमण करने नहीं जाती, जिनके यहाँ खाने-पीने के लिए काफी है और जो अपने देश को ही सबकुछ समझकर उसी में संतुष्ट रहती हैं, वे धीरे-धीरे मृत्यु की ओर चलने लगती हैं। इसके विपरीत जो बराबर देशाटन करती हैं, नये अनुभव प्राप्त करती हैं, नये विचार बाहर से लाती है, उन्हें अपने राष्ट्रीय जीवन में स्थान देती हैं और सदा जागरूक होकर रहती हैं, वे स्वाधीनता का मधुर रसपान करती हैं और उनका विकास नियमपूर्वक होता रहता है।''*[1] अर्थात् यात्राओं द्वारा अनेक जीवित देशों को प्रकाश में लाता है। मनुष्य का सर्वांगीण विकास इन्हीं यात्राओं द्वारा होता है।

'यात्रा' संस्कृत स्त्रीलिंग शब्द है। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'या' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है 'जाना'। 'या' धातु के साथ 'ष्ट्रन' प्रत्यय लगाकर 'यात्रा' शब्द बना है। गमन, प्रस्थान आदि अर्थों में इस शब्द का प्रयोग होता है। इस प्रकार 'यात्रा शब्द का अर्थ है एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना।

♦ संस्कृत - यात्रा, ♦ भोजपुरी - जतरा, ♦ हिन्दी - यात्रा, ♦ बंगला - यात्रा, सफर, गमन, ♦ मराठी - आवास, ♦ गुजराती - यात्रा, ♦ पंजाबी - पेंडा, ♦ उर्दू - सफर, ♦ तमिल - प्रयागम्, ♦ मलयालम - यात्रा।

* [पोस्ट डॉक्टोरल फेलोशिप] हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

'यात्री' के लिए भी हिन्दी में घुमक्कड़, यायावर आदि शब्दों का प्रयोग होता है। 'घुमक्कड़' शब्द का कोशगत अर्थ है- बहुत घूमनेवाला। 'यायावर' शब्द- वह जो एक जगह टिककर न रहता हो- अर्थ में प्रयुक्त होता है।

भारत के सन्दर्भ में देखें तो यात्रा के लिए 'तीर्थयात्रा', 'तीर्थाटन' आदि शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। प्राचीनकाल से लेकर भारतवासियों ने धर्म को अधिक महत्त्व दिया। प्रारंभ से ही लोगों में यही विश्वास था कि पुण्य स्थानों में जाने से अपना मन पवित्र बनता है। इसलिए हिन्दुओं ने ही नहीं अन्य धर्म के लोगों ने भी तीर्थयात्राएँ की है। तीर्थयात्रा करनेवालों की संख्या में आज भी कोई कमी नहीं है। यातायात की अधिकता के कारण उसमें वृद्धि हुई है। मानव जीवन में धीरे-धीरे विकास हुआ और बाद में आकर ज्ञानवर्द्धन, मनोरंजन एवं शिकार आदि के लिए यात्राएँ करते रहे हैं। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के शब्दों में, *''मनुष्य स्थावर वृक्ष नहीं, वह जंगम प्राणी है। चलना मनुष्य का धर्म है।''*[2] अर्थात् यात्रा करना ही मनुष्य का धर्म है। मनुष्य का इतिहास ही उसकी इसी गतिशीलता का परिणाम है।

मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो जीवन में परिवर्तन चाहते रहते हैं। केवल मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी भी परिवर्तन चाहते हैं। इसी परिवर्तन के द्वारा मनुष्य में उत्साह तथा प्रेरणा पैदा होती है। यह परिवर्तन यात्राएँ द्वारा ही होता है। यात्राएँ जीवन के थकान को दूर कर मनुष्य में एक नवीन स्फूर्ति पैदा करती है, जिससे मानव मन का विकास होता है। किसी दूसरे मनुष्य या प्राणी को समझने का भाव भी उसमें आ जाता है। इस प्रकार यात्राओं द्वारा लोककल्याण की भावना आ जाती है। यात्रियों के मन में प्राकृतिक सौन्दर्य और विविध संस्कृतियों को देखने-परखने पर मनुष्य की संवेदना शक्ति में बढ़ाव आता है। ज्ञानवर्द्धन भी इसका एक उद्देश्य है। 'कागद लेखी' से 'आँखिन देखी' पर आधारित ज्ञान अधिक गहरा होता है। ईसा, बुद्ध, महावीर, रामानुजाचार्य जैसे महान् व्यक्तियों ने इस प्रकार घूम-घूमकर अपनी ज्ञान संपदा को बढ़ाया। इस प्रकार यात्रा मनुष्य जीवन की एक अपरिहार्य प्रक्रिया है।

भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है- अनेकता में एकता। इसी एकता के लिए देश में निकटता, सद्भाव, सामंजस्य आदि की जरूरत है। इस सम्बन्ध में अक्षयकुमार जैन की राय है, *'संसार में सौमनस्य बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि देश-देश के लोग एक-दूसरे के निकट आयें, एक-दूसरे की समस्याओं को समझें, एक-दूसरे के गुण-दोषों को पहचानें। उनके लिए यात्रा ही एक ऐसा साधन है, जिससे यह हो सकता है।''*[3] अर्थात् यात्राओं के द्वारा ही देश में निकटता, सामंजस्य आदि आते हैं।

यात्रा साहित्य का विषय अत्यन्त स्पष्ट और व्यापक है। इसकी विशेषता यह है कि सम्पूर्ण विश्व को वह अपने में समाविष्ट किये हैं। यात्रा साहित्य की अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। यह साहित्य देश-विदेश के बीच में जो दूरी है उसको दूर करके संपूर्ण विश्व में एकता स्थापित करने के लिए सहायक है। इस प्रकार मैत्रीपूर्ण स्थितियों के निर्माण में यह सहायक बन जाते हैं। जिस प्रकार यात्रा साहित्यकार अपने अनुभवों को अत्यन्त आत्मीयता के साथ प्रस्तुत करते हैं उसी प्रकार पाठक भी उसे उतनी ही आत्मीयता के साथ ग्रहण करते हैं। क्योंकि यात्रा साहित्यकार जहाँ का वर्णन करता है पाठक भी वहाँ की विभिन्न स्थलों, वस्तुओं, संस्कृतियों, भाषाओं और दृश्यों का परिचय पाता है। इस प्रकार विकसित राष्ट्र के यात्रा वर्णनों को पढ़कर छोटे-छोटे अविकसित राष्ट्र भी अपनी उन्नति के प्रति सचेष्ट होते हैं।

रचनाशील मनुष्य अपनी यात्राओं से प्राप्त अनुभवों को अभिव्यक्त करता है तब यात्रा-साहित्य की सृष्टि होती है। मात्र अनुभवों का विवरण देना नहीं बल्कि रचनाकार की संवेदनात्मक अनुभूतियों को प्रस्तुत करना भी इस विधा का लक्ष्य है। *''सौन्दर्य बोध की दृष्टि से, उल्लास की भावना से प्रेरित होकर यात्रा करने वाले यायावर एक प्रकार से साहित्यिक मनोवृत्ति के माने जा सकते हैं और उनकी मुक्त अभिव्यक्ति को यात्रा-साहित्य कहा जा सकता है।''*[4] मानव निरन्तर घूमता रहता है। उनमें अधिकांश लोगों की दृष्टि देश-विदेश के सौन्दर्य के प्रति तटस्थ होते हैं। रामचन्द्र तिवारी ने लिखा है, *'यात्रा-वृत्त में देश-विदेश के प्राकृतिक रमणीयता, नर-नारियों के विविध जीवन-संदर्भ प्राचीन एवं नवीन सौन्दर्य चेतना की प्रतीक कलाकृतियों की भव्यता तथा मानवीय सभ्यता के विकास के द्योतक अनेक वस्तु-चित्र यायावर लेखक के मानस रूप में रूपायित होकर वैयक्तिक रागात्मक उष्मा से दीप्त हो जाते हैं।''* [5] यहाँ तिवारीजी ने यही व्यक्त किया है कि प्राकृतिक सौन्दर्य के साथ मानव जीवन भी यात्रा साहित्य का विषय बना है। यात्रियों का ऐसा वर्ग भी है जो देश-विदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति साहित्यिक मनोवृत्ति के होते हैं। इन्हीं यात्रियों की मुक्त अभिव्यक्ति से यात्रा साहित्य का जन्म होता है।

यात्रा साहित्य से विभिन्न देश के कला, धर्म, दर्शन, राजनीति, शिक्षा, अर्थ आदि का विवरण मिलता है। ये सभी संस्कृति के विभिन्न पहलू है। किसी भी देश के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण है अपनी संस्कृति। इसलिए सभी देश अपनी संस्कृति का विस्तार एवं संरक्षण चाहते हैं। यायावर न केवल यात्रा साहित्य के माध्यम से दूसरे देश के रीति-रिवाजों या संस्कृतियों का विवरण हमें देते हैं अपितु हमारी संस्कृति का प्रचार-प्रसार भी करते हैं। इस प्रकार सांस्कृतिक समन्वय के साथ-साथ उसका विस्तार भी होता है। यात्रा साहित्य अस्त होती हुई संस्कृति को प्रकाश में लाने का एक माध्यम भी है। यायावरों ने देश के विभिन्न मन्दिरों, गिरिजाघरों और ऐतिहासिक स्थानों में जाकर संस्कृति के नष्ट हुए सूत्रों को एकत्रित करके अपने यात्रा-साहित्य के माध्यम से जनता तक पहुँचाने का कार्य किया है। सत्यदेव परिव्राजक के शब्दों में, *''मनुष्य खाली पहाड़ी नजारे, सुन्दर गलियाँ और भव्य भवनों को देखकर संतुष्ट नहीं होता, असली चीज जानने के योग्य तो देश की सभ्यता होती है।''*[6] इस प्रकार सांस्कृतिक परम्परा के संरक्षण के रूप में भी इस विधा का अपना महत्त्व है।

यात्रा साहित्य में यायावर प्रकृति और जीवन के विविध पक्षों की व्याख्या ही नहीं देता बल्कि हर वस्तु को अपने नजरिये से देखता है। डॉ0 रघुवंश के अनुसार, *''यात्रा का बहुत बड़ा आकर्षण प्रकृति की पुकार में है। यायावर वही है जो चलता जाय, कहीं रुके नहीं, कोई बंधन उसे कसे नहीं और वह जो दर्शनीय है, ग्रहणीय है, स्मरणीय है अथवा संवेदनीय है; उसका संग्रह करता चले.....या यों कहें कि जो मुक्त भाव से, अनुभूतियाँ संजोता हुआ, देश-काल में फैले अनन्त जीवन में साँसे लेता हुआ यात्रा नहीं करता, वह यात्रा का साहित्य नहीं दे सकता, विवरण प्रस्तुत कर सकता है।''*[7] यही कारण है कि अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा लिखित यात्रा साहित्य में स्वरूपगत भिन्नता होती है। संसार का जो भी कार्य वह छोटा हो या बड़ा, यात्रा साहित्य से हमें मिलता है। उत्तर से लेकर दक्षिण तक विश्व का कोई भी पक्ष यात्रा साहित्य में आता है। कुछ रचनाकार यात्रा की तैयारियों को महत्त्व देते हैं तो कुछ रचनाकार उस यात्रा से अर्जित अनुभूतियों को महत्त्व देते हैं, जो प्राकृतिक सौन्दर्य हो या राजनीतिक व सामाजिक व्यवस्थाएँ हो।

मनुष्य का जन्म उस प्रकृति की गोद में हुआ है जिसने ही उसका पालन-पोषण करके आज के मानव के रूप में रूपायित किया है। यात्रा साहित्य में उस प्रकृति के सुन्दर, मनोरम और आत्मीय रूप प्रतिबिम्बित होता है।

भारतीय यायावरों ने भारत के अनेक रमणीय स्थानों की यात्रा करके विपुल साहित्य की सृष्टि की है। वास्तव में इन यायावरों ने प्रान्तीय, जातीय तथा भाषायी भेदों को मिटाकर एक राष्ट्रीय भूमिका अदा की है। इसमें अधिकांश यात्रापरक कृतियाँ हिमाचल की पर्वतीय सौन्दर्य से भरपूर है। ये यात्रा साहित्य हिमालयी प्रकृति के दिव्य रूप ही नहीं वहाँ की जीवन्त संस्कृति को भी मुखरित करते हैं। दक्षिण भारत से सम्बन्धित कृतियों में वहाँ के जन-जीवन को यथातथ्य उद्‌घाटित करते हैं। उत्तरांचल से सम्बन्धित यात्रावृत्तों की अपेक्षा इनकी संख्या बहुत कम है।

'रामायण', 'महाभारत', 'पुराण' जैसे ग्रन्थों से यात्रा का जो मूल स्रोत हमें मिलता है उसका विकसित रूप बाद के संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्य है। माघ का 'शिशुपालवधम्', कालिदास का 'कुमारसंभवम्', 'रघुवंश', 'मेघदूतम्' सोमदेव कृत 'कथासरितसागर' आदि ग्रन्थों में यात्राओं का जो वर्णन हमें मिलता है वे उन्हीं लेखकों की घुमक्कड़ी वृत्ति की ही देन है। आगे चलकर बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों ने इसी यात्रा वर्णन परम्परा को समृद्ध किया है। इन्हीं ग्रन्थों में धर्मप्रचारार्थ की गई यात्राओं का उल्लेख है।

वहीं प्राचीन ग्रन्थों में यात्रा का उल्लेख कहीं न कहीं हुआ है। यात्रा साहित्य के मूल स्रोत को विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ वेदों में देखा जा सकता है। ऋग्वेद में वसिष्ठ एवं वरुण द्वारा की गयी यात्रा की कठिनाईयों पर प्रकाश डाला गया है। 'महाभारत' तथा वाल्मीकि कृत 'रामायण' आदि ग्रन्थों में भी यात्रा का सुन्दर वर्णन है। 'रामायण' में विश्वामित्र के साथ श्रीराम और लक्ष्मण की मिथिलापुरी यात्रा, श्रीरामजी की वनयात्रा, पंचवटी यात्रा आदि अनेक यात्राओं का वर्णन है। इसी प्रकार 'महाभारत' में अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा के साथ पाण्डवों की पांचालदेश यात्रा, श्रीकृष्ण की भीम और अर्जुन के साथ मगध देश की यात्रा आदि अनेक यात्रा वर्णन देखने को मिलता है। पुराण एवं संहिताओं में भी यात्रा का सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विश्व साहित्य में यात्रा वर्णन की जो परम्परा है वह अत्यन्त प्राचीन है। 'वेद', 'रामायण', 'महाभारत' जैसे प्राचीन ग्रन्थों में यात्रा का जो उल्लेख है वह केवल प्रसंगवश ही आते हैं। इन्हें यात्रा साहित्य

की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उसी प्रकार बाद के संस्कृत कवियों और बौद्ध तथा जैन धर्माचार्यों ने भी यात्रा-साहित्य का सृजन नहीं किया। लेकिन इन्हीं प्रारंभिक यात्रा वर्णनों ने हिन्दी यात्रा साहित्य को पृष्ठभूमि प्रदान किया है।

हिन्दी में विकास

हिन्दी यात्रा साहित्य के सर्वप्रथम हस्तलिखित ग्रन्थ के रूप में श्री गोस्वामी विट्ठलजी द्वारा लिखित 'वन यात्रा' को माना जाता है। 44 पृष्ठों के इस ग्रन्थ में विट्ठलजी ने व्रजमण्डल के विविध दृश्यों को अत्यन्त भक्तिभाव से चित्रित किया है। 'वनयात्रा' नाम से अन्य दो हस्तलिखित ग्रन्थ हैं। उनमें प्रथम के रचनाकाल एवं रचयिता के सम्बन्ध में प्रमाण उपलब्ध नहीं है। 65 पृष्ठों की यह रचना अपूर्ण है। 'वनयात्रा' नामक असली जो कृति है उसकी रचनाकार है जीमन महाराज की माँ! इसमें भी गोकुल, मथुरा, गोवर्धन, वृन्दावन आदि स्थानों के प्राकृतिक वर्णन को प्रस्तुत किया गया है। 'व्रजपरिक्रमा', 'सेठ पद्मसिंह की यात्रा', 'बात दूर देश की', 'व्रज चौरासी कोस वनयात्रा', 'बद्रीनारायण सुगम-यात्रा' आदि अनेक हस्तलिखित कृतियों का उल्लेख है। इन ग्रन्थों में वर्णनात्मकता के साथ-साथ भावात्मकता को भी स्थान दिया गया है। इन यात्रापरक कृतियों में गद्य की अपेक्षा पद्य की प्रधानता है और पद्य में भक्ति भावना को प्रमुखता दी गई हैं। इस समय एक स्वतन्त्र साहित्यिक विधा के रुप में इन यात्रा परक कृतियों का विकास नहीं हो पाया फिर भी हिन्दी साहित्य परम्परा में इनका विशेष स्थान है।

वर्तमान हिन्दी यात्रा साहित्य के आधुनिक रूप का विकास अन्य हिन्दी गद्य विधाओं की भाँति 19वीं शताब्दी में ही हुआ। हिन्दी यात्रा साहित्य के विकास में एक सशक्त हस्ताक्षर हैं प्रसिद्ध यायावर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन। राहुलजी को केन्द्र में रखकर हिन्दी यात्रा साहित्य के विकास क्रम को तीन सोपानों में विभक्त किया जा सकता है। वे हैं- 1. राहुल सांकृत्यायन के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्य। 2. राहुल सांकृत्यायन के यात्रा साहित्य। 3. राहुल सांकृत्यायन के परवर्ती यात्रा साहित्य।

आधुनिक यात्रा साहित्य का प्रारंभिक रूप विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रकाश में आया। मुंशी सदासुखलाल के संपादकत्व में 'बुद्धिप्रकाश' नामक एक साप्ताहिक पत्र हैं; जिसमें शिमला से काश्मीर तक की एक पैदल यात्रा का वर्णन है, जिसे हिन्दी के प्रथम प्रकाशित यात्रा वृत्त के रूप में स्वीकारा है। निबन्ध शैली में लिखित इस यात्रा वर्णन में खड़ी बोली का विकसित रूप देखा जा सकता है। इस सम्बन्ध में डॉ0 रघुवंश का कथन है, *'यात्रा साहित्य का विकास शुद्ध निबन्धों की शैली में माना जा सकता है। निबन्ध शैली की व्यक्तिपरकता, स्वच्छन्दता तथा आत्मीयता आदि गुण यात्रा साहित्य में भी पाए जाते हैं।'*[8] अर्थात् यात्रा साहित्य की प्रारंभिक शैली निबन्ध शैली है। गद्य की अन्य विधाओं की भाँति-वृत्त लेखन का सूत्रपात भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही किया। भारतेन्दु ने 'कविवचनसुधा' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया और जिसके माध्यम से अपने यात्रा-वृत्तों को पाठकों तक पहुँचाने का कार्य किया। 'सरयूपार की यात्रा' नामक एक यात्रा वर्णन इसमें प्रकाशित हुआ। जिसमें वैसवारे के पुरुषों और स्त्रियों की विशेषताओं पर प्रकाश डाला गया है। 'जनकपुर की यात्रा', 'जबलपुरयात्रा', 'हरिद्वार की यात्रा', 'लखनऊ की यात्रा', 'वैद्यनाथ की यात्रा', 'मेहदावल की यात्रा' ये कविवचनसुधा में प्रकाशित भारतेन्दु के प्रसिद्ध यात्रा-वृत्तान्त है। उस समय एक स्वतन्त्र विधा के रूप में यात्रा साहित्य का विकास नहीं हुआ है, इसलिए ही आलोचकों ने इन्हें निबन्ध विधा के अन्तर्गत समाविष्ट कर लिया है। इन यात्रा वर्णनों को भारतेन्दु ग्रन्थावली भाग-3 में संकलित किया गया है। तीर्थाटन के लिए की गयी इन यात्राओं में विभिन्न प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य, रीति-रिवाज, खान-पान तथा बोलचाल की भाषा का सुन्दर विवरण उपलब्ध है। 'हरिद्वार की यात्रा' में वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन प्रस्तुत किया है, *''मैं उस पुण्य-भूमि का वर्णन कर रहा हूँ, जहाँ प्रवेश करने से ही मन शुद्ध हो जाता है। यह भूमि तीन ओर से सुन्दर, हरे-भरे पर्वतों से घिरी है, जिन पर्वतों पर अनेक प्रकार की बिल्ली, हरी-भरी सज्जनों के शुभ मनोरथों की भाँति फलकर लहलहा रही है।''*[9] यहाँ भारतेन्दुजी ने पुण्य भूमि हरिद्वार का वर्णन किया है। पर्वतीय सौन्दर्य के वर्णन करने में भारतेन्दुजी अत्यन्त श्रेष्ठ है। उनकी राय में उस पुण्य भूमि में प्रवेश करने से मन की शुद्धि होती है।

पं0 बालकृष्ण भट्ट तथा प्रतापनारायण मिश्र ने भारतेन्दु के समान यात्रा निबन्धों की रचना की है। बालकृष्ण भट्ट का 'कतिकी का नहान' तथा 'गया-यात्रा', प्रतापनारायण मिश्र की 'विलायत-'यात्रा' इसका प्रमाण है। ओरियण्टल प्रेस लाहौर से सन् 1883 ई0 में प्रकाशित 'लंदन-यात्रा' को हिन्दी का प्रथम प्रकाशित ग्रन्थ माना जाता है। हरदेवीजी ने इसका लेखन कार्य सम्पन्न

किया है। श्री भगवानदास वर्मा द्वारा सन् 1884 ई0 में केवल 26 पृष्ठों की एक लघु यात्रा वृत्तांत प्रकाशित किया; जिसका नाम है 'लंदन का यात्री', जिसमें लेखक की लंदन यात्रा का वर्णन है। 'मेरी पूर्व दिग्यात्रा' तथा 'मेरी दक्षिण दिग्यात्रा' नामक कृतियों के रचयिता पं0 दामोदर शास्त्री ने यात्रा-साहित्य परम्परा को आगे बढ़ाया। प्रथम ग्रन्थ में भारत के पूर्वी क्षेत्र और दूसरे ग्रन्थ में दक्षिण भारत की यात्राओं का उल्लेख है। व्रज के वन-उपवन, मेले-उत्सव तथा मथुरा, वृन्दावन, गोकुल आदि का वर्णन करते हुए 'व्रज विनोद' नामक यात्रा ग्रन्थ सन् 1888 ई0 में प्रकाशित हुआ। यह ग्रन्थ भारतेन्दु के अभिन्न मित्र तोताराम वर्मा द्वारा विरचित है। बाबू देवी प्रसाद खत्री इस समय के प्रसिद्ध यात्रा वृत्त लेखक है। धार्मिक उद्देश्य से की गयी यात्राओं का विवरण 'रामेश्वर यात्रा' तथा 'बदरीकाश्रम यात्रा' नामक ग्रन्थों में समाहित किया है। दक्षिण भारत की यात्रा से सम्बन्धित ग्रन्थ है रामेश्वर यात्रा। डायरी शैली में लिखित इस ग्रन्थ में यात्रा की गई प्रदेश की प्रकृति, संस्कृति, समाज व्यवस्था आदि को स्थान दिया है। दूसरा ग्रन्थ बदरीकाश्रम की यात्रा से संबंधित है; जो यात्रियों के लिए एक पथ प्रदर्शिका है। इसी समय पं0 बेगू मिश्र द्वारा रचित काव्यात्मक यात्रावृत्त 'व्रज-यात्रा' का प्रकाशन हुआ, जिसमें व्रज का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है। इनमें अधिकांश यात्रा -वृत्त भारतीय यात्राओं से ही सम्बद्ध हैं, जिसमें धार्मिक प्रवृत्ति की प्रधानता रही है। गद्य तथा पद्य शैली में लिखित इन यात्रा ग्रन्थों की भाषा का निश्चित रूप नहीं है; इनमें खड़ीबोली तथा व्रज भाषा का प्रयोग किया गया है।

सन् 1900 ई0 के बाद यात्रा-वृत्तों की संख्या बढ़ने लगी। सरस्वती, मर्यादा, इन्दु आदि पत्र-पत्रिकाओं में यात्रा साहित्य की धूम मच गयी। सरस्वती में काश्मीर, नेपाल, बनारस तथा मलाबार आदि यात्राओं से सम्बन्धित यात्रा वृत्त प्रकाशित किया। स्वयं द्विवेदीजी ने उसमें 'उत्तरी ध्रुव की यात्रा', 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा' आदि यात्रा वर्णन प्रस्तुत किए हैं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक की अमेरिका यात्रा से सम्बन्धित यात्रावृत्त भी प्रकाशित हुए हैं। इन्दु पत्रिका में बाबू लाल नारायण सिंह द्वारा लिखित 'दक्षिणी ध्रुव की यात्रा' प्रकाशित हुई। मर्यादा पत्रिका के माध्यम से अनेक यात्रावृत्त प्रकाश में आये हैं। श्री मंगलानंद द्वारा रचित 'मिरिच (मारिशस) यात्रा', श्रीमती उमा नेहरू द्वारा लिखित 'युद्ध की सैर', शिवप्रसाद गुप्त द्वारा कृत 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' आदि उनमें प्रमुख हैं। पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित इन यात्रा कृतियों के साथ-साथ अनेक यात्रा ग्रन्थ भी उस समय प्रकाश में आए हैं। पाँच खण्डों में प्रकाशित 'भारत भ्रमण' नामक यात्रा ग्रन्थ उनमें प्रमुख हैं। यह ग्रन्थ श्री साधु चरण प्रसाद द्वारा लिखित है। सम्पूर्ण भारत की यात्राओं से सम्बन्धित यह ग्रन्थ साहित्यिक दृष्टि से उत्कृष्ट न होने पर भी पौराणिक एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। इस समय देशी यात्राओं का वर्णन भी मिलता है। ठा. गदाधर सिंह द्वारा रचित 'चीन में तेरह मास', 'हमारी एडवर्ड तिलक (विलायत) यात्रा', 'रूस-जापान युद्ध (3 भाग) आदि ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। इन ग्रन्थों में चीन, जापान, रूस, लंदन आदि देश की यात्राएँ वर्णित हैं। श्री गंगाप्रसाद गुप्त ने 'लंका टापू की सैर' नामक कृति में देश के रीति-रिवाज का सुन्दर वर्णन किया है। गद्य एवं पद्य दोनों शैलियों में लिखित महत्त्वपूर्ण यात्रा ग्रन्थ है पं. रामशंकर व्यास द्वारा रचित 'पंजाब यात्रा'। श्री धनपति लाल द्वारा कृत 'श्रीद्वारिकानाथ यात्रा', पं. तोताराम सनाटश द्वारा रचित 'फिजी में मेरे इक्कीस वर्ष', बाबू गोपाल राम गहमरी की 'लंका-यात्रा' श्रीधर पाठक का 'देहरादून', श्री शिवपूजन सहाय कृत 'बिहार का विहार', पं0 बलरामजी दुबे कृत 'श्री बदरी केदार यात्रा', श्रीमती भवानी देवी कृत 'रामेश्वर यात्रा' आदि यात्रा-वृत्तों के नाम भी उल्लेखनीय है। सत्यदेव परि-व्राजक इस समय के महान घुमक्कड़ एवं यात्रा साहित्य रचयिता है। उनके यात्रा ग्रन्थ अमरीका, यूरोप तथा भारत के दुर्गम पर्वतीय क्षेत्र श्री कैलाश-मानसरोवर की यात्रा से सम्बन्धित है। स्वामीजी की पहली यात्राकृति है 'अमरीका-दर्शन'। इसमें वहाँ के नगरीय जीवन, नारी जीवन तथा शैक्षिक पृष्ठभूमि पर प्रकाश डाला गया है। साहित्यिक दृष्टि से अत्यधिक उत्कृष्ट कृति 'मेरी कैलाश यात्रा' उनकी दूसरी यात्रा कृति है। इसमें कैलाश तथा मानसरोवर की साहसिक यात्रा का वर्णन करते हुए लेखक ने खट्टे -मीठे अनुभवों को अंकित किया है। 'अमरीका भ्रमण' नामक कृति में अमरीका के भीतरी अंचल में प्रवेश कर वहाँ के जन-जीवन का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। केदाररूप राय द्वारा रचित 'हमारी विलायत यात्रा' भारत से लंदन तक की समुद्रीमार्ग से की गई यात्रा से सम्बन्धित है। उसमें उन्होंने समुद्री प्रकृति के दृश्य सौन्दर्य को बड़ी कुशलता से चित्रित किया है। लंदन एवं पैरिस की यात्राओं से सम्बन्धित श्री बेणीशुक्ल की कृति है 'लंदन-पेरिस की सैर'। यह वर्णनात्मक शैली में लिखित ग्रन्थ है और इसमें यात्रा के प्रति लेखक का जो उत्साह है वह भी दर्शनीय है। 'अफ्रीका यात्रा' नामक रचना भी इसी श्रेणी की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। यह श्री मंगलानन्द पुरी संयासी द्वारा रचित ग्रन्थ है। बारह अध्यायों में विभक्त इस कृति में अफ्रीकी जीवन का संपूर्ण वृत्तान्त दर्शनीय है। भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री पं0 जवाहरलाल नेहरू ने भी अपनी यात्राओं को लिपिबद्ध

कराने का प्रयास किया। 'रूस की सैर' तथा 'आँखों देखा रूस' इसका प्रमाण है। 'रूस की सैर' नामक कृति में उन्होंने रूस के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन पर प्रकाश डाला है। 'आँखों देखा रूस' यात्रा विषयक निबन्धों का संग्रह है। श्री मेहता जैमिनी भी इसी श्रेणी में आनेवाले एक प्रमुख यात्रा साहित्यकार है। 'श्याम देश की यात्रा' तथा 'अमरीका अर्थात् पाताल देश की यात्रा' उनके प्रमुख यात्रा ग्रन्थ है।

इस प्रकार राहुलजी के पूर्ववर्ती यात्रा साहित्यकार अपनी लेखनी से इसी विधा को समृद्ध कराने का प्रयास किया है। इनमें राष्ट्रीयता का गुण विशेष रूप से देखा जा सकता है। इसी समय विदेश-यात्राएँ पूर्वापेक्षा अधिक लिखी गयीं। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक जैसे लेखक राहुल युग में भी अपने यात्रानुभवों को लिपिबद्ध कराने का प्रयास करते रहे। राहुल सांकृत्यायन ने इस क्षेत्र में इतना अधिक काम किया कि आज वे इस विद्या के सर्वश्रेष्ठ लेखक माने जाते हैं।

राहुल सांकृत्यायन की यायावरी प्रवृत्ति रही और जीवन भर घुमक्कड़ी के साथ उनका अध्ययन-मनन, सूक्ष्म निरीक्षण दृष्टि, यात्रा की आत्मसंतुष्टि और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति की क्षमता ने उनके यात्रावृत्तांतों ने हिंदी गद्य साहित्य को समृद्धि दी है।

राहुल सांकृत्यायन के यात्रावृत्तांत की कालक्रम के अनुसार 1929 ई0 से 1949 ई0 तक यात्रा-साहित्य संबंधी उनकी उल्लेखनीय पुस्तकें हैं- मेरी लधाख यात्रा- 1929 ई0, लंका- 1927-28 ई0, मेरी यूरोप यात्रा- 1932 ई0, मेरी तिब्बत यात्रा- 1934 ई0, यात्रा के पन्ने- 1934-39 ई0, जापान- 1934 ई0, ईरान- 1934-37 ई0, तिब्बत में सवा वर्ष- 1939 ई0, रूस में पच्चीस मास- 1944-47 ई0, किन्नर देश में- 1947 ई0, घुमक्कड़ शास्त्र- 1949 ई0, एशिया के भूखण्डों में- 1959 ई0, चीन में क्या देखा- 1959 ई0।

राहुल सांकृत्यायन के इस यात्रा-साहित्य में उनकी भ्रमणवृत्ति से अर्जित आनंदानुभूति और नया ज्ञान खोजने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। कहीं बौद्धधर्म के प्रचार, साम्यवादी देशों रूस-चीन को देखने-जानने की ललक, तिब्बती साहित्य को समझने और हिमालय की सुंदरता का जीने का भाव उनकी यात्राओं का लक्ष्य रहा है। राहुल सांकृत्यायन मानते हैं कि यात्राओं ने उन्हें लेखक बनाया है ''यात्रा ने ही मेरे हाथ में जबरदस्ती कलम पकड़ा दी और स्वयं ही लेखन-शैली बनती गई। कलम के खोलने का काम मेरे लिए यात्राओं ने ही किया। इसलिए मैं इनका बहुत कृतज्ञ हूँ।'' राहुल जी का यात्रा-साहित्य पर्यटनवादी नजरिये से मुक्त है। उनके यात्रा-संस्मरणों में उनका ज्ञान झलकता है, साथ ही शैली-स्थापत्य की दृष्टि से भी उनका यात्रा-साहित्य महत्त्वपूर्ण है।

रामनारायण मिश्र, गणेशनारायण सोमानी, कन्हैयालाल मिश्र, सेठ गोविन्ददास आदि इस युग के अन्य उल्लेखनीय रचनाकार हैं। द्विवेदी युग के समान इस युग में भी विदेश यात्रा विषयक रचनाओं की प्रचुरता रही है।

हिंदी में यात्रावृत्तांतों का विकास लगातार होता रहा है। इस संबंध में कुछ और उल्लेखनीय यात्रा-साहित्य संबंधी कुछ कृतियाँ हैं- कैलाश दर्शन, डॉ0 सत्यनारायण- 1940 ई0, इराक की यात्रा, शिवनंदन सहाय- 1940 ई0, भारतवर्ष के कुछ दर्शनीय स्थान-चक्रधर हंस- 1949 ई0।

इनमें भी यूरोप संबंधी यात्रावृत्तों की ही अधिकता हैं। इसके बाद अमरीका तथा जापान विषयक यात्रावृत्त अधिक लिखे गए हैं।

स्वातंत्र्योत्तर युग

परिमाण, विषय वैविध्य तथा रचना-शिल्प की दृष्टि से हिंदी यात्रावृत्त का सर्वाधिक समृद्ध युग यही है। इस दौर के चर्चित यात्रावृत्तांत इस प्रकार हैं- कश्मीर की सैर, सत्यवती मलिक-1950 ई0 पैरों में पंख बाँधकर, श्रीरामवृक्ष बेनीपुरी- 1952 ई0, अरे यायावर रहेगा याद, अज्ञेय- 1953 ई0, आँखों देखा रूप, पं0 जवाहरलाल नेहरू- 1953 ई0, खंडहरों का वैभव, मुनि कांतिसागर- 1953 ई0, आखिरी चट्टान तक, मोहन राकेश- 1953 ई0, रूस में छियालीस दिन, यशपाल जैन-1953 ई0, बस्ती खिले गुलाबों की, केदारनाथ अग्रवाल- 1944 ई0, तंत्रलोक से यंत्रलोक तक, डॉ0 नगेन्द्र- 1978 ई0, द्वितीयोनास्ति, हेमंत शर्मा- 2013 ई0।

यात्रा-साहित्य की और भी बहुत सी रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें प्राकृतिक सौंदर्य को सराहने के बजाय उस क्षेत्र भूगोल और इतिहास के साथ-साथ कला, साहित्य-संस्कृति का गंभीर और सरस विश्लेषण किया गया है। दरअसल यात्रा-साहित्य विपुल मात्रा

में रचित है। उसके अनेक प्रकार हैं- देश-विदेश की यात्राएँ, सांस्कृतिक-साहित्यिक यात्राएँ, ऐतिहासिक-राजनीतिक यात्राएँ, भौगोलिक, धार्मिक यात्राएँ और केवल यात्रा के लिए यात्राएँ। यात्रा-साहित्य के द्वारा एक ओर जहाँ लेखक की यायावर घुमक्कड़ प्रवृत्ति, उसका उत्सवधर्मी जोखिम उठाने वाला हिम्मती व्यक्तित्व, उसकी जीवन-दृष्टि आदि वैयक्तिक विशिष्टताएँ सामने आती हैं। वहीं संपदा वर्णनकला, सूक्ष्म-निरीक्षण दृष्टि, अभिव्यक्ति सामर्थ्य, भाषा-अधिकार, शब्द-संपदा और यात्रा-वर्णन की शैली-शिल्प का विकास भी समझ में आता है। यात्रावृत्तांतों का गंभीर आलोचनात्मक एवं इतिहासपरक अध्ययन बेहद जरूरी है। इससे हिंदी गद्य को संपूर्णता में समझा जा सकता है।

आजादी के बाद दुनिया के दूसरे देशों के साथ भारत के कूटनीतिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक संबंध जुड़े। पर्यटकों के साथ-साथ राजनीतिज्ञों, विदेश में रोजगार इच्छुकों, छात्रों एवं साहित्यकारों को भी विदेश यात्रा के पर्याप्त अवसर मिले। इसके कारण यह युग यात्रावृत्त साहित्य की समृद्धि का युग है। रूस से संबद्ध यात्रावृत्तों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा कुछ अधिक ही रही है। स्वदेश विषयक यात्रावृत्तों में लेखकों की दृष्टि कश्मीर से कन्याकुमारी तक व्याप्त रही है। लेखकों ने देश के विभिन्न भू-भागों के प्राकृतिक-सौंदर्य का मार्मिक वर्णन के साथ-साथ विभिन्न अंचलों के व्यक्तियों के आचार-विचार, अध्यात्म -दर्शन, खान-पान, वेशभूषा आदि के मार्मिक शब्दचित्र खींचे हैं। राहुल सांकृत्यायन, सेठ गोविन्ददास, बनारसीदास चतुर्वेदी, यशपाल, भगवतशरण उपाध्याय, रामधारी सिंह दिनकर, रामवृक्ष बेनीपुरी, विष्णु प्रभाकर, मोहन राकेश, यशपाल जैन, देवेन्द्र सत्यार्थी और अज्ञेय आदि इस युग के उल्लेखनीय रचनाकार हैं।

अजीत कुमार, इंदू जैन, रीतारानी पालीवाल, हरिमोहन शर्मा, हेमचंद्र शर्मा, हेमचंद्र सकलानी इन दिनों यात्रावृत्तांत लिखने वाले प्रमुख लेखक हैं। निष्कर्षतः कह सकते हैं कि हिंदी का यात्रावृत्त साहित्य पर्याप्त संपन्न एवं वैविध्यपूर्ण होता जा रहा है।[10]

संदर्भ ग्रंथ

[1]राहुल सांकृत्यायन -घुमक्कड शास्त्र, पृष्ठ संख्या 81
[2]सत्यदेव परिव्राजक -यात्री-मित्र, पृष्ठ संख्या 34
[3]अक्षयकुमार जैन -दूसरी दुनिया के 'दो शब्द' से
[4]हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1, पृष्ठ संख्या 663
[5]रामचन्द्र तिवारी -हिन्दी का गद्य साहित्य, पृष्ठ संख्या 196
[6]सत्यदेव परिव्राजक -मेरी जर्मन यात्रा, पृष्ठ संख्या 106
[7]डॉ0 रघुवंश -आलोचना, जुलाई 1954, पृष्ठ संख्या 11-12
[8]डॉ0 रघुवंश -हिन्दी साहित्य कोश, पृष्ठ संख्या 609
[9]भारतेन्दु हरिश्चन्द्र -हरिद्वार की यात्रा; भारतेन्दु ग्रन्थावली (तीसरा भाग), पृष्ठ संख्या 943
[10]हिन्दी साहित्य का इतिहास -हेमन्त कुकरेती

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,22-27
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 अगस्त 2016

लोक-बोलियों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक साम्यता

डॉ. उत्तम पटेल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *लोक-बोलियों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक साम्यता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *उत्तम पटेल* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

भारतीय लोकगीतों में स्थानीय बोली-भेद होने के बावजूद भी उसका रँग तो एक ही है। मानव-हृदय और उसमें महसूस होने वाली संवेदना को भाषा और बोली के भेद नहीं होते। दक्षिणी गुजरात की कुंकणा और अहिराणी (खानदेशी) बोली के लोक गीतों में गजब की साम्यता है। ऐसी ही साम्यता कुंकणा और अवधी के लोकगीत में भी पायी जाती है। यह समानता कुंकणा, डोगरी, संताली, हो, कुडुक आदिवासियों की लोक-कथाओं में भी देखी जा सकती है। मुण्डारी, संताली, हो और कुडुख आदि बोलियों में मिलनेवाली करमा और धरमा तथा सूर्य और चंद्र की लोक-कथाओं में पर्याप्त समानता है। इन आदिवासियों के कृषि पर्वों एवम् पद्धतियों, उनकी जाति विषयक उत्पत्ति, सगोत्र विवाह संबंधी मान्यताओं में एवम् नृत्यों में समानता पायी जाती है।

भूमिका

विभिन्न प्रांतों के लोकगीतों को अगर हम देखेंगे तो करीबन हरेक बोली के लोकगीतों में आश्चर्यजनक रूप से भाव-साम्य दृष्टि-गोचर होगा। भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता अनेकता में एकता के दर्शन होंगें। श्री गुलाबराय के शब्दों में- भाषाओं का भेद होते हुए भी विचारों की एकध्येयता रही है। श्री गुलाबराय के शब्दों में- ''भाषाओं का भेद होते हुए भी विचारों की एकध्येयता रही है।''[1] लोकगीतों में स्थानीय बोली-भेद होने के बावजूद भी उसका रँग तो एक ही है। मानव-हृदय और उसमें महसूस होनेवाली संवेदना को भाषा और बोली के भेद नहीं होते। उसे तो प्रांत और देश की सीमाएँ भी बाँध नहीं सकतीं। इसलिए तो हृदय की मूल संवेदना तो एक ही होती है चाहे बोली और भाषा क्यों न हो। यही कारण है कि हरेक प्रांत के लोकगीतों में मानवीय भावनाएँ, जैसे कि सुख-दुख, आशा-निराशा, क्रोध-घृणा, मोह, ममता आदि भावों की सहज अभिव्यक्ति हुई है। यही तो ''भारतीयता की समन्वय की विशेषता हैं।''[2] भारतीय साहित्य भाषा-बोली को लेकर कभी विभाजित नहीं हुआ

* [अध्यक्ष] हिन्दी विभाग, श्री वनराज आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज [धरमपुर] वलसाड (गुजरात) भारत। E-mail : uttam.patel07@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है। सिर्फ भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व साहित्य में भी यह समानता देखी जा सकती है। के. सच्चिदानंद ने भी उचित ही लिखा है- ''भारतीय संस्कृति कोई एकल या अखण्ड संस्कृति नहीं है और न ही भारतीय साहित्य एकालाप है या उसमें अनेक स्वर, अनेक रंग और अनेक विश्व दृष्टियाँ समाहित हैं।''[3]

श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के शब्दों में प्रांत-प्रांत के लोकगीतों की यह साम्यता हिन्दुस्तानी संस्कृति की एकता का जबरदस्त प्रमाण है। अनेक क्षुद्रताओं के बावजूद भी लोक-जीवन का रचनात्मक सौंदर्य हजारों सालों से इन गीतों में अलग-अलग रँग भर रहा है। भाषा बदलती रहती हैं। भाषा के शरीर बदल बदलकर भी लोकगीतों ने अपना प्राचीन पहचान कायम रखी है।

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर का भी कथन है कि सभी देशों के लोकगीतों का संकलन कर उसके तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि सभी के मन और हृदय एक हैं, जो मनुष्य मात्र में समान है।

इस प्रकार अगर हम हरेक प्रांत के लोकगीतों की भाषा, छंद और शैली आदि बाह्य आवरणों को दूर करके उसकी आंतरिक भावनाओं का तुलनात्मक या समन्वयात्मक अध्ययन करेंगे तो हमें उसकी तलहटी में सामूहिक चेतना और प्रेरणा दिखाई देगी। जो हरेक मानव-हृदय की भावनाओं एवम् क्रिया-कलापों में अभिव्यंजित होती है। इस प्रकार लोकगीतों में भावों की गजब की साम्यता है।'' जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचारधाराओं और जीवन-प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण से अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना-पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता का अनुसंधान भी सहज संभव है। भारतीय साहित्य का प्राचुर्य और वैविध्य तो अपूर्व है ही, उसकी यह मौलिक एकता और भी रमणीय है।''[4] जिसके उदाहरण इस प्रकार हैं-

दक्षिणी गुजरात की एक कुंकणा गीत में पिहर आयी हुई कन्या अपनी बहन से कहती है- ''भावु माला डोगर बाजु नोको देवुंव.../ भावा माला डोंगर चढाये रडु/ एतेव भावु माला डोंगर चढाये रडु,/ भावु माला..../ भावु माला काडम काडाये रडु एतेव/ भावु माला.../ भावु माला दळन दळाये रडु एतेव/ भावु माला.../ भावु माला पानी लियाये रडु एतेव/ भावु माला डोंगर बाजु नोको देवुंव.../ भावु माला...''

अनुवाद : हे भाई ! पहाड़ी गाँवों में मुझे मत देना (अर्थात् मेरी शादी न करवाना-रचवाना)। (क्योंकि) मुझे तो पहाड़ पर चढ़ने के सोचने मात्र से रोना आता है। अतः पहाड़ी गाँव में मेरी शादी न करवाना। मुझे तो धान कूटने के सोचने मात्र से रोना आता है। धान पीसने के सोचने मात्र से रोना आता है। (क्योंकि वहाँ धान कूटने या पीसने की सुविधा नहीं है अतः इसके लिए या तो मुझे बोझ उठाकर पहाड़ से उतर कर दूर बाजार में जाना पड़ेगा अथवा ये काम मुझे घर पर ही स्वयं करने पड़ेगें) हे भाई ! मुझे तो पानी भरने के सोचने मात्र से रोना आता है। (क्योंकि गर्मी के दिनों में पानी सूख जाता है अतः पानी लेने के लिए पहाड़ से उतर कर एक-दो किलोमीटर दूर तक पैदल जाना पड़ता है।) अतः हे भाई ! पहाड़ी गाँव में मेरी शादी न रचाना।

''इकुन डोंगर तुल, तीकुन डोंगर तुल/ मधी कोंडवला तुल (2)/ सासुस झगडील तुल, आयकाय लागील,/ मधी कोंडवला तुल (2)/ इकुन डोंगर तुल.../ सासराश झगडील तुल, आयकाय लागील,/ मधी कोंडवला तुल (2)/ इकुन डोंगर तुल.../ देरुश झगडील तुल, देराणीश झगडील/ तुल आयकाय लागील/ मधी कोंडवला तुल (2)/ इकुन डोंगर तुल, तीकुन डोंगर तुल/ मधी कोंडवला तुल (2)''

अनुवाद : (पहाड़ी गाँव में जब किसी लड़की की शादी तय हो जाती है, उस समय उसकी सखी उससे कहती है) - इधर भी पहाड़, उधर भी पहाड़ (बीच में तेरी ससुराल का गाँव है) तुझे दोनों पहाड़ों के बीच कैद कर दिया गया है। सास तुझसे झगड़ा करेगी तो (उसकी) खरी-खोटी (तुझे) सुननी पड़ेगी। (क्योंकि वहाँ से तू रूठ कर पीहर तो आ नहीं पाएगी।) ससुर तुझसे झगड़ा करेगा तो (उसकी) खरी-खोटी (तुझे) सुननी पड़ेगी। (क्योंकि) पहाड़ों के बीच तुझे कैद कर दिया गया है। देवर-देवरानी झगड़ा करेंगे तो (उनकी) खरी-खोटी (तुझे) सुननी पड़ेगी (क्योंकि) पहाड़ों के बीच तुझे कैद कर दिया गया है।

एक नागपुरी कन्या की शादी दूर देश में की जाती है। शादी के कारण माता-पिता, भाई-भाभी व सहेलियों से अलग होने का उसे अपार दुःख है- ''किया लागिन आमा मोके दूर देशे देले,/ मोके जीवा कलपाले हाय रे,/ गुनि-गुनि मने आमा नयन झंझाले,/ हाय रे नयना झंझाले।[5]

तो एक अहिराणी (खानेदेशी) लोकगीत में कन्या अपने भाई से कहती है- हिल नहीं पाती, चल नहीं पाती दादा, किसी के सामने कह नहीं पाती। नाशिक भाग में मेरी शादी मत करवाना। अंगूर तोडने मुझे लगाना मत। क्योंकि अंगूर की टोकरी

मैं उठा नहीं पाऊँगी। जळगाँव में मेरी शादी मत करवाना। केले तोड़ने मुझे मत लगवाना। क्योंकि केले की टोकरी मैं उठा नहीं पाउँगी। मेरी शादी नागपुर में मत रचाना। संतरे तोड़ने मुझे मत लगाना। क्योंकि संतरे की टोकरी मैं उठा नहीं पाउँगी-

''हलवे ना दादा चालवे ना कोणापुढ माले बोलवेना.../ ह्या नाशिक भाग मा माले देवू नको रे/ ह्या द्राक्षे तोडाले माले लाबू नको रे.../ ह्या दराक्षेसनी पाटी माले उचलाये ना.../ ह्या जलगाव भाग मा माले देवू नको रे/ त्या केये तोडाले माले लावू नको रे/ त्या केये सनी पाटी माले उचलाये ना.../ ह्या नागपुर भाग मा माले देवू नको रे/ ह्या संतरी तोडाले लावू नको रे/ ह्या संतरी सनी पाटी माले उचलये ना...''[6]

(2)

''झीरमीर पोळसे वरस, भीजवली व चीकारु माटी(2)/ मीं त व वटुली थापली, ते वर वबसील सास रे,/ मीं त व परायी नार...(2)/ झीरमीर व पोळसे वरस,/ भीजवली व चीकारु माटी(2)/ नार नीव वटुली थापली,/ ते वर वबसील सास रे,/ मीं त व परायी नार(2)/ नारनीव वटुली थापली,/ ते वर बसील सासु,/ मीं तव परायी नार(2)''

(*अनुवाद :* झिरमिर वर्षा हो रही है। जिससे चिकनी मिट्टी भीग गई है। जिसकी मैंने चौकी बनायी है। उस पर सास-ससुर बैठे हैं। मैं तो परायी नारी हूँ।)

नई दुलहन अपनी ससुराल जाकर मिट्टी को पानी से भीगो कर चौकी बनाती है। उस पर ससुर, सास, ननद आदि को बैठे देखकर आनंदित होती है। वह तो परायी नारी है। फिर भी उसने ससुराल में आकर सभी के दिल जीत लिए हैं। पराये को अपने बनाने की रीति नारी से बेहतर कोई नहीं जानता !

तो एक अहिराणी (खानदेशी) लोकगीत में बेटी माँ से कह रही है- ''नदि काठनी चिकनी माटी, माटी लेवाले जाऊ व माय/ अशी माटी चांगली तर, वट्टा तरी लिपू व माय/ असावट्टा चांगल तर, घट्या तरी मांडू व माय/ असा घटया चांगला तर, सोजी करी दऊ व माय/ असी सोजी चांगली तर, लाडू तरी बांधू व माय/ असा लाडू चांगला तर, पेटी मा भरी ठेबू व माय/ अशी पेटी चांगली तर, घोडा करी ठेबू व माय/ असा घोडा चांगला तर, माहेर तरी लई जाऊ व माय/ आस माहेर चांगल तर, बांगडया बिल्लोर भरू व माय/ आशा बांगडया चांगल्या कतर, धुम्मा मस्ती खेऊ व माय।''[7]

(3)

''कुंकणा बोली का एक और गीत दर्शनीय है- ''वाढ वाढ चंदन झाड/ माल जाव दे वरले देश/ सात भाउ, एक बयीन, हारी वाढेल, हारी खेलेल/ बईन असी डोकी धव,/ एके केस नींछी पड/ पाने मांत माछुक मरील,/ बाहेर टांकन जीव मरील,/ पूडी वाली पानेन टांक/ धाकला भाऊ पूडी ईंच,/ केस हेरी ईचार कर/ कनी बायको डोकी धव/ माना लगना लीजो माय/ आयकी माय ईचार कर,/ जुवा हेर केस माय,/ नींही पड मेल जीसां,/ धाकली बईन डोकी उकल,/ केस येतो तीने माय,/ बईन भाऊ लगना कर,/ ईत काही मेल पड।''

अनुवाद : सात भाईयों की एक बहन थी। सभी साथ में बडे हुए थे, खेले भी थे। एक दिन बहन (जो सातों भाईयों में सबसे छोटी थी) बाल धोने नदी में गई। (बाल धोते समय) एक बाल निकल पडा। (उसने सोचा) अगर बाल पानी में डालूंगी तो (उसे निगल जाने से) मछली मर जायेगी। (और यदि) बाहर फेंक दूँगी तो जीव-जंतु (बाल खाने से) मर जायेंगे। (अतः उसने) पुडी बनाकर बाल को नदी में डाल दिया।

(नदी के ऊपरी बहावमें बहन बाल धो रही थी जबकि नदी के नीचे के बहाव में छोटा भाई नहा रहा था।) उसने नदी में बहती हुइ पुडी को देखा तो उसमें एक बाल था।

उसने सोचा, वह लडकी बडी बुद्धिमती होगी। (जिसने जीव-जंतुओं के बारे में सोचा।) यह बाल किस लडकी का होगा। और वह निश्चय करता है कि शादी करूँगा तो उसी से (और) उसने यह बात अपनी मां से कही।

उसकी मां सोच में पड गई। मुहल्ले भरकी लडकियों को, जूं देखने के बहाने वह कंधी कर देती और अपने बेटे ने जो बाल दिया था, उसका नाप भी ले लेती। फिर भी उस बाल वाली लडकी का पता नहीं चला।

एक दिन वह अपनी बेटी को कंधी कर रही थी। (तब उसने बाल का नाप ले कर देखा) तो बाल उसीके नाप का निकला। मां ने यह बात बेटे से कही कि वह बाल तो तेरी बहन का है। किन्तु बेटा नहीं माना। परिणाम भाई-बहन की शादी तय हुई। शादी के दिन जैसै-जैसे निकट आते हैं, बहन को चिता होती है। तब वह एक चंदन के वृक्ष को रोपते हुए उससे कहती है-

हे चंदन, तू जल्दी से बडा हो जा और मुझे स्वर्ग में ले जा। (क्योंकि अब तो ईश्वर ही मेरी सहायता कर सकता है अर्थात् अगर मैं मर जाऊँगी तब ही यह समस्या हल होगी।)

ऐसा ही एक गीत अवधी में है जिसमें एक भाई अपनी ही बहन से शादी करना चाहता है। बहन पानी भरने जाती है। भाई अपनी बहन के सिर पर घड़ा रखने में मदद करता है, इसी बीच बहन का आँचल सरक जाता है। तो उसकी नजर बहन के उन्नत उरोजों पर पड़ती है। घर आकर वह अपनी भाभी के सामने बहन से शादी करने की इच्छा व्यक्त करता है। जैसे- ''सात बिरन रूना बहिनी ना/ रूना चली हइं सागर पनिया हो ना..../ गगरी जउ बोरिन धरीं जउ कररवा हो ना/ जोहन लागीं गगरी उठवइया हो ना.../ घोड़वा चढ़ल आवइ राउर भइया हो ना/ बहिनी हम तोर गगरी उठउबइ हो ना.../ गगरी उठावत वनकइ छुटिगै अंचरवा हो ना/ भइया कइ परिगा नजरिया हो ना..../ अब गोड़े-मूड़े तानेन चदरिया हो ना/ बइठी जगावइं वनकइ माया बढ़इतिनि हो ना..../ उठा बेटा करा दतुनिया हो ना/ माया सिर मोरा बहुतइ धमाकै हो ना.../ बैठी जगावइं वनकै भउजी बढ़इतिनि हो ना/ उठा देवरा सींझा जेवनरवा हो ना..../ सीझा जेवना न जेंवउं मोरी भउजी हो ना/ बहिनी संग फिरबइ भंवरिया हो ना..../ जरइ देवरा तोरा अकिलि गिअनवा हो ना/ बहिनी संग फिरबेआ भंवरिया हो ना...''[8]

यह समानता सिर्फ लोकगीतों तक सीमित नहीं है। उनकी लोक-कथाओं में भी यह देखी जा सकती है। 'खावला, पीवला और नाचुला' या 'एकना दीम तोकना, कत्था दीम डंडी' (कुडुख) या 'सेन गे सुसुन, कजि गे दुरङ' (मुम्डारी) या 'रोड़ाक गे राडाक खान सेरेज आर ताडाम गे लुहुकाक खान एनेच होयोक आ' (संताली) और 'चलना ही नृत्य है और बोलना ही गीत' (मुंडा) मानने वाले इन कुंकणा, डोगरी, संताली, हो, कुडुक आदि आदिवासियों की लोक-कथाओं में कायान्तर है परंतु आत्मा एक है, उनके मूल भाव एक हैं। मुण्डारी, संताली, हो और कुडुख आदि बोलियों में मिलनेवाली करमा और धरमा तथा सूर्य और चंद्र की लोककथाओं में पर्याप्त समानता है। इन लोककथाओं में करमराजा के प्रसन्न होने पर सभी वस्तुएँ धन-धान्य के रूप में परिवर्तित हो जाती हैं।

मावली-कनसरी (कुंकणा-धोडिया), देवमोगरा-याहामोगी (वसावा), न्यूकोम (अरुणाचल) देवियाँ धान्य की देवियाँ हैं। जिनकी ये हर साल नई फसल के तैयार होने पर विवाह भी रचाते हैं। दक्षिणी गुजरात के वलसाड, नवसारी तथा आहवा-डांग जिलों में ये परंपरा आज भी धूमधाम से मनायी जाती है। इनके अधिकतर त्योहार कृषि-कार्य के प्रारंभ या समाप्ति पर होते हैं। जैसे- दिवासो (धरमपुर-वांसदा), सोलुंग (अरुणाचल प्रदेश), करम (झारखंड), लोम-किवाह (थाड़ो-कूकी) के त्योहार कृषि-कार्य की समाप्ति के बाद मनाये जाते हैं। 'दिवासो' दक्षिणी गुजरात के आदिवासियों का एक बड़ा त्योहार है जो कृषि-कार्य खासकर रोपनी की समाप्ति पर होता है। जिसे धूमधाम से मनाया जाता है। तो ''करमकृषि-संबंधी त्योहार है। भादों महीने तक कृषि -कार्य (रोपनी, निकौनी) समाप्त हो जाती है। तत्पश्चात् करमदेव से बिनती-आराधना की जाती है। अच्छी फसल एवम् रोग, दुःख से स्वयं को दूर रखने की प्रार्थना की जाती है।''[9] अधिकतर आदिवासियों में फसल या धन-धान्य की अच्छी पैदावार व घर के सदस्यों एवम् मवेशियों की सुख-शांति के लिए हवन-पूजन किया जाता है।

थाड़ो-कूकी आदिवासियों का 'लोम-किवाह' पर्व धान की फसल काटने के बाद मनाया जाता है।[10] फसलों से संबंधित 'हुन' त्योहार, जो फसलों के घुटने भर के हो जाने पर मनाया जाता है, भी इस समाज में प्रचलित है।

अरुणाचल के आदिवासियों का 'सोलुंग' त्योहार भी कृषि-प्रधान है जो जून-जुलाई महीने में सम्पन्न होता है। यह पर्व धान की रोपनी की समाप्ति के बाद 'किने नाने' और 'दोइंगबोते' को प्रसन्न करने के लिए मनाया जाता है। ये दोनों धन और वैभव की देवी और देवता हैं।[11] पाँचवे दिन गाँव के लोग अपने-अपने धान के खेतों में एक छोटा-सा घर बनाते हैं। उस घर में धान की अच्छी उपज के लिए, धान की फसल को तरह-तरह की बीमारियों तथा कीड़े-मकोडों के आक्रमण से बचाने के लिए 'आरक कोसोन' नामक अनुष्ठानिक पूजा करते हैं।[12] इसे वार्षिक कृषि-पर्व भी कहते हैं।

आदिवासियों की जाति विषयक उत्पत्ति में अधिकतर समानता दिखाई देती है। संताल अपनी उत्पत्ति 'हंस' से हुई मानते हैं[13] तो भीलों का उत्पत्ति विषय मत 'जल-प्लावन' वाली घटना से संबंधित है। जबकि वारली आदिवासियों का मानना है कि उनकी उत्पत्ति एक ऋषि, जिसकी लम्बी जटा थी, से हुई थी।

संतालों में सगोत्र विवाह वर्जित है। उराँव जनजाति में भी एक ही गोत्र में विवाह-संबंध नहीं होता। यही परंपरा गुजरात के आदिवासियों में भी है। जिसमें एक ही गोत्र में उत्पन्न आदिवासी, चाहे कहीं भी रहें, उन्हें परस्पर भाई-बहन या 'सगे' माना जाता है। यह परंपरा हो जाति में भी है। उराँव, मुण्डा, खड़िया, लोहरा जाति के गोत्रों को नाम जीव-जंतु, पेड़-पौधे के नाम पर आधारित हैं। ये जनजाति के लोग अपने गोत्र वाले पशु-पक्षियों, पेड़-पौधों का संहार नहीं करते, उन्हें भरसक बचाकर रखते हैं। प्रकृति की गोद में बसे और नदियों और पहाड़ों को भाई-बहन के रूप में देखनेवाले इन आदिवासियों का प्रकृति-प्रेम तो अन्य है।

भारतीय आदिवासियों की कृषि-पद्धतियों में भी समानता पायी जाती है। ''झारखण्ड के आदिवासी कृषि-कार्य के लिए ये अपनी आवश्यकता के हिसाब से काफी सीमित भूमि का चयन करते थे। जमीन का एक टुकड़ा जैसे ही कम उपजाऊ या बंजर हो जाता, वे खेती के लिए दूसरी जमीन तैयार करते। इस तरह पहली जमीन स्वतः प्राकृतिक रूप से उपजाऊ हो जाती। खेती की इस पद्धति को उनके यहाँ 'झूम-खेती' के नाम से जाना जाता है।''[14] वलसाड और आहवा-डांग के जिले के आदि-वासियों में हर साल अलग जगह पर घर बनाने की जो परंपरा दिखाई देती है उसके मूल में भी यही है।''[15] वलसाड और आहवा-डांग के जिले के वारली आदिवासियों की कृषि-पद्धति भी इसी प्रकार की है। वारली आदिवासी जिस जमीन पर खेती करते हैं, उसकी पूर्व तैयारी के रूप में, ''वर्षा के मौसम से पहले उसे पेड़ की बडी-बडी डालियाँ या झाड़ - झंखाड़ काटकर, उसके उठाकर पहाड़ पर ले जाया जा सके, उतने बोझ की बडी गठरियाँ, जिसे ये लोग कवळी कहते हैं, बनायी जाती है। जिसके सूख जाने पर सूळी (एक लकडी के उपर एक फट्टा बाँधा जाता है जिसके ऊपर गठरी रखी जाती है। फट्टे के नीचे का भाग शिर पर रख, लकडी को हाथ से पकड़कर उठाया जाता है।) से उठाकर खेती की भूमि पर डाला जाता है। इसे डालने से पहले उस भूमि की सफाई की जाती है अर्थात् उसमें पत्थर आदि हो तो उसे निकाल दिया जाता है जिसे 'जागा करना' कहते हैं। उसके बाद गठरियों पर थोड़ी मिट्टी डाली जाती है ताकि उसे जलाने पर राख हवा से उड़ न जाय। चावल की फसल के लिए जलायी जानेवाली भूमि को 'आदर' तथा नागली की फसल के लिए जलायी जाने वाली भूमि को 'डाहीं' कहते हैं।''[16] मुरिया आदिवासियों की कृषि-पद्धति भी वारलियों के समान ही है जिसे 'पारका' या 'दाही' कहा जाता है। इसमें ''पेड़ और पौधे, किसान और जगह से काटकर लाते हैं। फिर वे फैला दिए जाते हैं तथा उसके बाद उनमें आग लगाई जाती है। फिर राख को जमीन पर भली-भाँति फैलाकर, हल से उसे जमीन में उतारकर, बीज बोए जाते हैं।....पारका में लकड़ी किसी अन्य स्थल पर काटी जाती है और खेती की जाने वाली जगह, कन्धे पर रखे एक बाँस- जिसे असुर या भारणी कहते हैं- पर ढोकर ले जाई जाती है।''[17]

थाडो-कूकू आदिवासी 'सैपिखुपसुअ' नृत्य में हाथियों की चाल की और 'सागोल फेरवाई' जंगली भालू की चाल की नकल करते हैं[18] तो दक्षिणी गुजरात के कपराड़ा तहसील के कुंकणा आदिवासी 'ठाकरे' नृत्य में तो धोडिया आदिवासी तूर-नृत्य में पशु-पंछियों की नकल करते हैं।

थाडो लोग माँ के भाई की लड़की अर्थात् ममेरी बहन-जिसे 'नेई' कहा जाता है, उससे शादी करना ज्यादा पसंद करते हैं[19] यह परंपरा दक्षिणी गुजरात के कुंकणा आदिवासियों में भी प्रचलित है। यहाँ भी ममेरी बहन से शादी करने की प्रथा है। जब कि संतालों में भाई-बहनों के लड़के-लड़कियों के बीच विवाह करना वर्जित है। भारतीय आदिवासी में लड़कों को दहेज नहीं दिया जाता बल्कि दुल्हन पक्ष को पैसे दिए जाते हैं। थाडो आदिवासियों में दुल्हन खरीदने की प्रथा है। थाडो आदिवासी तो पत्नियों को खरीदते हैं। दक्षिणी गुजरात की धोडिया, कुकणा, वारली, गामित, वसावा आदि जनजातियों में कन्या-पक्ष से दहेज लिया नहीं जाता बल्कि उन्हें ही सहायता की जाती है। ऐसी स्वस्थ परंपराएँ आदिवासियों में ही हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार भारतीय आदिवासियों की बोलियों एवम् उनकी संस्कृति के अध्ययन से उस मूलभूत भारतीय संवेदना का पता लग जाता है, जिसके आधार पर भारतीय साहित्य की एकरूपता को प्रतिष्ठित किया जा सकता है। भारतीय आदिवासियों के लोकगीतों, लोक-कथाओं, उनकी जाति की उत्पत्ति विषयक व सगोत्र संबंधी मान्यताओं, उनकी कृषि-पद्धतियों एवम् पर्वों तथा नृत्यों में प्राप्त समानता से यह सिद्ध होता है कि इन आदिवासियों की बोलियों में अभिव्यक्त सांस्कृतिक अंतरसंबंध अनन्य है।

संदर्भ-संकेत

[1]गौतम, मूलचंद (2009) -भारतीय साहित्य, पृष्ठ संख्या 21, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
[2]अग्रवाल, पुरुषोत्तम (2008) -संस्कृति : वर्चस्व और प्रतिरोध, पृष्ठ संख्या 34, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
[3]सच्चिदानंद, के (2012) -भारतीय साहित्यः स्थापनाएँ और प्रस्तावनाएँ, पृष्ठ संख्या 60, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
[4]गौतम, मूलचंद (2009) -भारतीय साहित्य, पृष्ठ संख्या 72, नई दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन
[5]भुवनेश्वर (1992) -नागपुरी लोक-साहित्य, पृष्ठ संख्या 127, इलाहाबाद, जयभारती प्रकाशन
[6]देसाई, बापूराव (1996) -लोक-साहित्य, पृष्ठ संख्या 215-216, कानपुर, विनय प्रकाशन
[7]देसाई, बापूराव (1996) -लोक-साहित्य, पृष्ठ संख्या 236, कानपुर, विनय प्रकाशन
[8]उपाध्याय, कृष्णदेव (2011) -अवधी लोकगीत-1, पृष्ठ संख्या 237-238, प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन
[9]सिंहा, लक्ष्मणप्रसाद (2010) -भारतीय आदिवासी, पृष्ठ संख्या 184, इलाहाबाद, जयभारती प्रकाशन
[10]वही, पृष्ठ संख्या 167
[11]वही, पृष्ठ संख्या 154
[12]वही, पृष्ठ संख्या 155
[13]वही, पृष्ठ संख्या 118
[14]वही, पृष्ठ संख्या 147
[15]वही, पृष्ठ संख्या 147
[16]ओझा, सविता (15,दिसम्बर-2004), तादर्थ्य, पृष्ठ संख्या 28-29, अहमदाबाद, एम 29/ 249, आंबावाडी
[17]एलविन, वेरियर (2008) -मुरिया और उनका घोटुल-2, पृष्ठ संख्या 52, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन
[18]वही, पृष्ठ संख्या 168
[19]वही, पृष्ठ संख्या 169

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,28-32
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 24 अगस्त 2016

रामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड की विशिष्टता

डॉ. एम. रघुनाथ*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *रामचरितमानस में अयोध्याकाण्ड की विशिष्टता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *एम. रघुनाथ* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

''अयोध्याकाण्ड'' समस्त ''रामचरितमानस'' के कथानक का केन्द्र-बिन्दु है। ''बालकांड'' में राम की बाल-लीला के साथ समाज-द्रोही तत्व ताड़का, सुबाहु आदि को मारने की घटनायें समाने आती हैं। राम के राज्याभिषेक का भंग ही आगे के रामचरित्र विकास का कारण बनता है। जिस उत्साह से राम ताड़का और सुबाहु का वध करते हैं उसी उत्साह से ''निशिचर हीन करौ महि'' प्रतिज्ञा करते हुआ देखे जाते हैं। राम जिस वीरत्व का प्रदर्शन धनुष तोड़ने में करते हैं, उसका विकास खरदूषण आदि राक्षसों के बध तथा सकुल-रावण के विनाश में होता है। अयोध्याकांड का कथासूत्र ''मानस'' की कथा के अन्त तक पिरोया रहता है। ''अयोध्याकांड'' में राम राज्याभिषेक छोड़कर वन चले जाते हैं। रावण बध के उपरान्त अयोध्या लौटने पर ही उनका राज्याभिषेक ''उत्तरकांड'' में होता है।

समस्त रामकथा का केन्द्र-बिन्द्र होने के साथ-साथ ''अयोध्याकांड'' काव्य-सौन्दर्य, भाव सौन्दर्य, मार्मिक-चित्रण, पारिवारिक स्नेह, लोक-संस्कृति, भायप-भगति आदि का भी अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है। पुत्र का कितना पावन आदर्श है, जो पिता का वचन पूरा करने के लिए वन को चल देता है। सीता जैसी आदर्श नारी कहाँ मिलेगी, जो यह कहती दिखाई पड़ती है, ''प्रान नाथ तुम बिनु जग माहीं। मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं।।'' ''जिय बिनु देह नदी बिनु वारी। तैसिहि नाथ पुरूष बिनु नारी।।''

''भायप भगति'' और प्रेम का भरत की तरह महान आदर्श कहाँ मिलेगा जो नंगे पांव ही राम को मनाने के लिए चल देते हैं और उनकी चरणापादुकाऐ सिंहासन पर रखकर चौदह वर्ष तक तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं। चित्रकूट की सभा तो समस्त भारतीय आदर्शों और संस्कृति का समन्वित रूप है। राम और राम-समाज के संसर्ग से कोल और किरात भी पवित्र हो जाते हैं।

''अयोध्याकांड'' में राम-भक्ति की वेगवती धारा प्रवाहित हुई है। भरत तो राम-प्रेम की साक्षात् मूर्ति ही हैं। राम के नाते ही निषाद को गुरू वशिष्ट हृदय से लगाते हैं और भरत लक्ष्मण के समान उसे भेंटते हैं। वन-मार्ग की ग्राम बालायें राम के

* हिन्दी विभाग, काकतीया विश्वविद्यालय, वरंगल (तेलंगाणा) भारत। E-mail : raghu.maduri@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

शील और सौन्दर्य पर शिथिल हो जाती हैं। ''रामरचरितमानस'' के कथानक में राम का वन-गमन, केवट-प्रसंग, भरद्वाज और बाल्मीकि का प्रसंग, वन-मार्ग में नर-नारियों का आतिथ्य और चित्रकूट सभा आदि प्रसंग जगमगाती हुई मंजुल मणियों के समान हैं। अतः अयोध्यकांड ''रामचरितमानस'' का हृदय और मेरूदण्ड है। उसको अलग कर देने से रामचरितमानस ही सौन्दर्य हीन हो जायगा।

यदि हम अयोध्याकाण्ड को ''रामरचरितमानस'' से पृथक् करके देखें, तो प्रबन्धात्मकता में वह अपने में पूर्ण खण्डकाव्य ही लगेगा। एक स्वतन्त्र खण्डकाव्य की तरह ही कथानक का प्रारम्भ, विकास और अन्त होता है। वस्तु संविधान भारतीय महा-काव्य की पद्धति का सर्वथा पालन है। कथा प्रारम्भ करने से पूर्व कवि शिव, राम की मुख-श्री सीता-सहित राम और गुरू की वन्दना मंगलाचरण के रूप में करता है। मंगलाचरण के पश्चात् बड़ी धूम-धाम से कथा प्रारम्भ होती है। राम के राज्याभिषेक के लिए सजी हुई अयोध्या दिखाई पड़ती है देवता राज्याभिषेक से अपने कार्य में विघ्न समझते हैं। अतः उनकी प्रेरणा से सरस्वती कैकेयी की दासी मन्थरा की मति फेर देती है। उसके उल्टा सीधा समझाने से कैकेयी राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास और भरत के लिए राज्याभिषेक माँगती है। अयोध्या में कुहराम मच जाता है। राम-सीता और लक्ष्मण-सहित वन-गमन के लिए प्रस्तुत हो जाते हैं। सुमन्त उन्हें रथ में बैठाकर श्रृंगवेरपुर तक पहुँचाने जाते हैं। वहाँ राम किसी प्रकार समझा-बुझाकर लौटा देते हैं। वहाँ निषादराज उनका आदर-सत्कार करता है। राजमार्ग में भरद्वाज और बाल्मीकि से मिलते हुए और मार्ग के ग्रामवासियों को नेत्र सुख देते हुए चित्रकूट पहुँचते हैं।

इधर सुमन्त के लौटने पर दशरय राम के वियोग में प्राण-त्याग करते हैं। भरत ननिहाल से लौटने पर अयोध्या का सर्वनाश देखते हैं वे माता कौशल्या और गुरू वशिष्ठ के बहुत समझाने पर भी राज्य ग्रहण नहीं करते। वे राम को लौटाने के लिए अयोध्या-समाज-सहित चित्रकूट भी जाते हैं। वहाँ जनक भी पहुँच जाते हैं। चित्रकूट मे कई सभायें होती हैं। सबके बहुत आग्रह करने पर भी राम पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए कटिबद्ध रहते हैं। भरत उनकी चरण-पादुकाएं लेकर लौट आते हैं। वे पादुकाएं सिंहासन पर रखकर राज्य-प्रबन्ध राम के प्रतिनिधि के रूप में करते हैं और स्वयं नन्दीग्राम में पर्णकुटी बनाकर तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हैं।

''अयोध्याकांड'' की मुख्य कथा राम-वन-गमन है। कथानक का उद्देश्य भी राक्षसों के विनाश के लिए राम को वन भेजना है। उनका अवतार अयोध्यापति होने के लिए न होकर राक्षसों के विनाश के लिए हुआ है। वे कह चुके हैं, ''जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुमहिं लागि धरियों नर बेसा।।'' ''हरिहौं सकल भूमि गरूआई। निरभय होउ देव समुदाई।।''

तभी तो राम-राज्याभिषेक का आयोजन देखकर देवता शंकित हो जाते हैं कि यदि राम अयोध्यापति हो जायेंगे तो राक्षसों का विनाश कौन करेगा? पे सरस्वती से कहते हैं, ''बिपति हमारि बिलोकि बड़ि, मातु करिअ सोइ आजु। राम जाहिं बन राजु तजि, होइ सफल सुर काजु।।''

बनवासी राम चित्रकूट पर पहुँच जाते हैं। देवताओं का उधेश्य पूरा हो जाता है। वे आनन्दित होकर पुष्प वृष्टि करते हैं और राम को अपने दुःखों का स्मरण कराके घर लौटते हैं।

''बरसि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू।। करि बिनती दुख दुसई सुनाये। हरिवत निज-निज सदन सिधाये।।''

मुख्य कथा के साथ-साथ मंथरा, कैकेयी, निषाद आदि को प्रासंगिक कथाएँ भी आ जाती हैं जो मूल कथा को पुष्ट करती हुई उसी में मिल जाती हैं। कथानक का अन्त प्रबन्ध की समाप्ति की ही तरह होता है। अन्त का छन्द और दोहा आशीर्वाद कथन या भरतवाक्य के रूप में है, ''सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को। मुनि-मन अगम, जम नियम सम विषम ब्रत आचरत को।। दुख दाह दारित दम्भ दूषण सुजस मिस अपहरत को। कलिकाल तुलसी से सठन्हि हरि राम सनमुख करत को।। भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सादर सुनहिं।। सीयराम पर प्रेम अवसि, होई भव-रस बिरति।''

''अयोध्याकांड'' के महान् उद्देश्य के अनुकूल उसकी घटनाएं भी महान् हैं। गोस्वामी जी ने राम-वन-गमन के मासिक-स्थलों को चुना है। प्रातः संध्या, नदी-पर्वत आदि का वर्णन है। गंगा और यमुना नदी व चित्रकूट के बड़े ही सुन्दर वर्णन हैं।

''अयोध्याकांड'' श्रीरामचरित के एक अंग कार सानुबन्ध लुभावना चित्र है। इसमें केवल राम वनवास की कथा का वर्णन है अतः यदि इसे अपने में पूर्ण और सफल खण्लकाव्य कहा जाय तो अनुचित न होगा।

राम कथानक के केन्द्र-बिन्दु हैं। इसलिए राम के सम्बन्ध में हम अयोध्याकांड के पात्रों को दो श्रेणियों में बॉट सकते हैं।

वे लोग जो राम के परिवार के आत्मीय जन हैं। इस श्रेणी में दशरथ, भरत, लक्ष्मण, शत्रुध्न, सुमन्त, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, जनक, वशिष्ठ तथा उनके पुरजन आते हैं।

वे लोग जो राम के भक्त और अनुगत हैं। इस श्रेणी में निषादराज, भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि और कोल-किरात आदि हैं। देवताओं की उपस्थिति भी एक दो स्थलों में हुई हैं।

चरित्र-चित्रण की दृष्टि से अयोध्याकांड सर्वोतम है। रामचरित मानस के प्रमुख पात्रों के चरित्र का निवास इसी कांड में होती है। राम का चरित्र सर्वप्रमुख है। वे कथानक के नायक हैं। वे दैवी और मानवी दोनों ही रूपों में सामने आते हैं। वे सुख-दुःख में निर्लिप्त और निर्विकार रहने वाले हैं। पिता की आज्ञा-पालन करने का उन्होंने जो आदर्श उपस्थित किया, वह विश्व भर में खोजने से नहीं मिलेगा। वे अनिच्छापूर्वक अपना मन मारकर भी दूसरों का मन नहीं तोड़ते। सीता और लक्ष्मण को अयोध्या में रहने के लिये समझाते हैं, किन्तु उनके प्रेम हठ के सामने उनको साथ ले जाने के लिए विवश हो जाते हैं।

राम भरत के प्रेम के वश में हैं। वे भरत की सदैव सराहना करते हैं। चित्रकूट की सभा में उनकी इच्छानुसार कार्य करना स्वीकार कर लेते हैं। राम का स्वरूप संकोची है। वे कटु शब्द कहना जानते ही नहीं। गंगा-तट पर लक्ष्मण पिता के लिए कुछ कटु शब्द कहते हैं। राम शपथ दिलाते हुए कहते हैं कि वे लक्ष्मण का संदेश पिता से न जाकर कहें, ''सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन संदेसु कहिअ जनि जाई।।''

अयोध्याकांड के राम कोमल, सहृदय, संकोची, उदार और पितृ-भक्ति के साकार रूप हैं।

पुत्र-वात्सल्य की साकार प्रतिमा है। उनकी सबसे बड़ी दुर्बलता उनका कैकेयी के वश में होना था। वे प्राण देकर भी वचन का पालन करने को तत्पर थे, ''रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं पर वचन न जाई।।''

उन्होंने राम को बनवास देकर जहाँ एक ओर अपने सत्य का पालन किया, वहाँ दूसरी ओर प्राण देकर पुत्र-प्रेम का निर्वाह किया।

अयोध्याकांड में भरत का चरित्र सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। राम के प्रति प्रेम और भक्ति के रूप में उनके चरित्र का सुन्दर विकास हुआ है। भरत के लिए राम ''प्राण हूँ के प्राण'' थे ही। वे साक्षत राम के स्नेह के रूप थे- ''धरे देह जनु राम सनेहूँ'' राम-प्रेम और भक्ति में लीन उनकी दशा का चित्र गोस्वामी तुलसीदास ने निम्न शब्दों में उपस्थित किया है- ''पुलक गात हिय सिय रघुवीरू। जीह नाम जपु लोचन नीरू।।''

भरत का चरित्र राम की भक्ति की ओर ले जाने वाला और संसार की माया से विरक्ति उत्पन्न करने वाला हैं, ''भरत चरित करि नेसु तुलसी जो सादर सुनहिं। सीय रमा पद प्रेमु, अबसि होइ भव-रस विरति।।''

लक्ष्मण राम के अभिन्न अंग हैं। वे देह-गेह आदि सभी का सम्बन्ध तोड़कर राम का अनुगमन करते हुए कहते हैं, ''जहॅ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीत निगम श्रुति गाई।।'' ''मोरे सबइ एक तुम स्वामी। दीन-बन्धु उर अन्तरयामी।।''

लक्ष्मण की प्रकृति उग्र है। वे किसी का भी विरोध सहन नहीं कर सकते, अन्यायी को दण्ड देने के लिए वे सदैव सन्नद्ध रहते हैं। इसलिए गंगा-तट पर राम को बनवास देने वाले पिता को कटु शब्द कहने में नहीं चूकते तथा सैन्य समेत भरत के आने का समाचार सुनकर उनका गतिरोध करने को तैयार हो जाते हैं। शत्रुध्न के चरित्र का कोई पृथक विकास नहीं है। वे तो भरत के ही अभिन्न अंग हैं।

दशरथ के विश्वासपात्र सचिव और सारथी थे। वे राम को रथ में बैठाकर गंगा-तट तक ले जाते हैं। राम उनको समझा -बुझाकर लौटा देते हैं। अयोध्या आकर वे सबको सांत्वना देते हैं।

निषाद का अयोध्याकांड के कथानक में महत्वपूर्ण स्थान है। वह राम के पद-पखार का उनको गंगा के पार करना चाहता था। उसकी स्थिति कथानक के अधिकांश भाग में रहती है। वह राम को चित्रकूट पहुँचाकर लौटता है। भरत के साथ भी वह चित्रकूट जाता है। राम की अनन्य भक्ति के कारण ही वह भरत से राय लेने को सन्नद्ध होता है।

''अयोध्याकांड'' के अन्य पुरूष पात्रों में वशिष्ठ, भरद्वाज, वाल्मीकि, अत्रि और कोल-किरात हैं। वशिष्ठ रघुकुल के परम पूज्य हैं। रघुकुल में प्रत्येक कार्य उनका आशीर्वाद लेकर ही होता है। राम के वन-गमन के पश्चात् भरत उन्हीं की मन्त्रणा से राज्य की व्यवस्था करते हैं। भरद्वाज, वाल्मीकि और अत्रि राम के अनन्य भक्त के रूप में आते हैं।

सीता राम की परम शक्ति हैं। व अपने पति की सच्ची हैं। उनके लिए पति के साथ कुश-कटक मय वन में फिरना कोटि अयोध्याओं से बढ़कर है। वे प्रत्येक कार्य राम का रूख देखकर करती हैं। गंगा के पार उतरने में राम को संकोच होता है कि उन्होने केवट की उतराई नहीं दी। सीता प्रियतम के हृदय की बात समझ जाती हैं और अपनी मणि-मुदरी देने के लिये उतार देती हैं। ग्ररम बालाओं द्वारा परिचय पूछे जाने पर बड़ी शीलता, शिष्टता, और चतुरता से उत्तर देती हैं, ''सहज सुभाइ सुभग तनु गोरे। नाम लखन लघु देवर मोरे।। बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी। पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।। खंजन मंजु तिरीछे नैननि। निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैननि।।''

सीता का चरित्र प्रत्येक दृष्टि से आदर्शपूर्ण हैं। वे पिता से जाकर मिलती हैं किन्तु उनको वहाँ रात में ठहरने में संकोच होता है। राजा जनक उनके लिए कहते हैं।

''पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ।। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गमनु कीन्ह विधि अंड करोरी।। गंगा अवनि थल तीन बड़ेरे। एहि किए साधु समाज घनेरे।। जो पितु मातु कहेउ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना।।''

राम के समान ही वे भरत को स्नेह करती हैं। उनके इस व्यवहार को देखकर कहना पड़ता है, ''राम मातु अस काहे न होई''

कैकेयी ''अयोध्याकांड'' के कथानक का ही आधार नहीं अपितु समस्त रामचरित के विकास का कारण बन गयी है। यदि वह राम को वन न भेजती, तो राम का चरित्र न प्रकाशित होता और न उनके अवतार का उद्देश्य ही पूरा होता।

वर्णन-वैचित्र्य -''अयोध्याकांड'' में स्थान-स्थान पर गोस्वामी जी ने ऐसे सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं, जिनमें कवि-कौशल को देखकर पाठक आश्चर्य में डूब जाता है।

केवट प्रसंग की लीजिए-- केवट राम को नाव में बैठाकर पार उतारने से पहले उनके चरण कमलों को पखारना चाहता है। अपनी इस अभिलाषा को वह सीधे न कहकर बड़ी विदग्धतापूर्ण रीति से कहता है, वह चरण-पखारने का सटीक कारण प्रस्तुत करता है। राम की चरण-रज से जब पत्थर की शिला स्त्री बन गई, तो नाव का तो कहना ही क्या। वह तो पत्थर से बहुत कोमल है।

''माँगी नाव न केवट आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना।। चरन कमल रज कहुँ सब कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई।। छुअत सिला भइ नारि सुहाई। पाहन ते न काठ कठिनाई।। तरनिउ मुनी धरती हुई जाई। बाट परे मोरि नाव उड़ाई।।''

केवट की विनोदमयी वार्ता सुनकर राम हंस पड़ते और कहते हैं- ''सोइ करिअ जेहि नाव न जाई।।''

वन-मार्ग में सीता द्वारा ग्राम-बालाओं को परिचय देने में कवि की विदग्धता बहुत निखरी है।

निम्न उदाहरण में मुनियों के आश्रम का चित्र नेत्रों के सामने अंकित हो जाता है, ''वन-प्रदेश मुनि-वास घनेरे। जनु पुर नगर गाउं गन खेरे।। विपुल विचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना।। खगहा करि, हरि, बाघ बराहा। देखि महिष, वृष साजु सराहा।। बयरू बिहाई चरहिं एक संगा। जहं तहं मनहुं सेन चतुरंगा।। झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मानहुँ निसान विविध विधि बाजहिं।। चक-चकोर चातक सुक पिकगन। कूजत मंजु मराल मुदित मन।। बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मृद मुंगल मूला।।''

गोस्वामी जी ने उन्हीं स्थलों का विस्तार से वर्णन किया है, जो मार्मिक और अनुभूतिपूर्ण हैं। वे नीरस प्रसंगों का संकेत देकर आगे बढ़ जाते हैं। दशरथ-मरण प्रसंग में ''तापस-अन्ध शाप'' की कथा संकेत मात्र कर देते हैं, ''तापस अंध शाप सुधि आई। कोसत्यहि सब कथा सुनाई।।''

इसी प्रकार चित्रकूट से भरत के प्रत्यावर्तन का वर्णन बहुत ही संक्षेप में कह गये हैं। चित्रकूट की सभा का विस्तारपूर्ण वर्णन मिलता है। इसमें भरत के महा-महिम रूप और राम की शील का सम्यक् चित्रण हुआ है। परन्तु जब भरत चित्रकूट में राम से विदा होकर अयोध्या पहुँचते हैं और वहाँ राम के राज्य की देखभाल की सुव्यवस्था करके स्वयं तप करते हुए चौदह वर्ष की लम्बी अवधि बिताते हैं, तब थोड़े से ही में सब बातों का सजीव किन्तु केवल उल्लेख करके कथा आगे बढ़ा दी गई है।

गोस्वामी जी किसी अप्रिय प्रसंग को भी विस्तार नहीं देते। वे राम के चौदह वर्ष के वनवास की बात कहीं भी खुलकर नहीं कहते। कैकेयी तक राम से नहीं कहती कि उसने उनके लिए वनवास का वरदान माँगा।

''सुनहु राम सबु कारन एहु। राजहिं तुम्ह पर परम सनेहू।। देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउं जो कछु मोहिं सुहाना।। सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाड़ि न सकहिं तुम्हार संकोचू।। सुत सनेह इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु। सकहु ते आयसू सीस धरि मेटहु कठिन कलेसु।।''

जब रामचन्द्र कौशल्या के पास पहुँचे तब भी उन्होंने इतना ही कहा कि ''पिता दीन्ह मोहि कानन राजू'' और उसने निवेदन किया कि - ''बरस चारिदस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान। आइ पायं पुनि देखिहउँ, मन जनि करसि गलान।।''

कौशल्या ने इसका कारण पूछा। इस राम ने स्वयं कुछ नहीं कहा, सुमन्त पुत्र को संकेत किया। उसने सब कारण समझा दिया, ''निरखि राम रूख सचिव सुत, कारन कहेउ बुझाइ।।''

कवि से यह अप्रिय बात उससे भी नहीं कहलाई। इसी प्रकार जब लक्ष्मण ने सुमन्त से कुछ कटु शब्द कहे -- कही लखन कछु अनुचित बानी-- तब भी कवि ने उन्हें स्पष्ट नहीं लिखा और दशरय से राम का सन्देश सुनाते हुए भी सुमन्त ने उन्हें नहीं खोला। लक्ष्मण की उन अनुचित बातों को न कहलाकर कवि ने केवल ही संकेत कर दिया, ''लखन कहे कछु बचन कठोरा बरिज राम पुनि मोहि निहोरा।।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि ''अयोध्याकांड'' में कवि कथानक के निर्वाह में सर्वथा सफल हुआ है। उसकी तृप्ति भाव प्रवण-मार्मिक स्थनों के वर्णन में ही विशेष रूप से रमी है। अप्रिय और नीरस प्रसंग का संकेत मात्र करके ही वह आगे बढ़ गया है।

सहायक ग्रंथ

श्रीरामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,33-35
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 13 अगस्त 2016

धूमिल की कविताओं में राजनीतिक यथार्थ

हरिकेश मीना*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *धूमिल की कविताओं में राजनीतिक यथार्थ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *हरिकेश मीना* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

साठोत्तरी (छठे दशक) हिन्दी कविता अपनी राजनीतिक संपृक्ति के लिए हिन्दी कविता में अपना प्रमुख स्थान रखती है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पहले-दूसरे दशक के बीतने तक आम जनता की वह उम्मीदें, महत्वाकाक्षांऐं, जो उसने तत्कालीन सरकारों से पाल रखी थीं, वे धीरे-धीरे निराशा में बदलती जा रही थी, व्यवस्था से मोहभंग की इस स्थिति को साठोत्तरी कवियों नें अपनी कविताओं में प्रमुखता से स्वर दिया।

इस दशक की कविता अपने गहरे अर्थ में राजनीतिक कविता है। कविता के साथ-साथ राजनीति का रिश्ता भी पूर्व से चला आ रहा था, साठोत्तरी कविता में राजनीति कविता की केन्द्रीय वस्तु बन गई थी। इन कवियों ने यह महसूस किया कि सिद्धान्तहीन राजनीति समाज के लिए विनाशक रहीं है। साठोत्तरी कवियों नें ''संस्कृति, स्वतन्त्रता, संसद, आस्था, शांति, कानून, जनतन्त्र आदि शब्दों की अर्थवत्ता खोजने का, व इसकी अर्थ विकृति का भंडाफोड़ किया है। जिनमें सुदामा पांडे ''धूमिल'' का नाम सबसे अग्रणी है।

''धूमिल'' की कविता की विषय वस्तु के दो क्षेत्र प्रमुख है। प्रथम वर्तमान सामाजिक-राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्विरोधों का तीव्र बोध और अथाह अहसास तथा द्वितीय प्रजातन्त्र के लिए सशस्त्र-दृष्टि से जनक्रान्ति की अवधारणा इन्हीं दो स्तम्भों पर धूमिल का काव्य संसार खड़ा है। ''धूमिल'' की प्रजातन्त्र विषयक धारणा इन पंक्तियों से दृष्टव्य है - ''न कोई प्रजा है/ न कोई तन्त्र है/ यह आदमी के खिलाफ/ आदमी का खुला सा/ षडयंत्र है।''[1]

''धूमिल'' यहीं नही रूकते, वे संवेदनहीनता को इन तथाकथित सुराजियों का स्वभाव बताते हैं - ''और हत्या अब लोगों की रूचि नहीं/ आदत बन चुकी है।''

तमाम राजनीतिज्ञों की स्वार्थ सिद्धि की प्रवृत्ति को उद्घाटित करते हुए धूमिल कहते हैं - ''जिस पर खड़े होकर, कल तुमने संसद को/ बाहर आने के लिए आवाज दी थी, नहीं अब कहॉ कोई/ न्हीं है। मतलब की इबारत से होकर/ सब के सब व्यवस्था के पक्ष में चले गये हैं।[2]

* व्याख्याता हिन्दी, राजकीय कन्या महाविद्यालय करौली (राजस्थान) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

''धूमिल ने यह अच्छी तरह से महसूस किया है कि सरकारों का विपक्ष से गठजोड़ है, परिणामतः जिनसे विरोध की आशा की जाती है। वे ही सत्ताधारियों से मिले रहते हैं। ऐसे में जो इस कटु सच्चाई को बेनकाब करता है वह स्वतः विपक्ष की स्थिति में आ खड़ा होता है। एक दृष्टव्य है - ''वित्त मंत्री की ऐनक का, कौनसा शीशा कितना मोटा है/ और विपक्ष की बैंच पर बैठे हुए नेता के भाइयों के नाम/ सस्ते गल्ले की कितनी दुकानों, का कोटा है। और जो चरित्रहीन हैं, उसकी रसोई में पकने वाला चावल/ कितनी महीन है, इस वक्त सच्चाई को जानना/ विरोध में होना है।''[3]

इन विषय स्थितियों में धूमिल युवा वर्ग के प्रति आशान्वित है और कहते हैं - युवा लेखन के लिए राजनीतिक समझ आवश्यक है। बिना इस राजनीतिक समझ के आज का लेखन सम्भव नहीं है।'' 'धूमिल का मानना है कि प्रजातान्त्रिक संस्थाऐं और प्रक्रियाऐं भ्रष्ट होने से वे मूल्यहीन एवं अप्रासंगिक मानी जाने लगी है। संसद में बैठे हुए लोग जनता की जरूरतों समस्याओं से कोई इत्तेफाक नहीं रखते एवं संवेदनाओं, मजबूरियों से खेलते हैं :

एक आदमी रोटी बेलता है,/ एक आदमी रोटी खाता है/ एक तीसरा आदमी भी है, जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है/ वह सिर्फ रोटी से खेलता है। मै पूंछता हूँ, यह तीसरा आदमी कौन है?/ मेरे देश की संसद मौन है।[4]

सत्ता पर कुण्डली मारकर बैठे लोग भोली भाली सीधी जनता को असली मुददे (समस्याओं) से भटकाने के लिए क्षेत्रीयवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता आदि मुददों का सहारा लेकर आपस में लड़ाते रहते हैं :

चंद चालाक लोगों नें,/ (जिनकी नर भक्षी जीव ने पसीने का स्वाद चख लिया है)/ बहस के लिए, भूख की जगह, भाषा को रख दिया है। इन्हें मालूम है कि भूख से, भागा हुआ आदमी/ भाषा की ओर जायेगा।[5]

सत्ता की कुर्सी पर बैठे लोगों में जनता को मुददों से भटकाने की पूरी व्यवस्था करते हुए उन्हें भ्रमित करने के सारे उपाय सोच रखे हैं ताकि जनता के प्रति जबाब देही को टाला जा सके :

उन्होंने सुरक्षित कर दिये हैं, तुम्हारे संतोष के लिए/ पड़ोसी देशों की, मुखभरी के किस्से,/ तुम्हारे गुस्से के लिए, अखबार का, आठवॉ कमल,/ और तुम्हारी ऊब के लिए/ 'वैष्णव जण तो जेणे कहिये', 'नमकीन धुन/ गरज यह है कि तुम्हें पूरा जाम करने का/ पूरा इंतजाम है।[6]

इन सभी फरेबों, छल कपट से आम जनता को सचेत करते हुए वह कहते हैं- ''जनतंत्र, त्याग, स्वतन्त्रता/ संस्कृति, शॉति, मनुष्यता/ ये सारे शब्द थे, सुनहरे वादे थे,/ खुशफहम इरादे थे।''[7]

लेकिन नेताओं, सरकारों द्वारा किये गये वादे कभी पूरे नहीं किये, सरकारें आती है, बदल जाती हैं लेकिन हालात जस के तस हैं, इन्हीं हालातों पर चिन्तित होते हुए धूमिल व्यंग करते हैं - ''हॉ यह सही है कि कुर्सियॉ वहीं है। सिर्फ टोपियॉ बदल गई है।''

हर आम चुनाव में लोग बदल जाते हैं लेकिन आम जनता को शोषण, भ्रष्टाचार, छलावे, बेकारी, भुखमरी से राहत नहीं मिल पाती हैं, हमारे राजनेता, और उनकी नीतियॉ दोनों ही जनता का विशवास खो चुकी हैं इनके खाने के और दिखाने के दॉत कुछ और हैं।

मगर मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद/ मालगोदाम में लटकती हुई,/ उन बाल्टियों की तरह है,/ जिस पर 'आग' लिखा है/ और उनमें बालू और पानी भरा है।[8]

कभी संसद में बैठने वाले देश की नीतियॉ बनाते थे भविष्य तय करते थे, लेकिन आज संसद में वही लोग पहुँचते हैं जो बूथ कैप्चर (फर्जी मतदान), बाहुवली धनबल व भुजबल का ज्यादा से ज्यादा, पैसा खर्च करते हैं। हमारे देश की संसद में आधे से अधिक राजनेताओं पर हत्या, रंगदारी, बलात्कार, अपहरण ठगी, आदि मुकदमें न्यायालय में विचाराधीन हैं। जनतन्त्र की संवैधानिक रक्षक 'संसद' के प्रति कवि का मोहभंग कुछ इस तरह फूटता है - ''हमारे यहॉ संसद, तेल की वह छानी है। जिसमें आधा तेल, व आधा पानी है।''[9]

धूमिल सभी राजनीतिक दलों, विचार धाराओं व राजनीतिज्ञों पर अपनी तलवार से पैनी लेखनी चलाते हुए कहते हैं- ''सबसे अधिक हत्याऐं, समन्वयवादियों ने की/ दार्शनिकों ने, सबसे अधिक जेवर खरीदा।''[10]

सत्ताधारी बदल रहे हैं जन सामान्य की परेशानियॉ जस की तस हैं चुनाव पर चुनाव बीत रहे हैं परन्तु जीवन का कोई मोल नहीं आम आदमी की कोई सुनवाई नहीं।

सारा माहौल जब एक नये चुनाव की/ तैयारी में मशगूल है। वहॉ जीवन अब भी/ संसद की कार्यवाही से बाहर निकाले गये/ वाक्य की तरह, तिरस्कृत है।[11]

समसामयिक राजनीतिक हालात का यथार्थ चित्रण एवं फरेवों को उजागर करने का सार्थक प्रयास धूमिल की कविताओं में मिलता है। राजनेताओं की संवेदनहीनता, बेरूखी, को उन्होंनें प्रमुखता से चित्रण किया है। वे कहते हैं आम आदमी को राजनीति की समझ होनी चाहिए, तथा व्यवस्था की विसंगतियों, कमियों के प्रति एक जुट होकर विरोध प्रदर्शन करना चाहिए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पच्चीस तीस वर्षा में ही राजनीति के कुत्सित स्वरूप को समझ एवं उसका प्रतिकार धूमिल ने अपनी कविताओं में किया है। उनकी कविता आम आदमी की राजनीतिक जागरूकता को बढ़ाती है तथा सशक्त विपक्ष को तैयार करने का संदेश प्रदान करती है, अतः धूमिल साठोत्तरी कविता के प्रमुख कवि हैं, जिनकी कवितायें आम आदमी के प्रति संवेदना प्रकट करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1]मंजुल उपाध्याय -समकालीन कविता और धूमिल, अनामिका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण 1986, पृष्ठ संख्या 69
[2]धूमिल -सुदामा पांडे का प्रजातन्त्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 18
[3]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 7
[4]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 67
[5]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 84
[6]धूमिल -कल सुनना मुझे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या 39
[7]धूमिल -कल सुनना मुझे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2013, पृष्ठ संख्या 66
[8]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 88
[9]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 91
[10]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 101
[11]धूमिल -संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या 125

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,36-41
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 23 सितम्बर 2016

भीष्म साहनी का तमस उपन्यास : एक विश्लेषण

पाल सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भीष्म साहनी का तमस उपन्यास : एक विश्लेषण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *पाल सिंह* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

हिन्दी साहित्य गद्य लेखन में भीष्म साहनी का नाम स्वर्णिम अक्षरों में लिखा जाता है, वैसे तो साहनी साहब ने बहुत सारे विषयों पर अपनी लेखनी चलाई है परन्तु भारत विभाजन और भारत-पाक निर्माण के समय जो बंटवारा हुआ उस समयकाल में जिन लोगों को अपना घर-गृहस्थी छोड़कर इधर-उधर भटकना पड़ा अर्थात बटवारे का जो दर्द भीष्म साहनी ने ब्यान किया बाकी साहित्यकारों को उनकी श्रेणी से अलग करता है इसी कड़ी में साहनी साहब द्वारा रचित उपन्यास तमस के घटनाक्रम से जो पक्ष सामने आये हैं शायद ही किसी और लेखक की कलम से निकले हों।

तमस का अध्ययन करते हुए हमे राजनीतिक, चालें, भ्रष्टाचार, रिश्वतखोरी, मानवीय विवशता, धार्मिक घृणा, वर्ग-भेद, व धर्म का गलत तरीके से फायदा उठाते हुए लोग नजर आते हैं इसके अलावा, प्रेम, भाई-चारा, एकता, व देश भक्ति जैसे तथ्य भी नजर आते और तमस के इक्कीस अध्ययाओं में विचलन और असमंजस की स्थिति नजर आती है और अन्त तक जानी-माली नुकसान का अन्दाजा लगाने के सीवाएं और किसी निष्कर्ष पर पहुंचना कठिन नजर आता है। यह कहना असत्य नहीं होगा की तमस का कथा-क्रम अन्त तक विचलन और असंमजस से भरा हुआ है।

• नत्थू का सामाजिक-वैचारिक द्वंद। • कांग्रेस सदस्यों का सुधार आन्दोलन व शान्ति वार्ता। • रिचर्ड और लीजा की घरेलू कहानी है। • हरनाम सिहँ और बन्तो की बेबसी।

वैचारिक द्वद : तमस के प्रारम्भ में नत्थू को एक सूअर मारने के लिए मुरादअली पांच रूपये का नोट देता है पेशगी के तौर पर और यह कहकर नत्थू को सूअर मारकर भेजने को कहता है की सालोतरी साहब को मरा हुआ सूअर डाक्टरी काम हेतु चाहिए, नत्थू मूल रूप से चमड़े का काम करता है और यह काम हाथ में लेकर असंमजस में फंस जाता है और कहता है ''मारने को मिला भी तो मनहूस सूअर भददा, इतनी बड़ी तोद, पीठ पर के बाल काले, थूथनी के आस-पास के बाल सफेद और तीखे जैसे साही के होते हैं'',[1] वैचारिक द्वन्द में नत्थू विचारों के भवर में फंसा सोचता है कि सालोत्तरी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, क्रीसेंट कॉलेज ऑफ एजुकेशन [भोडिया खेरा] फतेहाबाद (हरियाणा) भारत। E-mail : palmphil123@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

साहब मरे हुए सुअर का क्या करेंगे और आगे चलकर उसे डर भी लगता है क्योंकि मुस्लिमानी इलाका है और नत्थू रात भर सुअर से द्वद करता नजर आता है और अन्त तक वैचारिक द्वद में घिरा हुआ दिखाई देता है।

जन-जागरण : बख्शी जी, मुंशीराम, जरनैल मास्टर रामदास, शंकर, इत्यादि काग्रेसियों द्वारा दूसरे भाग में गन्दी बस्ती में प्रभात फेरी व सफाई अभियान द्वारा जन-जागरण का अभियान चलाया जाता है जिसमें हमें काग्रेसी सदस्यों द्वारा वैचारिक चिन्तन होता नजर आता है यथा, कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में बक्शी जी प्रभात फेरी की तैयारी में सभी सदस्यों को एक करके प्रभात फेरी का कार्यक्रम समझा रहे थे और एक दूसरे पर औछे लाछन लगाने वालों और देर से पहुंचने वालो से नाराज रहे थे। जब काग्रेस की स्क्रुटिनी कमेटी में कोहली के नाम पर शंकर बवाल कर देता है और सदस्यों को मजबूर होकर कोहली का नाम काटना पड़ता है और शंकर और मेहता का एक दूसरे पर हमला चलता रहता है, एक जगह प्रभात फेरी में देरी होते देख बक्शी जी परेशान हो रहे है। न मास्टर रामदास पहुंचा न देसराज। प्रभात फेरी में गाएगा कौन? कम से कम एक गाने वाला तो होना ही चाहिए। कुछ न हुआ तो वह खुद ही गा लेंगे लेकिन जो लोग जिला कमेटी से तनख्वाह पाते उन्हे तो पहुँचना ही चाहिए।[2]

प्रेम और चिन्ता : मनुष्य जीवन में प्रेम है जो उसे चिन्ता से मुक्त करता है और प्रेम के कारण ही मनुष्य को उस मनुष्य की फिक्र होती है और जो उसके दिल के करीब होते हैं। कभी-कभी उसकी अनुपस्थिति भय का वातावरण पैदा करती है यही स्थिति नत्थू की पत्नी की होती है और नत्थू को भी पत्नी व घर की चिन्ता होती है। जब सारी रात नत्थू घर नहीं आता तो उसकी पत्नी को चिन्ता होती है और नत्थू को भी प्रेम और चिन्ता दोनों ही रहे है। वह रात्रि में सूअर से और खुद के वैचारिक द्वन्द से लड़ता हुआ सुबह-सुबह एक के बाद एक गली पार करता हुआ घर की तरफ बढ़ता दिखाई देता है। आगे चलकर हमें रिचर्ड और लीजा की कथा में भी प्रेम व चिन्ता नजर आती दोनों के विषय में अनेक प्रंसग आते हैं। उन्हीं में से एक ''घोड़ो पर सैर करते हुए रिचर्ड और उसकी पत्नी लीजा जो छः महिने विलायत (ब्रिटेन) में बिताकर वापिस आई है और उसे अपने पति से भरपूर प्रेम नहीं मिल पाता वह उसके प्रति चिन्तित होती है कि कहीं हमारा रिश्ता टूट ही ना जावे''।[3] लीजा के मन में यह स्थिति प्रेम व चिन्ता के कारण ही आती है।

सत्संग महिमा/ संस्कृति की झलक : साप्ताहिक सत्संग में वानप्रस्थजी श्लोकोच्चारण करते नजर आते हैं इन श्लोकों के माध्यम से भारत की चिर-पुरातन संस्कृति का उद्घाटन होता है। 'आग्रह के बाद वानप्रस्थजी' ने सभी सभासदों को मन्त्र कंठस्थ करवा दिये थे वेदी पर बैठे बैठे ही आंखे बंद कर ली और हाथ जोड़कर वानप्रस्थ जी मन्त्रोचारण करने लगे -''सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे ऋन्तु विरामयः/ सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुख भाग भवेत।''[4]

विचलन/ असमंजस : तमस का अध्ययन करते हुऐ पाठक स्वयं को भारत-पाक विभाजन में महसूस करता हैं पाठक के सामने तात्कालीन परिस्थितियों की आकृतियां स्वयं अपने-आप ही उभरने लगती हैं तात्कालीन विभाजन की अवस्था को महसूस करके पाठक के रोंगटे खड़े हों जाते और शोक तथा पीड़ा से मन भर उठता है पाठक को लगता है कि तात्कालीन मनुष्यों में मानवता खत्म हो गई थी वह अपने ही हमसाये बहन-भाइयों का खून बहाने पर उतारू हो गया था बस चारों तरफ चित्कार-पुकार ही दिखाई व सुनाई पड़ती थी।

नत्थू की कहानी : नत्थू एक गरीब चमार है जो मूल रूप से चमड़े का काम करता पर वह मुरादअली के कहने पर सूअर मारने का काम अपने हाथ में मात्र इसलिए ले लेता है कि ''मुरादअली साहब ने कहा था की सालोतरी साहब को मरा हुआ सुअर चाहिए डाक्टरी काम के लिए। उसे ''मुरादअली ने कहा था। जब वह खाल-साफ कर चुकने पर हाथ मुंह धो रहा था।''[5] सुअर मारना कोई आसान कार्य नही था इस कार्य में नत्थू खुद को अहसाय और फंसा हुआ पाता है। मारने को मिला भी तो कैसा मनहूस सुअर इतना भद्दा, इतनी बडी तोद, पीठ पर बाल है।

रणनीति : रणवीर ने घूमकर कहा। मुर्गी काटकर दीक्षा पाने से उसमें भरपूर आत्म-विश्वास पैदा हो गया था। वह दल का सबसे चतुर, सबसे चुस्त और सबसे ज्यादा कार्यकुशल सदस्य था। उसी आवाज में कड़क आ गई थी।

लाठियाँ, कुल्हाड़ी, छुरे, तीर-कमान और गुलेलें- इन हथियारों के बावजूद 'शस्त्रागार' खाली-खाली लग रहा था। कमरे के बाहर, सीढ़ियों से थोड़ा हटकर चूल्हे पर तेल का कड़ाहा रखा था, पर लकड़ियां कम पड़ जाने के कारण तेल को उबालने का विचार कल ही छोड़ दिया गया था। जो आज्ञा, सरदार! शम्भू ने कहा और छज्जे पर चला गया। चारों योद्धाओं के दिल

कसमसा रहे थे। रणभूमि में उतरने का और अपने जौहर दिखाने का समय आ गया था। छज्जे के पीछे खड़े वैसा ही महसूस कर रहे थे जैसा चट्टानों की आड़ में खड़े राजपूत नीचे हल्दी घाटी में आने वाले म्लेच्छों का इन्तज़ार करते हुए महसूस करते रहे होंगे। म्लेच्छों पर टूट पड़ने का वक्त आ गया था।

रणवीर ने अन्य तीनों योद्धाओं को 'शस्त्रागार' में इक्ट्ठा किया था और रणनीति पर विचार करते हुए बोला, 'शत्रु पर उबलता तेल डालने का समय अभी नहीं आया है। उबलता तेल उस समय डाला जाता है जब शत्रु अपने दुर्ग पर हमला कर दे और आप हथियारों से उसका मुकाबला न कर सकते हों।' फिर उसने तनिक सोचकर कहा, 'यहां केवल छुरा चलेगा, कमानीदार छुरा।''[6] फिर उसने इन्द्र को सम्बोधित करके कहा, 'एक बार फिर पैंतरा करके दिखाओ। उठाओ छुरा दासे पर से।' ''इन्द्र फुरती से छुरा उठा लाया। कमरे के बीचोबीच दोनों टाँगें फैलाए वह क्षण-भर के लिए खड़ा रहा। छुरे की मूठ उसके दाएँ हाथ में थी और उसका फल पीछे की ओर था। फिर बायाँ कदम उठाकर वह उछला, और हवा में अर्द्धवृत्त काटकर फिर दोनों टाँगें फैलाए रणवीर की पीठ की ओर मुँह किए फर्श पर उतरा। इसी बीच उसने रणवीर की कमर को निशाना बनाते हुए उलटे हाथ से छुरे के वार का संकेत किया था।''[7] इससे पता चलता है कि तात्कालीन समय में किस प्रकार रणनीतियां बनी और उसमें किशोर बालकों को धकेला गया। बच्चों को युद्ध में शामिल कर लिया गया था।

परिणाम व नुक्सान : रात को हुए नुक्सान और आगजनी का वर्णन स्वयं ही होता नजर आता है। ''दिन के उजाले में शहर अधमरा-सा पड़ा था, मानो उसे सांप सूंघ गया हो। मंडी अभी भी जल रही थी, म्युनिसिपैलिटी के फायर ब्रिगेड ने उसके साथ जूझना कब का छोड़ दिया था। उसमें से उठने वाले धुएं से आसमान में कालिमा पुत रही थी, जबकि रात के वक्त आसमान लाल हो रहा था। सत्रह दुकानें जलकर राख हो चुकी थीं।''[8]

जातिगत भावना व शोभ : उन दिनों शहर की हालत इतनी भयानक हो गई थी कि एक व्यक्ति जो हिन्दू, मुस्लिम या सिक्ख था वह चाहकर भी अपनो की मदद नही कर पा रहा था। इसके पीछे जातिगत भावना से प्रेरित विचार कार्य कर रहे थे। उदाहरण के तौर पर शाहनबाज हुसैन और मिलखी वाले घटनाक्रम को मुख्य रूप से देखा जा सकता है। ''दोपहर ढल चुकी थी जब ज़ेवरों का डिब्बा लेने शाहनबाज़, रघुनाथ के पुश्तैनी घर पर पहुँचा।

मिलखी ने दरवाज़ा देर से खोला, 'कौन है जी?

खोलो दरवाजा, मैं हूँ शाहनवाज़।

कौन जी?

खोलो-खोलो, मैं शाहनवाज़ हूँ।

''जी आया जी, अन्दर से ताला लगा है जी, अभी लाता हूँ जी चाबी, अंगीठी पर रखी है।''[9] वापिस नीचे उतरते वक्त पता न होते हुये भी शाहनवाज ने बिना किसी कारण से मिलखी की पीठ पर लात मार दी थी। जिससे मिलखी सीढ़ियों गिर गया और उसकी रीढ़ की हड्डी टूड़ गई और वह मृत प्राय पड़ा था। शायद इन दगों और नफरत की भेट चढ़ गया था।

सड़क के पार फीरोज़ खालवाले का गोदाम था। फीरोज़ अपने गोदाम के चबूतरे पर खड़ा खालों की दो गांठों को ठिकाने लगा रहा था। शाहनवाज़ ने उस और देखा तो वह बुत की तरह खड़ा शाहनवाज़ की ओर देखे जा रहा था। शाहनवाज़ ने मुंह फेर लिया, पर उसे लगा जैसे अभी भी फीरोज़ उसकी ओर नफरत से देखे जा रहा था। और फिरोज कह रहा था शाहनवाज के बारे में ''आज भी हिन्दुओं के घर का दरवाज़ा खटखटा रहे हो!' मानो वह मन ही मन कह रहा था।''[10] इससे पता चलता है कि उस समय हालात बहुत नाजुक थे। जातिगत विचार सामाजिक विचारों पर हावी हो गये थे।

देवदत का प्रयास : ''शहर में दंगों को रोकने के लिए एक बार फिर कांग्रेस और मुस्लिम लीग के लीडरों को इकट्ठा करना होगा। हयातबख्श को आपस में मिलाना होगा।'' कल भी देवदत्त जैसे-तैसे बहुत-से लोगों के घर बारी-बारी से गया था। राजाराम ने उसे देखते ही दरवाज़ा बन्द कर दिया था, रामनाथ तुनककर बोला था, कम्युनिस्टों को बुरा- भल्ला कहता रहा था पर हयातबख्श मिलने के लिए तैयार हो गया था; हयातबख्श की आँखें लाल हो रही थीं, वह नारे लगाने लगा

रहा था; 'लेके रहेंगे पाकिस्तान! बनके रहेगा पाकिस्तान!''[11] उसने देवदत को बात करने का मौका नहीं दिया था। 'आज उनके पास फिर जाना होगा।' देवदत्त ने फिर हाथ मले, नाक सहलाई। बक्शीजी को हयातबख्श के पास भेजो, अटल को साथ लेकर बक्शीजी के पास जाओ और अमीन को लेकर हयातबख्श के पास। फिर तजवीज़ रद्द कर दी। लीडरों को छोड़ों, दस-दस आदमी कांग्रेस, मुस्लिम लीग और सिंह सभा के मिल बैठें। उसने सिर हिलाया। पार्टी आफिस में जाकर साथियों के साथ इसे अमली जामा पहनाना होगा। एक और मसला सामने उठा : मज़दूरों के इलाक़ों में गड़बड़ को रोकने के लिए एक-एक साथी काफ़ी नहीं है। रत्ता मुसलमानी इलाक़ा है। वहाँ साथी जगदीश को भेजा गया है, अकेला जगदीश काफ़ी नहीं है; गांवों में फौरन दो-तीन साथी भेजे जाने चाहिए जो एक गांव से दूसरे गांव का दौरा करें। साथियों की कमी है, मगर जहाँ तक बन पड़े दंगों को रोकने का काम करना होगा। उसने फिर नाक का हाथ फेरा, फिर कलाई पर बंधी घड़ी देखी। कम्यून में दस बजे मीटिंग है, जिसमें साथी अपने-अपने इलाक़े की रिपोर्ट देंगे। अब चलूँ। देवदत्त चुपचाप अन्दर जाकर चुपके से बरामदे में से साईकिल निकालने लगा।[12] इस प्रकार के प्रयास देवदत कर रहा था लगातार ताकि शान्ति व भाईचारा कायम किया जा सके।

मजबूरी : ''हमें आंकड़े चाहिए, केवल आँकड़े! आप समझते क्यों नहीं? आप लम्बी हाँकने लगते हैं, सारी रामकहानी सुनाने लगते हैं, मुझे रामकहानी नहीं चाहिए, मुझे केवल आँकड़े चाहिए। कितने मरे, कितने घायल हुए, कितना माली नुकसान हुआ''[13] उस रात की आगजनी व मारकाट के उपरान्त ऐसा लग रहा था जैसे सारी सृष्टि ही उलट-पुलट हो गई है। चारों तरफ लोगों के चहरों पर मजबूरी और बेबसी नजर आ रही थी।

रिश्वत खोरी/ लालची प्रवृति : ''हमारा काम हो जाएगा न!'' फिर अपना मुँह बाबू के कान के और नज़दीक ले जाकर बोला, ''मैं तुम्हारा मुँह भी मीठा करवा दूँगा।'' इस पर बाबू ने तनिक खीझकर कहा, 'ओ सरदारजी, कोई अक्ल की बात किया करो। कुएँ में कुछ नही ंतो 27 औरतें डूब मरी हैं। उनमें से तुम कैसे पहचानोगे कि तुम्हारी घरवाली कौन-सी है?[14] ''मुस्लिम लीग के प्रधान के साथ बैठे हुए बक्शीजी सामने की ओर देखे जा रहे थे, पर गहरी उदासी में डूबे हुए थे। 'चीलें उड़ेंगी, और अभी उड़ेंगी,' उन्होंने मन ही मन कहा। उस रात की लूट-खसूट और खून खराबे के उपरान्त लोग अपने हित साधते और रिश्वत को बढावा देते हुए आसानी से नजर आ जाते है। उस रात को हुये कत्ले आम के बाद जब सभी लोग कॉलेज-हाल में इक्ट्ठे होते हैं तो आकड़े इक्ट्ठे करने वाले बाबू को एक सरदार जी अपनी पत्नी के शरीर पर पहने हुये गहनों के बारे में कहता है कि बाबू आप मेरा काम कर दीजिये में आपको हिस्से के रूप में मुंह मिठ्ठा करवा दूंगा।

तबाही का मंजर : दिन के उजाले में शहर की गलियां सुनसान पड़ी थी चारों तरफ सनाटा ही सनाटा था। कहीं-कहीं कोई-कोई दुकान खुली नजर आ रही थी। शहर जातिगत व धर्मगत तरीके से बंट गया था। आसमान में भी सनाटा छाया हुआ था। इक्का-दूक्का पक्षी उड़ते दिखाई दे रहे थे। बक्शी जी का लगाया हुआ पूर्वानुमान सत्य सिद्ध होता दिखाई दे रहा था। जो उन्होंने कहा था कि इस शहर में चिल्लें उड़ेगी और सनाटा छा जाएगा। शहर को जला दिया गया था। रातों रात अनाज मण्डी फूँक दी गई थी। यह दंगाई पता नहीं कहां से आये थे जो रातों रात शहर को अदमरा करके चले गये थे। शहर में रोज की तरह ना तो चहल-पहल थी और न ही बाजारों में भीड़ नजर आ रही थी। बस तबाही के मंजर का अंदाजा आसमान में उड़ते धुएं से लगाया जा सकता है

युद्ध का पूर्वाभास : तात्कालीन समय में जब मुस्लिम लीग पाकिस्तान की मांग कर रही थी और काग्रेंस तथा अन्य बुद्धिजीवी संस्थाएं शहर में शान्ति बहाल करने की कोशिश कर रही थी। तत्कालीन समय में मुस्लमान और हिन्दू/ सिक्ख अपने-अपने खेमे में बन्दूकें, तलवारे व बरछे इत्यादि हथियार इक्ट्ठा कर रहे थे। और युद्ध के पूर्वाभास की तरह-तरह की रणनीतियां तैयार कर रहे थे। इससे पता चलता है कि तात्कालीन समय में ना चाहते हुए भी अपने हमसायों के विरूद्ध लड़ने के लिये जो हवा चली थी उससे कोई भी अछूता नहीं था। सभी युद्ध का पूर्वाभास करते हुए नजर आ रहे थे। ऐसा महसूस हो रहा था जैसे सालो से युद्ध चल रहा है और मानवता खत्म होने के कंगार पर है।

किशोरावस्था पर अतिक्रमण : उस समय परिस्थितियां इतनी भयांनक थी की रणवीर और उसकी उम्र बच्चों को भी विभाजित होती परिस्थितियों में धकेल दिया गया था। हम यह देखते है कि रणवीर और उसी उम्र के लड़कों को हिन्दू महासभा

वाले किस प्रकार से लड़ाई के लिये प्रोत्साहित करते हैं। ''एक आदमी छज्जे पर पहरा दे। रणवीर ने घूमकर कहा। मुर्गी काटकर दीक्षा पाने से उसमें भरपूर आत्म-विश्वास पैदा हो गया। वह दल का सबसे चतुर, सबसे चुस्त और सबसे ज्यादा कार्यकुशल सदस्य था। आवाज में कड़क आ गई थी'' और यह दिखाई देता है कि किस प्रकार उनकी किशोरावस्था पर अतिक्रमण कर दिया गया था।

मानवता : रात को हुये हमले में जब हरनाम सिंह और उसकी पत्नी सारी रात उबड़-खाबड़ रास्तों पर चलते हुये पास के ढोक (गांव) में राजों के घर पहुंचते हैं जो कि एक मुस्लमान स्त्री है। तब राजों मानवता का परिचय देते हुये अपने घर में आने की अनुमति दे देती है। जिससे राजों की मानवता का पता चलता है। इससे आगे चलकर राजों हरनाम सिंह और बन्तो जो कि हरनाम सिहँ की पत्नी है कि अपने पुत्र और पति दोनों से रक्षा भी करती है जो कट्टर मुस्लिम लीगी है और पाकिस्तान बनने के हिमायती है और दिन के समय पूरे परिवार को समझाकर वक्त के मारे हरनाम सिंह और बन्तों को अपने घर में छुपाएं रखती है और रात को उन्हे अपने गांव से आगे जाने वाला रास्ता दिखाकर विदा करती हुई नजर आती है। इसलिए यह कहा जाना अनुचित नहीं होगा कि तत्कालीन समय में भी लोगों में मानवीय गुण मरे नहीं थे। ''थोड़ी दूर तक जाने के बाद उन्होंने घूमकर देखा, राजो अभी भी टीलें पर खड़ी थी और अज्ञात की ओर बढ़ते उनके क़दमों को जैसे देख रही थी। फिर उनके देखते-देखते ही वह लौट पड़ी और गांव की ओर जाने लगी। उसके चले जाने से चारों ओर फैली वीरानी इन दोनों के लिए और भी अधिक भयावह हो उठी।''[15] राजो के माध्यम से मानवता का परिचय दिया गया है।

वेबसी और विवशता : बक्शी जी और अमन चाहने वाले लोगों के प्रयासो के बावजूद भी शहर को जला दिया गया था। बहुत सारे लोग मृत्यु के आगोश में समा गये। अनगिनत लोग घर से वे घर हो गये। इस घटनाक्रम के उपरान्त जब मुस्लिम लीग गुरूद्वारा सिंह सभा और काग्रेंस के सदस्यों की अमन कमेटी की बस निकली तब बक्शी जी और अमन चाहने वाले अन्य लोगों के चहरो पर उनकी बेवसी व मजबूरी साफ झलकती नजर आ रही थी। ''मुस्लिम लीग के प्रधान के साथ बैठे हुए बक्शी जी सामने की ओर देखे जा रहे थे, पर हर उदासी में डूबे हुए थे। 'चीलें उड़ेंगी, और अभी उड़ेंगी, उन्होंने मन ही मन कहा।'' तभी ड्राइवर के साथ वाली सीट पर बैठे मुरादअली ने फिर नारे लगाना :ुरू कर दिया और गूँजते नारों के बीच अमन की बस अपने शान्ति-अभियान पर निकल पड़ी। ऐसा ही एक वाक्य राजो द्वारा हरनाम व बन्तों को विदा करते नजर आया था जब वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकती थी।

मूल्यांकन :

- तमस उपन्यास बहुत ज्यादा विस्तृत है।
- हिन्दी भाषा का होते हुये भी इस उपन्यास में पंजाबी व उर्दू के शब्दों की भरमार है।
- इस उपन्यास में अनेक कहानियाँ है।
- इस उपन्यास की कोई भी कथा लगातार पूर्ण नहीं होती है।
- इस उपन्यास में ज्यादातर नकारात्मक पक्षों को उभारा गया है।
- संवाद बहुत ज्यादा लम्बे हैं।
- इस उपन्यास के पीछे के जातिगत कारणों के अलावा बाकी कारणों को अच्छे तरीके से उजागर नहीं किया गया है।
- उपन्यास का कथा क्रम मात्र कुछ लोगों पर ही निर्भर है।
- उपन्यास के मुख्य पात्र का अन्त तक पता नहीं चल पाता है।

निष्कर्ष

भीष्म साहनी एक कुशल विद्ववान थे उन्होंने भारत- पाकिस्तान के बंटवारे के समय की कहानी का वर्णन करने के साथ-साथ नत्थू की मजबूरी, राजो की सहायक प्रवृति, मुरादअली का वर्णन, कांग्रेस सदस्यो की शान्ति की कोशिश, आपस की छोटी-मोटी, नाराजगी, उपद्रबियों का वहशीपन, जलते हुए शहर का वर्णन, लीजा की कामुक्ता, रिर्चड का इतिहास प्रेम, जरनैल का फौजी तरीका, धर्म परिवर्तन, मास्टर द्रेववृत की वर्ग भावना,

रणवीर की किशोरावस्था और प्रकृति का नजारा रात्रि में जलता आकाश व दिन में मिलती लाशो तथा बर्बाद हो चुके शहर का तथा छोटी-छोटी बातों का वर्णन इस तरीके से किया है कि तमस का अध्ययन करते हुए पाठक अपने- आपको तमस के पात्रो में विचरण करता हुआ पाता है। भीष्म साहनी जी की जीवतता व दर्द तमस में बहुत उच्च स्तर पर उभरा है अगर वह इन, परिस्थितियों, पात्रो व वातावरण का जिक्र नही करते तो शायद इस रचना को तमस का नाम भी नही देते।

सन्दर्भ

[1]तमस -भीष्म साहनी, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ0 सं0 08
[2]उपरोक्त, पृ0 सं0 25
[3]उपरोक्त, पृ0 सं0 40
[4]उपरोक्त, पृ0 सं0 69-71
[5]उपरोक्त, पृ0 सं0 09
[6]उपरोक्त, पृ0 सं0 174-175
[7]उपरोक्त, पृ0 सं0 174-175
[8]उपरोक्त, पृ0 सं0 146
[9]उपरोक्त, पृ0 सं0 130
[10]उपरोक्त, पृ0 सं0 155
[11]उपरोक्त, पृ0 सं0 162
[12]उपरोक्त, पृ0 सं0 161-162
[13]उपरोक्त, पृ0 सं0 281
[14]उपरोक्त, पृ0 सं0 286
[15]उपरोक्त, पृ0 सं0 242

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,42-45
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 जुलाई 2016

प्राचीन विधि और न्याय-व्यवस्था का बदलता परिदृश्य

डॉ. गीता यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन विधि और न्याय-व्यवस्था का बदलता परिदृश्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *गीता यादव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

आँग्ल-सेक्शन विधि-शास्त्र की रूढ़ियों और परम्पराओं के उत्प्रवाह से अभिभूत भारत का समकालीन समाज प्रायः प्राचीन भारत की विधि-शास्त्रीय परम्राओं का अनदेखा कर दिया करता हैं। स्वतंत्रता के बाद कुछ रूक्ष और संक्षोभकारी न्यायिक उपगमन के बाद देश की वर्तमान न्याय व्यवस्था में अब सीधा और सरल न्याय पथ का अनुगमन प्रारम्भ हो रहा हैं। भारतीय विधिशास्त्र के क्षेत्र में भी प्राचीन विधि का महत्वपूर्ण अध्ययन बहुत कम किया गया हैं अब प्राचीन भारत की समृद्वशाली विधि-पद्धति की सोने की खानों का अन्वेषणात्मक शोध किया जाना आवश्यक हो गया है। ताकि हम अपने अतीत की विधि और न्याय व्यवस्था की प्राधिकार पूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकें और उसे प्रकाश में ला सकें।

कोई भी कल्याणकारी राज्य निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासन व्यवस्था से अपने को दूर रखता है, सामाजिक हितों को किसी अन्य हित का अधीनस्थ बनाना खारिज करता है, व्यक्ति की प्रसन्नता को उनकी सम्पूर्णता में मान्य करना है। और व्यक्ति तथा समाज दोनों के लिये विधि के शासन का सम्मान करता है। प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था में इन विशिष्टताओं का प्रकाशपुँज, दृष्टिगोचर होता है। विधि की सर्वोच्चता, जो आधुनिक लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का कोण है, व आधारशीला भी, जिस पर प्राचीन भारत का प्रशासनिक भवन निर्मित किया गया था। शक्ति पृथक्ककरण सिद्धान्त के अभिस्वीकृत आधुनिक लेखकों के जन्म के बहुत पूर्व यह सिद्धान्त प्राचीन भारत की विधिशास्त्रीय संकल्पना में मौजूद था। राजा को विधान का निर्माण नहीं करना था और इस निमित गठित परिषद् को व्यवस्थित ढंग से नूतन विधि को व्यक्त करना था। विधि के समक्ष समता को मान्य किया गया था, राज्य के अधिकारियों के निरंकुश कार्य की सदैव निन्दा की जाती थी। बच्चों, स्त्रियों, असहायों और बीमार को सुरक्षा प्रदान की जाती थी। संघ या संस्था निर्माण का अधिकार और विचार, विश्वास और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को मान्य किया गया था। प्रजा के कल्याण में राजा का कल्याण निहित था, प्रजा को जो कुछ पसन्द था, वही राजा को भी पसन्द

* [अध्यक्ष] राजनीति विज्ञान विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय जौनपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

था, उसकी अपनी पसन्द का कोई महत्व नहीं था। क्या किसी कल्याणकारी राज्य में विधि के शासन की इससे भी अधिक उत्कृष्ट संकल्पना हो सकती है।

प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था में ऐसी अनेको विधियों को देखा जा सकता है, जिनके द्वारा व्यक्तियों के आचरण को विनियमित किया जाता था और जिनकी राज्य के अधिकारियों और सेवकों द्वारा प्रवर्तित किया जाता था। संविदा, धन को उधार देने, विक्रय भूमि के उपयोग, बाट और माप, व्यापार और वाणिज्य, मूल्य निर्धारण, क्रय और विक्रय पर कर, आयात पर कर दाँव और जुआ जैसे विविध प्रकार के विषयों पर निर्मित विधि इस बात को प्रमाण है कि इन क्षेत्रों में कितनी सतर्कता और सावधानी के साथ प्राचीन भारतीय विधि-पद्धति कार्य करती थी। मजदूरी और उसका निर्धारण, अवकाश सुविधा, पेन्शन, प्रोत्साहनों, काम करते हुए मरने वालो के वारिसों के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा के अन्य उपायों से सम्बन्धित विधि-उप बन्ध इस बात को प्रदर्शित करते हैं कि भारत की पुरानी विधियों में आधुनिक प्रवृत्तियों का कितना सादृश्य था। दण्ड-विधि के क्षेत्र में भी दण्ड के लिये निश्चित दिशा निर्देश दिये गये थे और दण्ड की मात्रा को आरोपों की गंभीरता के अनुपात में निर्धारित किया जाता था। धर्मशास्त्रों के अध्ययन से यह भी प्रकट होता है। कि प्राचीन काल में भी जैसा की आज भी है, मृत्यु-दण्ड के सन्दर्भ में कोई एक निश्चित मत नहीं था, क्योंकि धर्मशास्त्रों में उल्लिखित बातें अन्तिम नहीं मानी जाती थी। उनमें खुले और स्वतंत्र विचार-विमर्श को मना नहीं किया गया था और परिवर्तनों को अनुज्ञेय बनाया गया था। उन दिनों भी उपभोक्ता हितों का उल्लघंन शास्त्र के अधीन था और पर्यावरणीय मूल्यों को मान्यता प्रदान की गई थी। अपमिश्रण, बाट और माप में धोखा-धड़ी और विक्रय के संव्यवहार में छल-कपट जैसे उपभोक्ता अपराधों के लिये अर्थ दण्ड की व्यवस्था की गई थी। कूड़ा कतवार को राजमार्ग पर डालने, लोकमार्गों पर अवरोध, जलाशयों और बाग-बगीचों को दूषित करने जैसे पर्यावरणीय अपराधों के लिये दण्ड का निर्धारण किया गया था। पुरातन काल में न केवल कदाचार और वृत्तिक उपेक्षा को, अपितु अपराधों के निवाराण मे मदद करने में विफल रहना भी दाण्डिक न्याय प्रक्रिया के घेरे में रखा गया था। प्राचीन भारत की दस विधि स्थिति के सन्दर्भ में इस बात का समर्थन किया जा सकता है कि हमारी आज की दाण्डिक विधियों में भी किसी अपराध के निवारण में सकारात्मक मदद न किये जाने पर दण्ड का उपबन्ध किया जाना चाहिए, विशेषकर उस स्थिति के सन्दर्भ में जब जनता के सामने ही लोक सम्पत्ति की क्षति की जा रही हो और जनता मूक दर्शक बन कर खड़ी हो।

प्राचीन भारत की प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था के एक दृश्यावलोकन से भी यह परिलक्षित होता है कि आज की प्रशासनिक और न्यायिक व्यवस्था भी अपने कृत्यों, कर्तव्यों और प्रक्रिया के सन्दर्भ मे उन्ही के नक्शे-कदम पर चल रही है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और मनुस्मृति आदि प्राचीन स्रोत-ग्रन्थों का अध्ययन इस बात का प्रतिपादन करता है कि सरकार अपने विभिन्न विभागों के साथ किस प्रकार अपने कृत्यों का निष्पादन करती थी और किस प्रकार न्याय का परिदान किया जाता था। सिद्धान्त यह था कि जिस प्रकार कोई शल्य-चिकित्सक अपने शल्य-उपकरणों का उपयोग करके मानव-शरीर से किसी शंकु को निकालता है उसी प्रकार न्यायाधीश द्वारा भी किसी मामले में अन्याय रूपी शंकु का निकर्षण किया जाना चाहिए।

प्राचीन भारत की विधि और न्याय-व्यवस्था में राजा न्यायिक शक्ति का अन्तिम कोश था और वह किसी भी अपील की सुनावाई कर सकता था। उस समय राजा द्वारा नियुक्त किये गये न्यायधीश होते थे और जनता के भी न्यायालय होते थे। न्यायालयों को कर-निर्धारकों की सहायता उपलब्ध रहती थी और कर-निर्धारकों को समस्या की अन्तरंग जानकारी रहती थी। प्रक्रिया की सुस्थापित संहितायें, साक्ष्य के स्वरूप और अच्छे नियम, लोक और खुले विचारण की व्यवस्था और विधि के अनुसार न्याय प्राचीन भारत के स्वतंत्र और ऋजु न्याय-प्रशासन के मूल तत्व थे। आज के युग में न्याय-प्रशासन में सुधार की आवाज उठाने वालों को इस बात से प्रेरणा लेना चाहिए कि हमारा देशी विधि शास्त्र कतिपय मामलों के संदर्भ में सर्वोत्तम था और आज हमें उसका अनुसरण करना चाहिए। न्यायालय शुल्क के उत्कट आलोचक भारत की पुरातन शासन-व्यवस्था से प्रेरणा ग्रहण कर सकते हैं, जिसमें अपना मामला संस्थित करने के लिये वादी से किसी भी प्रकार के शुल्क-भुगतान की अपेक्षा नहीं की जाती थी। प्रशासन के भारी दबाव के अधीन रहते हुए भी अतीत के न्यायधीशों का निर्भीकपन पेशवाओं के मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति रामशास्त्री की इस संक्षिप्त कथा से भली भांति चित्रित होता है, जिसने पेशवा रघुनाथ राव को राजा की हत्या और सत्ता को हथियाने का दोषी घोषित किया था। मुख्य न्यायाधीश को पदमुक्त कर दिया गया था। उस समय धर्म (विधि) की सर्वोच्चता का जोरदार समर्थन किया गया और जनता ने रघुनाथ राव को पेशवा के रूप में स्वीकार करनें से इन्कार कर दिया

था और उसे शासक की गद्दी से उतार दिया था। यह दृष्टान्त न्यायापालिका की स्वतंत्रता और एक न्यायाधीश द्वारा उन दिनों प्रदर्शित उसके अनुकरणीय आचरण का संज्ञापन करता है।

आज मानवाधिकारों की पताका चारो ओर फहर रही है। संभवतः इन अधिकारों की वंशावली बहुत पुरानी है, क्योंकि वह ऋग्वेद से शुरू होती है। इन अधिकारों की परिधि में समता का अधिकार, संरक्षण का अधिकार, किसी भी धर्म को मानने का अधिकार, महिलाओं से सम्बन्धित विशेष अधिकार, बन्दियों के अधिकार और युद्ध के समय मानवाधिकारों की संरक्षा जैसे सर्वाधिक मूल्यवान अधिकार सम्मिलित है, जैसा कि वेदों, स्मृतियों और कौटिल्य के अर्थशास्त्र में व्यवस्थित ढंग से व्यक्त किया गया है वे सभी अधिकार ठीक वैसे ही हैं, जैसे कि 10-12-1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा निर्मित मानव-अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा में सम्मिलित किया गया है। प्राचीन भारत में एक ऐसे अधिकार को भी मान्य किया गया था, जिसमें भारतीय मूल्यों की झलक मिलती है और जिसको वृहद मानव अधिकार की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इस अधिकार को सभी व्यक्तियों की प्रसन्नता के अधिकार को सभी व्यक्तियों की प्रसन्नता के अधिकार के रूप में जाना जा सकता हैं यह एक ऐसा अधिकार है, जिसमें सभी अधिकार सम्मिलित हैं। इन अधिकारों के साथ-साथ एक अन्य बात भी भारतीय मूल्य के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं और वह है अधिकारों के समानुरूपी व्यक्ति और राज्य के कर्तव्य। व्यक्ति और राज्य के लिये ऐसे कर्तन्य के सृजन की परिणति किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में अधिकार के सृजन मे और उस अधिकार की संरक्षा में होती है। प्राचीन भारतीय विचारकों द्वारा जो यह अनोखी प्रविधि अंगीकृत की गई थी, उसका कारण यह था कि उनका यह दृष्टिकोण था कि अधिकार की भावना स्वार्थपरता को प्रोत्साहित करती है, जबकि कर्तव्य का बोध निःस्वार्थपरता को बढ़ावा देता है और सभी के लिये प्रसन्नता के अधिकार को सुनिश्चित करने में अपेक्षाकृत अधिक सहायक होता है।

सम्पूर्ण विश्व की संहिताबद्ध विधियों का अध्ययन यह दर्शित करता है कि विधि का उद्देश्य सत्य के सुनिश्चयन के बाद न्याय को प्राप्त करना ही है। आज की न्याय-व्यवस्था जिस न्याय या सत्य को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है, उन्ही को प्राचीन भारत की न्याय व्यवस्था भी प्राप्त करने का प्रयत्न करती थी। प्राचीन भारतीय विधि और न्याय व्यवस्था मूल्यों पर आधारित थी। विधि और न्याय व्यवस्था का अनोखा पक्ष यह था कि वह आध्यात्मिक और सदाचारिक मूल्यों पर आधारित थी। विधि और न्याय व्यवस्था में सदाचारिक विषय वस्तु का होना ठीक उसी प्रकार से महत्वपूर्ण है, जिस प्रकार किसी कोश में जीवन रस का विद्यमान होना महत्वपूर्ण होता है। जिस प्रकार जीवन रस के बिना कोई कोश मृत है, उसी प्रकार सदाचारिक अवयव के बिना विधि और न्याय व्यवस्था भी मृत होती है। ऐसी व्यवस्था समाज को उच्च जीवन के लिये अनुप्रेरित नहीं कर सकती, क्योंकि उसमें कार्य करने की शक्तिशाली इच्छा का अभाव होता है। इसीलिये प्राचीनकालिक ऋषियों-मुनियों ने विधि और न्याय व्यवस्था के अध्ययन और उसके प्रवर्तन में सदाचारिता और सत्य के महत्व पर जोर दिया था। सदाचार और सत्य व्यक्ति को उच्च-जीवन के लिये अनुप्राणित करते हैं और उन्हें अपने लक्ष्य की प्राप्ति में कार्य करने के लिये समर्थ बनाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप सामाजिक प्रगति की गति तेज होती है और सभ्यता समृद्विशाली बनती है।

प्राचीन भारत में विधि और न्याय प्रशासन के सम्बन्ध में अनन्यतम अध्ययन यत्र-तत्र बिखरा हुआ है। वेदों, उपनिषदों, स्मृतियों, नीतिग्रन्थों, उनकी टीकाओं न्यायालयों के कतिपय विनिश्चयों और विधि तथा इतिहास के कतिपय आधुनिक लेखकों की कृतियों में उसका कुछ आकार और प्रकार देखनें को मिल जाता है। आज हम जो कुछ जानते हैं, वह यह है कि हमारी आज की विधि ओर न्याय व्यवस्था आयातित है और उसमें कुछ भी देशीपन नहीं हैं। हमारे देश का संविधान ही ब्रिटेन, संयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, स्विट्जरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, जर्मन और जापान जैसे देशों से आयातित और भारतीय रूप में परिष्कृत और अंगीकृत है। हमारी दण्ड संहिता, साक्ष्य-विधि, दण्ड और व्यवहार प्रक्रिया, सम्पत्ति अन्तरण, संविदा सुखाचार आदि से सम्बन्धित विधि मूलतः ब्रिटिश विधि का परिष्कृत भारतीय रूप है और ऐसी स्थिति में हमें अपने पुरातन काल की ओर देखने को कुछ शेष नहीं रह जाता हैं अतः यह आवश्यक है कि हमारी आज की विधि और न्याय व्यवस्था के समानान्तर प्राचीन भारत की विधि और और न्याय व्यवस्था पर नजर डाली जाय और अतीत के गर्त में छिपे तत्सम्बन्धित खजानें को प्रकाश में लाया जाय।

यह तो विश्वविदित है कि भारत में विश्व का सबसे बड़ा लिखित संविधान है और जनंसख्या के मामले में चीन के बाद दूसरा बड़ा राष्ट्र है। यदि यूँ ही आबादी बढ़ती रही तो भारत जनंसख्या के मामले में चीन से भी आगे निकल जायेगा। भारत एक ऐसा राष्ट्र है जहाँ उन्नति तो हो रही है लेकिन समस्याएँ सुरसा की तरह मुँह फाड़े खड़ी है। शुरूआत हम भारत के ऊपरी

हिस्से यानी कश्मीर से करें या दूसरे राज्यों की समस्या आज हर जगह अपने विकराल रूप में ताण्डव कर रहा है। तिस पर तुर्रा यह है भ्रष्टाचार और घटिया राजनीति का हर जगह बोलबाला है।

आजादी के पूर्व नेता और राजनीति शब्द के कुछ मायने होते थे। नेता जो जनता का नेतृत्व करे व जनता की समस्याओं का समाधान करने के लिए प्राण और प्रण से जुटा रहे। उसी तरह राजनीति शब्द है राज और नीति अर्थात् कामकाज सम्बन्धी नीतियां। परन्तु वर्तमान परिपेक्ष्य में राजनीति शब्द अब स्वार्थपरता का ही दूसरा अर्थ हो गया है। आजकल के लगभग नेताओं के सामने केवल एक ही लक्ष्य है वह कुर्सी पाने की राजनीति। वे कुर्सी पाने के लिए देश का अहित करने से भी नहीं चूकते। देश को बेचने से भी नहीं कतराते हैं। ठीक कालिदास की शैली में जिस डाल पर बैठे हैं उसी डाल का काटने तथा क्षति पहुँचाने से नहीं चूकते। उनका क्या है देश में बड़े-बड़े घोटाले होते रहते हैं चाहे वह बोफोर्स काण्ड हो, चारा घौटाला या ताबूत काण्ड। ये तो कुछ उदाहरण मात्र है यानी कि किसी अनाज के ढेर में से कुछ दाने उठाकर नमूने दिखाने जैसा। जिस देश की तिहाई जनता को दो वक्त की रोटी मुश्किल से नसीब हो रही है। उसी देश के छुट भैये नेताओं के भी बैंक में बड़े-बड़े डिपाजिट और स्विस बैंक में अथाह सम्पत्ति पड़ी हुई है। ये राजनेता कुर्सी पाने के लिए धर्म की आड़ लेते हैं तो कभी मंदिर मस्जिद का। चुनाव का मुद्दा देश का विकास ने होकर यहाँ की जनता की उन्नति न होकर जातिवाद एवं संप्रदायवाद होता जा रहा है। देश की स्थिति का सम्पूर्ण आकलन किया जाय तो इसकी आंतरिक सुरक्षा एवं व्यवस्था की बुरी स्थिति देखकर रूह काँप जाती है।

आज घटिया राजनीति का ही परिणाम है कि बांग्लादेश से करोड़ों घुसपैठिये भारत में आ चुके हैं और संप्रति वर्तमान में भी आ रहे हैं किन्तु वोट बैंक की लालच में सत्ता लोलुप ये राजनेता इन्हें वोटर लिस्ट में नाम डलवाने और राशनकार्ड दिलवाने में कोई हिचक नहीं करते है जिसके कारण यहा की जनता में भूखमरी, बेरोजगारी, अराजकता एवं विद्रोह की भावना बढ़ती जा रही है। जिसका परिणाम हे कि हजारों नवयुवक और नवयुवतियां जो अपनी ऊर्जा देश के विकास में लगाते वह उग्रवादी बनकर देश में आतंक और मौत फैलाने का काम कर रहे हैं। देश की मौजूदा हालात देखकर तो यही लगता है कि, ''बर्बादे गुलिस्तां करने को बस एक ही उल्लू काफी है,/ अंजामे गुलिस्ता क्या होगा हर शाख पर उल्लू बैठे हैं।''

वर्तमान समय में राजनीति में कुछ युवाओं का प्रवेश हुआ है। आशा है कि ये युवा नेता भ्रष्टाचार से बंधी इस भारतीय राजनीति को एक उद्देश्यपूर्ण और स्वस्थ मानसिकता की ओर ले जायेंगे क्योंकि, ''बंदूकों की नोकों पर आजादी देश की पलती है,/ इतिहास उधर मुड़ जाता है जिस ओर जवानी चलती है।''

अब हम भारतीय जनता के समक्ष यह समय आ गया है कि हम इस देश के जिम्मेदार नागरिक बनें और इस देश को विकास के पथ पर ले जाने वाले कुशल संचालक के हाथ में इस देश की बागडोर को सौंपे।

पाप करने वाले से ज्यादा दोषी पाप सहने वाला होता है सदियों हम परतंत्र रहे और अभी तक हमारी मानसिकता सिर झुकाकर जीने की बनी हुई है। पहले मुगलों के गुलाम थे उसके बाद अंग्रेजों के और अब अपने ही देश के कुछ स्वार्थी नेताओं के हम गुलाम बने हुए हैं। इसलिए देश में फैले भ्रष्टाचार और घटिया राजनीति को खत्म करने के लिए सम्पूर्ण भारतीय जनता कृतसंकल्प हो। तभी भारतीय मूल्यों को व्यवस्था में स्थान मिल पायेगा जो हमारे वेदो, उपनिषदे और प्राचीन न्याय व्यवस्था में सदैव से ही रहा है।

सन्दर्भ सूची

गैरोला, वाचस्पति (2000) -(हिन्दी व्याख्या कार) *''कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्'',* चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, पृष्ठ संख्या 117-119

गवर्नेंस नाऊ, 16-31 सितम्बर 2013, पृष्ठ संख्या 21

डॉ0 कपिलदेव द्विवेदी आचार्य -*अथर्ववेद का सांस्कृतिक अध्ययन,* विश्व भारती अनुसंधान परिषद् ज्ञानपुर (वाराणसी), पृष्ठ संख्या 453

दुर्गादास बसु (1996) -*भारत का संविधान एक परिचय,* छठा संस्करण, प्रेंटिस हाल आफ इण्डिया प्रा0लि0 (नई दिल्ली), पृष्ठ संख्या 363

भारत का संविधान, भारत सरकार विधि और व्याय मंत्रालय, 2003, पृष्ठ संख्या 125

दैनिक जागरण कानपुर संस्करण 20 जून 2011

इण्डिया टुडे, 31 अक्टूबर 2012, पृष्ठ संख्या 17

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,46-49
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 जुलाई 2016

कृषि उत्पादकता में महिला किसानों की सहभागिता, चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ [एक अध्ययन]

डॉ. प्रिया सोनी खरे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कृषि उत्पादकता में महिला किसानों की सहभागिता, चुनौतियाँ एवं सम्भावनाएँ [एक अध्ययन]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रिया सोनी खरे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारशिला है। वर्तमान में भी भारतीय जनसंख्या का लगभग 52 प्रतिशत हिस्सा कृषि तथा उससे सम्बन्धित क्षेत्रों में ही अपना जीवन-यापन कर रहा है। अतः यह निष्कर्ष निकालना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि कृषि के विकास एवं उत्पादकता पर ही देश की सार्वभौमिक सम्पन्नता निर्भर करती है। भारतीय कृषि में विविधीकरण की सम्भावनाएँ सर्वोच्च है। भारतीय जलवायु में छह प्रकार की ऋतुएँ एवं दर्जनों प्रकार की मिट्टी है, जो प्रत्येक फसल के उत्पादन को प्रोत्साहित करती है। 18वीं सदी के प्रख्यात जनगणक थॉमस मैल्थस ने एक दिलचस्प भविष्यवाणी करते हुए कहा था कि आने वाले समय में भुखमरी को रोका नहीं जा सकता क्योंकि आबादी ज्यामितीय तरीके से बढ़ रही है और खाद्यान्न उत्पादन अंकगणीय तरीके से।[1]

पाँचवें दशक में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानवाधिकारों की घोषणा के उपरान्त महिलाओं के लिए समानता का पक्ष भी रखा गया, महिला-अधिकारों को सुरक्षित करने वाला लिंग भेदभाव समाप्त करने में संयुक्त राष्ट्र संघ UNO की मानवाधिकार सम्बन्धी घोषणा ने प्रेरक का काम किया, तदुपरान्त 1960 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस की 50वीं वर्षगांठ पर महिलाओं को राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों में वृद्धि करने की घोषणा को स्वीकृति प्राप्त हुई। बावजूद इसके महिलाओं को किसान कहलाने का हक तक नहीं है, जबकि वो खेती के कार्यों में भरपूर योगदान देती है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि कृषि में महिलाओं का योगदान बराबर से भी कहीं ज्यादा है। वर्ष 2001 में भारत में 12. 73 करोड़ किसान (कृषि उत्पादक) थे। इनमें से 4.19 करोड़ (33 प्रतिशत) महिलाएँ थी। वर्ष 2011 में कृषि क्षेत्र में महिलाओं की संख्या में कमी आई और यह घटकर 3.60 करोड़ (33.3 प्रतिशत) रह गई। इस विषय में उल्लेखनीय है कि किसान के रूप में पितृ-सत्तात्मक समाज अपनी पहचान महिलाओं से साझा नहीं करता है, किसान समूह में 33 प्रतिशत महिलाएँ थी और

* असिस्टेंट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, वनस्थली विद्यापीठ वनस्थली (राजस्थान) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वर्ष 2011 में ये 42.67 प्रतिशत रह गई। रोजगार के साधनों के बढ़ते संकट का असर महिलाओं पर ज्यादा पड़ता है। दस वर्ष की अवधि में, भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या में 3.75 करोड़ की वृद्धि हुई है। इनमें से 32 प्रतिशत (1.21 करोड़) महिलाएँ है।[2]

तेज धूप, बारिश में घण्टों खेत में काम करती महिला भारत के किसी भी कोने में देखी जा सकती है। भारत में 80 प्रतिशत कामकाजी महिलाएँ खेतीबाड़ी से जुड़ी हैं लेकिन किसान कहते हैं, तब पुरूष की ही छवि सही लगती है। क्यों?

तथ्यों के अवलोकन से पता चलता है कि विकास की वर्तमान स्थिति न केवल कृषि क्षेत्र के लिए घातक है बल्कि इससे उत्पन्न होने वाले अभावों और असुरक्षा के चलते लैंगिक भेदभाव की खाई और चौड़ी होती जाएगी। कृषि क्षेत्र में काम करने वाली महिलाओं के समक्ष विभिन्न समस्याएँ एकाकार हो विकराल रूप में प्रकट होती हैं। जहाँ सूखा, बाढ़, नकली बीज, नकली खाद, कीटनाशक, फसल के मूल्य का संकट है, वहीं इसके साथ ही महिला किसानों को घरेलू हिंसा, भेदभाव, सुरक्षित मातृत्व, सुरक्षित जीवन जैसे बुनियादी संरक्षण के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है।

कृषि व्यवस्था में महिला किसानों की समस्या

1. कृषि शिक्षा का अभाव।
2. महिलाओं को किसान का दर्जा नहीं दिया जाता। जबकि महिलाएँ कृषि व्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
3. गृहकार्य, पालन-पोषण के अतिरिक्त कृषि कार्य, गृह उद्योग आदि में ग्रामीण महिलाओं के उल्लेखनीय योगदान के उपरान्त भी सरकारी आँकड़ों में या तो कम करके अंकित किया जाता है, या नजरअंदाज कर दिया जाता है।
4. महिला किसान को कृषि प्रशिक्षण, कृषि बाजार, कृषि का विस्तार आदि क्षेत्रों में भाग लेने का अवसर लगभग नहीं के बराबर प्राप्त होता है, जिससे वे नवीन कृषि तकनीकी ज्ञान एवं कौशल से वंचित हो जाती है।
5. महिला किसानों को अतिरिक्त कार्य करने के कारण शारीरिक एवं मानसिक त्रासदी से गुजरना पड़ता है। कृषि यंत्रों एवं उपकरणों की कमी के कारण उन्हें शारीरिक कष्ट उठाना पड़ता है तथा ठीक इसके विपरीत कृषि उत्पादन में प्रयोग में आने वाले रसायनों के दुष्प्रभाव से भी महिला किसानों को कई प्रकार की स्वास्थ्य समस्याओं का सामना करना पड़ता है।
6. महाराष्ट्र में महिला किसानों की खुदखुशी के सिर्फ 126 मामले राष्ट्रीय अपराध रेकॉर्ड्स ब्यूरो द्वारा दर्ज किए गये है जबकि पुरूष किसानों के 3020 मामले। इसका कारण यह है कि महिला किसानों की खुदखुशी के अधिकतर मामलों को दहेज हत्या या दुर्घटना के रूप में दर्ज किया जाता है क्योंकि खेत की जमीन का मालिकाना हक पुरूषों का होता है।[3]

सरकार द्वारा किए जा रहे प्रयास

ग्रामीण महिला किसानों की कुछ विशेष जरूरतों को पूरा करने के लिए बजट 2010-11 में राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (NRLM) के उप-घटक के रूप में महिला किसान सशक्तिकरण परियोजना (MKSP) की घोषणा की गई थी। कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण महिला किसानों, प्रमुख रूप से छोटे और सीमांत किसानों को सामाजिक, आर्थिक और तकनीकी रूप से अधिकार सम्पन्न बनाना भी है।[4]

वर्ष 2011-12 में खाद्यान्न उत्पादन में श्रेष्ठ प्रदर्शन करने के लिए राजस्थान, मध्यप्रदेश, हरियाणा और छत्तीसगढ़ समेत आठ राज्यों को कृषि कर्मण पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसी कड़ी में रेखा त्यागी, बाजरे की खेती में बम्बर पैदावार करने वाली प्रदेश की पहली महिला किसान बन गई। 19 मार्च 2014-15 को दिल्ली में आयोजित कृषि कमर्ण अवार्ड कार्यक्रम में रेखा त्यागी को आमन्त्रित कर प्रधानमंत्री ने प्रशस्ति-पत्र और दो लाख रुपये का नगद इनाम दिया।[5]

भारत के संविधान में महिलाओं के लिए विशेष प्रावधान रखे गये हैं :

- संविधान के अनुच्छेद 14 - व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता की गारंटी देता है तथा इसी के अन्तर्गत कानून के समान संरक्षण का आदेश भी राज्य को दिया गया है। जो महिला-पुरूष दोनों के मामले में लागू होता है।

- अनुच्छेद 15 में धर्म, जाति, लिंग, मूलवंश इत्यादि आधारों पर विभेद न करने का निर्देश दिया गया है। अनुच्छेद 15 (3) में स्पष्ट किया गया है कि राज्य द्वारा महिलाओं तथा बच्चों के हित को देखते हुए बनाया गया कोई कानून इस अनुच्छेद के विरूद्ध नहीं माना जाएगा।
- अनुच्छेद 16 द्वारा सार्वजनिक रूप में पुरूष तथा महिला को समान कार्य के लिए समान वेतन का निर्देश है जो कि रोजगार के सम्बन्ध में अवसर की समानता की गारंटी देता है।
- अनुच्छेद 39 के अनुसार राज्य ऐसी नीतियों का निर्माण करेगा जिससे स्त्री-पुरूष दोनों के जीवन निर्वाह की परिस्थितियाँ बने।
- अनुच्छेद 42 में राज्य को ऐसी व्यवस्था करने का निर्देश है जिसमें महिलाओं को प्रसूति काल में वे सभी सुविधाएँ मिल सके जो उन्हें मानवीय आधार पर मिलनी चाहिए।

महिला किसानों के लिए सम्भावनाएँ एवं कृषि उत्पादकता में अर्थपूर्ण सहभागिता के लिए सुझाव

1 कृषि शिक्षा का व्यापक प्रचार-प्रसार विशेष रूप से लड़कियों/ महिलाओं के लिए, गाँवों में होना चाहिए और प्रत्येक शिक्षण संस्थान में न्यूनतम माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा में कृषि सम्बन्धी जानकारी अवश्य दी जानी चाहिए।

2 कृषि औजारों को महिलाओं की शारीरिक क्षमता के अनुरूप बनाया जाना चाहिए जिससे वो आत्मनिर्भर होकर कृषि में औजारों का प्रयोग कर सके।

3 गाँवों में अनाज मण्डी तक उत्पादन को पहुँचाने के लिए यातायात की सुविधा सरकार द्वारा सुलभ करायी जानी चाहिए तथा महिला किसान और मण्डी के बीच कोई भी बिचौलिया उनका शोषण न कर सके।

4 महिला किसानों को भूमि का मालिकाना हक भी दिया जाना चाहिए जिससे वो स्वतन्त्र रूप से कृषि उत्पादकता में गौरव-पूर्ण सहयोग कर सके।

5 महिला किसानों के लिए गाँव में एक कृषि सहकारी समिति का निर्माण किया जाना चाहिए। जिसके अन्तर्गत यन्त्र, उपकरण, कृषि मानकों के अनुसार बीज, खाद, कीटनाशक आदि सरकारी योजना के अन्तर्गत उपलब्ध कराए जाए।

6 महिला किसान को कठिन परिश्रम द्वारा परिवार तथा खेत दोनों जगह की जिम्मेदारी का निर्वहन करना पड़ता है, उनके बच्चों का पालन-पोषण भी कृषिकार्य से प्रभावित होता है। अतः उनके छोटे बच्चों के लिए गाँव में एक लालन-पालन केन्द्र की व्यवस्था की जानी चाहिए तथा वहाँ प्रशिक्षित 'महिला', की नियुक्ति की जानी चाहिए जो शिशुओं का ध्यान रख सके।

7 महिला किसानों का बीमा भी सरकार द्वारा किया जाना चाहिए ताकि किसी दुर्घटना का शिकार होने पर उनके बच्चों को कुछ आर्थिक सहायता प्राप्त हो सके और उन्हें खाली पेट न सोना पड़े।

निष्कर्ष

कृषि में महिलाओं की सहभागिता बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कृषि क्षेत्र में कुल श्रम 60 से 80 फीसदी तक भागीदारी महिलाओं की होती है। FAO (फूड एण्ड एग्रीकल्चर ऑर्गेनाइजेशन) के अध्ययन से पता चला है कि हिमालय क्षेत्र में प्रति हेक्टेयर प्रतिवर्ष एक पुरूष औसतन 1212 घण्टे और एक महिला औसतन 3485 घण्टे कार्य करती है। यह आँकड़े कृषि क्षेत्र में महिलाओं के अभूतपूर्व योगदान को दर्शाते हैं। भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद् की ओर से नौ राज्यों में किए गए शोध से पता चला है कि प्रमुख फसलों के उत्पादन में महिलाओं की 75 प्रतिशत हिस्सेदारी, बागवानी में 79 प्रतिशत महिला भागीदारी होती है। महिलाओं को कृषि क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाने के लिए यदि उन्हें उचित अवसर प्रदान किया जाए तथा आवश्यक तकनीकी उपकरण उपलब्ध कराए जाए तो उनकी सहभागिता को देश की आर्थिक उन्नति के रूप में परिणित किया जा सकता है। परिवर्तन के इस युग में नई रणनीतियों का निर्माण वाँछनीय है जिससे महिला किसानों के समक्ष आने वाली चुनौतियों का सामना पूर्ण उपलब्धता के साथ किया जा सके। कृषि क्षेत्र में महिला किसान को एक नई पहचान देते हुए उनके प्रशिक्षण और पारिवारिक दायित्वों के निवर्हन में उनकी सहायता की जा सके। परन्तु आज भी इस पुरूष प्रधान समाज में पुरूष मानसिकता यह मानने को तैयार नहीं कि महिला भी ऊर्जावान, उत्पादक और उनकी सहयोगीएवं सहभागिनी है।[6] सर्वाधिक आवश्यकता इस मानसिकता को बदलने की है जब तक महिला के कार्य को पहचान और सम्मान नहीं प्राप्त होगा तब तक समस्या का निराकरण चर्चाओं तक ही सीमित रहेगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

बाला, N. (2010), *'Selective Diserimination Against Women in Indian Agriculture - A Review'* एग्रीकल्चरल रिव्यू, 31(3) : 224-228

गुप्ता, आर. (1987), *'Role of Women in Economic Devlopment'* योजना पत्रिका 31(8) : 28-323

झनकार, डॉ. एच. डी. (2015) - *'महिला उत्पीड़न एवं समाज',* रावत प्रकाशन, 4264/3, अंसारी रोड़, दरियागंज, नई दिल्ली

ओझा, चितरंजन (सम्पादक) (2010) - *'नारी शिक्षा एवं सशक्तिकरण',* रीगल प्रकाशन, न्यू दिल्ली, 110027

परोड़ा, आर. एस. (अगस्त 1998) - *'अनाज उत्पादन की नई चुनौतियाँ',* लेख, योजन पत्रिका

उन्नति, ए. जी. एस. अनकुश, वी. मांडे (2012), *'Extent of Participation of Farm Women in Decision Making',* Journal of Dairying food & Home Science 31 (1) : 72-74

Footnotes

[1]*nayamorcha.blogspot.in*/2011/03/blog-post_15.stml

[2]*tehelkahindi.com*/report-on-how-women-farmers-of-country-are-not-being-given-due-recognition/2/

[3]*www.jantajanardan.com*/newsdetails/29390/reords-may-not-show-but-women-farmers-dying-too. saturday 09July2016. जनता जनार्दन html

[4]*योजना पत्रिका,* अगस्त 1998, लेख अनाज उत्पादन की नई चुनौतियाँ, (लेखक) आर. एस. परोड़ा। प्रकाशक विभाग-सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्पलेक्स, लोदी रोड़, नई दिल्ली

[5]*Hindi.yourstory.com*/read/03e2dfd683/an-inlliterate-peasant-woman-told-the-country-how-bajra-prime-minister-honored

[6]*दैनिक 'पत्रिका',* 3 जुलाई 2015, ग्वालियर, पृष्ठ संख्या 1

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,50-60
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 अगस्त 2016

"पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोश अन्तर्गत हेल्प लाइन के प्रभाव का अध्ययन छ.ग. पंचायत राजव्यवस्था के परिदृश्य में"

प्रकाश कुमार छाटा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित "पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोश अन्तर्गत हेल्प लाइन के प्रभाव का अध्ययन छ.ग. पंचायत राजव्यवस्था के परिदृश्य में" शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *प्रकाश कुमार छाटा* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

वर्ष 2013-14 एवं 2014-15

आमुख

जन सहभागिता एक ऐसा प्रभावशाली माध्यम है जिसके द्वारा मूलभूत स्तर पर लोगों के आर्थिक विकास एवं आकांक्षाओं को पूरा किया जा सकता है और यह सुनिश्चित करने संप्रेषण (बात-चीत) एक माध्यम है जिसमें लोग सुविधा एवं समस्या तथा सुझाव के विकल्प हेतु जुड़ते हैं। इससे यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि समाज के सबसे कमजोर वर्ग तक विकास के लाभ वास्तविक तौर पर पहुँचे। ऐसा माना जाता रहा है कि पंचायत राज संस्थाएँ लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीयकरण की सबसे उपयुक्त संस्थाएँ हैं, जिन्हें पर्याप्त शक्तियॉ एवं उत्तरदायित्व सौपें गए हैं ताकि वे स्थानीय स्वशासन के माध्यम से आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण विकास की योजनाएँ तैयार कर सके एवं क्रियान्वित कर सके।

संचार के इस नये युग में पंचायतीराज संस्थाए भी इन उपकरणों एवं सुविधाओं से अलग नहीं है आज पंचायत के अधिकारी कर्मचारी जनप्रतिनिधि इनका उपयोग विकास नियोजन एवं क्रियान्वयन में कर रहा है। लेकिन इन में सहभागिता का होना आवश्यक है। ताकि हितग्राही एवं लक्षित समूह तक योजना पहुच सके एवं उद्देश्य सार्थक हो सके इसके अलावा क्षेत्रीय अधिकारी एवं कर्मचारी तथा जनप्रतिनिधि एवं समान्य जन का कार्य एवं दायित्व जैसे समस्या के निदान हेतु विकल्प प्रस्तुत करने तथा विभाग संबंधी अद्यतन जानकारी हेतु सुविधा हो ताकि विकास को नया आयाम दिया जा सके। इस हेतु पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोश योजना अन्तर्गत राज्य पंचायत संसाधन केन्द्र निमोरा में स्थापित हेल्प लाईन सुविधा केन्द्र का अध्ययन संचालक ठाकुर प्यारेलाल पंचायत एवं ग्रामीण विकास प्रशिक्षण केन्द्र निमोरा, रायपुर के निर्देशन अनुसार किया।

* शोध छात्र, डॉ. सी. वी. रमन विश्वविद्यालय [कोटा] बिलासपुर (छत्तीसगढ़) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

प्रस्तावना विषय का उद्देश्यात्मक विश्लेषण

73वॉ संविधान संशोधन के पश्चात त्रिस्तरीय पंचायती राज का गठन हुआ जिसमें सामाजिक न्याय एवं आर्थिक विकास के साथ सत्ता का विकेन्द्रीकरण को ध्यान में रख कर, एवं संविधान के 11वी अनुसूची के साथ 29 विषय दिए व सही क्रियान्वयन के लिए अधिकार, दायित्वों का प्रत्यायोजन पंचायतीराज संस्था को किए। इस तरह नीति-निर्देशक तत्वों में शामिल कर पंचायत राज संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा दिया गया एवं राज सरकारों को अपने राज्य में पंचायत राज की स्थापना कर नियम बनाने हेतु अपरिहार्य किया गया है।

छत्तीसगढ़ पंचायत राज अधिनियम में ग्राम सभा एवं उसके सम्मेलन तथा कार्यदायित्व के बारे में वर्णन किया है। साथ ही पंचायतों के गठन की प्रक्रिया, निर्वाचन के संचालन, पंचायतों के कार्यो का संचालन तथा अधिनस्थ अभिकरण के संबंध में प्रावधान किया है। साथ ही पंचायती राज के अधिकारी एवं कर्मचारियों की विवेचना एवं उनके अधिकार कर्तव्य को भी इगिंत किया है।

ग्रामसभा; ग्राम सभा में स्वरुप, ग्राम सभा के सम्मिलन एवं ग्रामसभा के समस्त लेखों की प्रस्तुति के सन्दर्भ में विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके अनुसार राज्यपाल किसी ग्राम अथवा ग्रामों के समूह को इस प्रयोजन हेतु ग्राम के रुप में स्पष्ट करेगा। सुस्पष्ट प्रत्येक ग्राम का ऐसी व्यक्ति जो उस ग्राम से संबंधित विधानसभा निर्वाचन नामावली में पंजीकृत किए जाने योग्य है अथवा जिसका नाम उसमें प्रविष्ट है और जो उस ग्राम का मूल निवासी है, उस ग्रामसभा का सदस्य होगा।

पंचायतों का गठन; पंचायतीराज अधिनियम के तहत ग्राम के लिए ग्राम पंचायत, विकास खण्ड के लिए जनपद पंचायत एवं जिले के लिए जिला पंचायत का गठन किया जायेगा। प्रत्येक पंचायत की काल अवधि पॉच वर्ष होगी, किन्तु समय पूर्व पंचायत का विघटन होने पर 6 माह की अवधि के भीतर निर्वाचन आवश्यक होगा एवं इस प्रकार गठित पंचायत शेष काल अवधि के लिए होगी।

प्रत्येक ग्राम पंचायत को कम से कम 10 वार्डों में विभाजित किया जायेगा। किन्तु 1000 से अधिक जनसंख्या होने पर वार्डो की अधिकतम संख्या 20 हो सकती है। इसी प्रकार जनपद पंचायत क्षेत्र जिसकी जनसंख्या 50000 तक है। 10 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जायेगा। किन्तु 50000 से अधिक जनसंख्या होने पर अधिकतम 25 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकेगा। प्रत्येक जिला पंचायत का जिसकी जनसंख्या 5 लाख से कम है कम से कम 10 निर्वाचन क्षेत्रों में एवं जनसंख्या अधिक होने पर अधिकतम 35 निर्वाचन क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकेगा।

अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों का पंचायतों में आरक्षण उनकी जनसंख्या के अनुपात में होगा। यदि इन वर्गों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या 50 प्रतिशत या इससे कम है तो कुल स्थानों के पच्चीस प्रतिशत स्थान अन्य पिछड़े वर्गों के लिए आरक्षित रहेंगे। आरक्षित स्थानों सहित सभी स्थानों के 50 प्रतिशत स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित रहेंगे। ग्राम पंचायत स्तर पर सरपंच का चुनाव प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा होगा। जनपद पंचायत अध्यक्ष एवं उपाध्यक्ष के निर्वाचन जनपद एवं जिला पंचायत के निर्वाचित सदस्यों द्वारा होंगे। ग्राम पंचायत के उपसरपंच का निर्वाचन, निर्वाचित पंचों तथा सरपंच द्वारा पंचों में से होगा। अनुसूचित जाति, जनजाति एवं पिछड़े वर्ग का इस पद हेतु आरक्षण का वही अनुपात रहेगा जो सरपंच हेतु किया गया है, परन्तु सरपंच का सीट जहॉ आरक्षित है उन स्थानों को छोड़कर उपसरपंच का स्थान आरक्षित रहेगा।

पंचायतों के कार्यों का संचालन; अध्यक्ष या सरपंच यथा स्थिति, जिला पंचायत, जनपद पंचायत एवं ग्राम पंचायत का सम्मिलन प्रत्येक माह में कम से कम एक बार बुलाएगा। यदि अध्यक्ष अथवा सरपंच किसी माह में सम्मिलन बुलाने में असफल रहता है तो जिला अथवा जनपद पंचायत का मुख्य कार्यपालन अधिकारी अथवा ग्राम पंचायत का सचिव, संबंधित पंचायत के सम्मिलन के लिए सूचना जारी करेगा। इस प्रकार पंचायत के अध्यक्ष सचिव एवं पदाधिकारीयों के कार्य सम्पादन में आये समस्या या असुविधा हेतु हेल्प लाइन की आवश्यकता होगी जिसमे असुविधा या समस्या के संबंध में निदान प्राप्त हो सके। एवं पंचायत के सु-शासन एवं सुदृढ़ीकरण के लिए क्षेत्रीय स्तर के सुझाव या सफलता की कहानी प्राप्त हो सके।

अधीनस्थ अभिकरण; ग्राम पंचायत अपने कर्तव्य के निर्वहन के लिए 5 स्थाई समितियॉ गठित कर सकेगी और ये समितियॉ ऐसी शक्तियों का प्रयोग करेगी जो ग्राम पंचायत द्वारा उसको सौंपी जाये। ये समितियॉ ग्राम पंचायत के सामान्य नियंत्रणा-धीन रहेगी। सामान्य प्रशासन स्थायी समिति, शिक्षा स्वास्थ्य एवं समाज कल्याण स्थायी समिति, राजस्व एवं वन स्थायी समिति, कृषि पशुपालन एवं मत्स्यपालन स्थायी समिति, निर्माण एवं विकास स्थायी समिति जिसमें सभापति/अध्यक्ष पदाधिकारी एवं सचिव होते हैं जो संबंधित विभाग के लिए नियोजन, क्रियान्वयन एवं समन्वय करते हैं। ऐसी अवस्था में सफल क्रियान्वयन समन्वय में आ रही दिक्कतों के दूर करने एवं सफल क्रियान्वयन के प्रचार हेतु हेल्पलाइन की जरुरत होगी। प्रशासनिक कर्मचारी एव अधिकारियों को व जनप्रतिनिधियों एवं सामान्य जन को कार्य, योजना, प्रक्रिया, प्रशिक्षण एवं निष्पादन के संबंध में रही कठनाइयों के सबंध में या जानकारी के संबंध में या सफल क्रियान्वयन बताने के लिए हेल्प लाईन सार्थक सिद्ध हो सकता है।

क्योकिं ग्राम पंचायत द्वारा क्षेत्र के अर्थिक विकास एवं सामाजिक न्याय के लिए वार्षिक योजना तैयार करना और जनपद के योजना में सम्मिलित करने हेतु प्रस्तुत करने, मूलभूत नागरिक सुविधाओं की योजना बनाने, उनका प्रबंधन, क्रियान्वयन एवं ग्राम सभा में अनुमोदन से हितग्राहियों के चयन तथा विकास कार्यक्रमों के निष्पादन, केन्द्र सरकार, राज्य सरकार या जिला अथवा जनपद पंचायत द्वारा सौपे गए कार्यक्रमों, कार्य एवं परियोजनाओं के सफल निष्पादन के संबंध में संचार के अदान-प्रदान हेतु हेल्पलाइन महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार जनपद एवं जिला स्तर पर एकीकृत ग्रामीण विकास, कृषि, सामाजिक वानिकी, पशुपालन और मत्स्य पालन, स्वास्थ्य और स्वच्छता, प्रौढ़ शिक्षा, संचार और लोक संकर्म, सहकारिता, कुटीर उद्योग, महिला युवा तथा बाल कल्याण, निःशक्तों तथा निराश्रितों का कल्याण, पिछड़े वर्गो का कल्याण, परिवार नियोजन तथा ग्रामीण रोजगार कार्यक्रमों, प्राकृतिक आपदाओं में आपातिक सहायता की व्यवस्था करना, स्थानीय तीर्थ यात्राओं तथा त्यौहारों के संबंध में व्यवस्था करना, सार्वजनिक नौघाटों का प्रबन्ध करना, राज्य सरकार या जिला पंचायत के अनुमोदन से अन्य कार्य करना।

उपरोक्त विवरण से उल्लिखित है कि संबंधित विषय अध्ययन हेतु महत्वपूर्ण है।

अध्ययन क्षेत्र का परिचय एवं अध्ययन पद्धति

छत्तीसगढ़ 135,194 वर्ग किलोमीटर के क्षेत्रफल के साथ भारत का दसवां बड़ा राज्य है छत्तीसगढ़ राज्य की जनसंख्या लगभग 2.55 करोड है इस प्रकार जनसंख्या की दृष्टि से छत्तीसगढ़ देश का सोलहवां सबसे बड़ा राज्य है। छत्तीसगढ़ के लोगों की मूल भाषा छत्तीसगढ़ी है, वर्तमा छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश राज्य से अलग होकर 01 नवंबर में 2000 को अस्तित्व में आया।

छत्तीसगढ़ विद्युत तथा स्टील के उत्पादन की दृष्टि में भारत का महत्वपूर्ण केन्द्र है भारत में उत्पादित कुल इस्पात का लगभग 15 प्रतिशत छत्तीसगढ़ में होता है। छत्तीसगढ़ राज्य की सीमायें सात राज्यों अर्थात मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्रपदेश, तेलंगाना, उड़ीसा, झारखंण्ड और उत्तरप्रदेश से लगा हुआ है।

छत्तीसगढ़ राज्य की राजधानी रायपुर है जो कि मुख्यतः व्यापार, अर्थव्यवस्था, और प्रशासन का केन्द्र है। छत्तीसगढ़ राज्य में मूल रुप से प्रचिलत बोली है किन्तु प्रमुख रुप से ही हिन्दी ही प्रयोग होती है छत्तीसगढ़ धान का कटोरा (चावल का कटोरा) के नाम से भी प्रसिद्ध है।

शासन की जनकल्याणकारी नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों तथा गतिविधियों के क्रियान्वयन का उत्तरदायित्व शासकीय सेवकों पर है। यदि शासकीय सेवक को इनका समुचित ज्ञान हो तथा उनकी दक्षता एवं कार्यक्षमता का समुचित उपयोग किया जाये तभी कार्यक्रमों योजनाओं का उत्कृष्ट ढंग से क्रियान्वयन हो सकेगा, एवं इनका वास्तविक लाभ जनता को पूरी तरह से प्राप्त हो सकेगा। अतः शासकीय सेवकों एवं जनप्रतिनिधियों के ज्ञान कौशल दक्षता के विकास हेतु प्रशिक्षण के साथ ही साथ अद्यतन जानकारियों को समय-समय पर बताना एवं उनके समस्या और जिज्ञासा को दूर करने के लिए विकल्प एवं जानकारी प्रदान करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

छत्तीसगढ़ में कुल 9734 ग्राम पंचायत, 146 जनपद पंचायत एवं 27 जिला है। जिसमें 85 अनुसूचित जनजाति विकासखण्ड है। पंचायती राज के उद्देश्य को साकार करने के लिए फण्ड-राशि, फंक्शन-कार्य, फंक्शनरी-कार्य करने वाले सौंपे गये, इस हेतु व्यापक कर्मचारी/ अधिकारी एवं निर्वाचित जनप्रतिनिधि पंचायतीराज संस्थाओं को प्रदत्त किये गये हैं। जिससे राष्ट्रपिता के स्वतंत्र भारत में पंचायतों के माध्यम से ग्राम स्वराज की कल्पना साकार हो सके।

- पंचायती राज व्यवस्था अन्तर्गत पंचायतों में शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण, अधोसंरचना एवं अजीविका अन्तर्गत मुख्य रुप से कार्य किये जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में पंचायतों के कृषिगत विकास की दिशा में उल्लेखनीय कार्य पंचायती राज की विभिन्न संस्थाओं यथा कृषि, पशुपालन, मत्स्य पालन, व्यवसाय, स्वास्थ्य, सफाई, शिक्षा, लघु एवं कुटीर उद्योगों के विकास का कार्य सम्पन्न करती है,
- कुशल प्रशासनिक ढांचा- ग्राम पंचायत से जिला पंचायत तक पंचायतीराज व्यवस्था प्रशासन का उत्कृष्ट एवं कुशल ढांचा प्रदान करने कार्य करती है,
- समाज के पिछड़े वर्ग एवं कमजोर लोगों के उत्थान हेतु, विभिन्न योजना एवं कार्यक्रम के माध्यम से कार्य किऐ जाते है,
- लोकतंत्र का प्रशिक्षण-अधिकाधिक लोग पंचायतीराज के प्रशासन के कार्यों में भाग लेने का अवसर देती है। जिससे राज्य एवं राष्ट्र स्तर पर अपने उपार्जित अनुभव से देश और समाज को अधिकाधिक लाभ पहुचाते हैं।
- नागरिक गुणों का विकास

अध्ययन पद्धति

तथ्य संकलन की विधि; प्रस्तावित अध्ययन अन्वेषणात्मक होगा। अध्ययन से संबंधित सूचनाओं एवं तथ्यों का संकलन हेतु प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों ही स्रोतों का उपयोग किया जायेगा प्राथमिक आकड़ों के संग्रहण के लिए टेलीफोनिक सर्वेक्षण/ साक्षात्कार व अवलोकन विधि का प्रयोग मुख्यतः किया जाएगा।

साक्षात्कार : पालिग यंग ''साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित विधि मानी जा सकती है जिसके द्वारा एक व्यक्ति एक अपेक्षाकृत अजनबी के आंतरिक जीवन में न्यूनाधिक कल्पनात्मक रुप में प्रवेश करता है।''

प्रश्नावली : प्रश्नावली सामान्यतः डाक से भेजे जाने वाले संरचित प्रश्नों का एक समूह होता है जिनके उत्तर उत्तरदाता द्वारा वैकल्पिक रुप दिये जाते हैं।

टेलीफोनिक सर्वेक्षण/ साक्षात्कार : इस अनुसूची का प्रयोग एक प्रमुख अभिकरण के रुप में अनुसंधानकर्त्ता एवं उत्तरदाता के मध्य सौहार्द्रपूर्ण संबंध स्थापित करने तथा सूचनादाता से दूरसंचार के माध्यम से आमने-सामने की स्थिति में सूचनायें प्राप्त करने के लिये किया जायेगा।

अवलोकन : अवलोकन एक विधि हैं जिसमें दृष्टि आधार सामग्री संग्रह में एक प्रमुख साधन होती है। इसमें कानों और ध्वनि की अपेक्षा नेत्रों का प्रयोग निहित होता है।

निर्दशन : हेनरी मेनहम ''एक निदर्शन समग्र जन का अंश होता है। जिसका अध्ययन समग्र जन का अंश होता है जिसका अध्ययन समग्रजन के विषय में अनुमान निकालने के लिए किया जाता है''

सउद्देश्य निर्दशन : अनुसंधानकर्ता उद्देश्यपूर्वक से उन व्यक्तियों को चुनता है जो उसकी दृष्टि से निदर्शन सदस्यों के लिए सार्थक समझे जाते हैं।

क्रमांक	राज्य स्तर में जहा परपंचायतीराज/ पिछड़ा क्षेत्र अनुदान कोश अन्तर्गत स्थापित हेल्प लाइन	संभाग	जिला स्तर पर निदर्शन	रिसिवं काल संख्या
1	मध्यप्रदेश	बस्तर	बस्तर	29 विषयों से
2	उत्तरप्रदेश		कांकेर	29 विषयों से
3		महाराष्ट्र	दन्तेवाडा	29 विषयों से

छाटा

4	बिहार	सरगुजा	जशपुर	29 विषयों से
5	झारखण्ड		सरगुजा	29 विषयों से
6	आन्धप्रदेश		कोरिया	29 विषयों से
7		बिलासपुर	रायगढ़	29 विषयों से
8			कोरबा	29 विषयों से
9			बिलासपुर	29 विषयों से
10		दुर्ग	कवर्धा	29 विषयों से
11			राजनांदगांव	29 विषयों से
12		रायपुर	धमतरी	29 विषयों से
13			महासमुंद	29 विषयों से

नोट : वर्ष 2013-2015 में पूछे गऐ प्रश्नों की संख्या जो संविधान के 11 अनुसूची में प्रदत्त 29 विषयों से संबंधित है।

हेल्प लाईन सुविधा एवं उपयोगिता

राज्य पंचायत संसाधन केन्द्र, में हेल्प लाईन केन्द्र की स्थापना दिनांक 09.08.2010 को शाम 5.00 बजे माननीय मंत्री पंचायत एवं ग्रामीण विकास, विधि एवं विधायी कार्य (छ.ग.) के कर कमलो से किया गया।

पूछताछ सेवा का उद्देश्य

- पंचायत अधिनियमों के संबंध में जानकारी देना।
- पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग द्वारा संचालित योजनाओं की जानकारी।
- आर्थिक विकास व सामाजिक न्याय से संबंधित समस्याओं पर चर्चा कर समाधान प्राप्त करने में सहायता करना।
- स्वरोजगार एवं रोजगार से संबंधित प्रशिक्षणों की जानकारी देना।
- जनमानस से नीतिगत सुझाव लेना।

राज्य के दूरस्थ व पिछड़े क्षेत्र में रहने वाले, पंचायत संस्थाओं के जनप्रतिनिधि, शासकीय अधिकारी, कर्मचारी, अशासकीय संगठन, स्वयं सहायता समूह के सदस्य, ग्रामीण जन, पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग से संबंधित योजनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकते है। प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करते है। रोजगार से संबंधित समस्याओं पर उनसे चर्चा करके समाधान के रास्ते बताये जाते है। पंचायत राज से संबंधित नियमों की जानकारी एवं प्रश्नों के उत्तर दिए जा रहे है। ग्रामीण जन, पंचायत व्यवस्था से जुड़े प्रतिनिधिगण निति निर्धारण के संबंध में अपने सुझाव एवं सलाह दे रहे हैं।

हेल्प लाईन नबंर 18002331113, कार्य समय प्रातः 10.30 बजे से 05.30 बजे कार्य दिवसों में होगा, निःशुल्क डायलर व्यवस्था निःशुल्क में प्राप्त होगी जिसमें पंचायत सेवा के दो अनुभवी अधिकारी सलाहकार के रुप होंगे।

हेल्प लाइन सेवा केन्द्र के लक्ष्य समूह

• पंचायत राज संस्थाओं के प्रतिनिधि, • शासकीय सेवक, • स्व-सहायता समूह, • अशासकीय संगठन से जुड़े व्यक्ति एवं • जन सामान्य।

कार्यप्रणाली

• विभिन्न स्थानों से प्राप्त होने वाले टेलिफोन कॉल के जवाब दिए जायेंगे, • यदि पूछताछ नम्बर में मौजूद अधिकारी किसी विषय विशेष के प्रश्नों पर तुरन्त जवाब नहीं दे पाते है तो उनके द्वारा सक्षम अधिकारी या विषय विशेषज्ञों के माध्यम से समाधान देने का प्रयास किया जायेगा।

राज्य स्तर पर हेल्प लाइन संचालन ठाकुर प्यारेलाल पंचायत एवं ग्रामीण विकास संस्थान किया जा रहा है।

हेल्प लाइन के व्यवस्था एवं प्रबंधन

हेल्पलाइन पर चर्चा के लिए ड्राफ्ट तैयार करना

पिछड़े क्षेत्रों में पंचायत हेल्पलाइन की स्थापना एवं प्रबंधन ताकि निम्नांकित औचित्य पूरा की जा सके :

- पिछड़े क्षेत्रों के ग्राम पंचायतों को सौंपे गए जिम्मेदारियों के निवर्हन के संबंध में आवश्यक जानकारी नहीं मिल पाती, इस माध्यम से महत्वपूर्ण जानकारियों को बताना।
- ग्राम पंचायत में जानकारी की कमी जिसके कारण विकास के अवसरों का लाभ नहीं ले पा रहे हैं।
- सरकारी अधिकारियों द्वारा जानकारियों को हितग्राही को सही तरीके से नहीं दे पा रहे है। और कभी-कभी उपलब्ध जानकारी का मूल्य ग्राम पंचायत के लिए असहनीय है।
- ग्राम पंचायत में समय पर जानकारी की उपलब्धता के विकल्प को बढ़ाना।
- जानकारी के अभाव में पिछड़ेपन के कारण को खत्म करना।
- विकसित क्षेत्र की तुलना में खाली पदों की संख्या पिछड़े क्षेत्रों में आमतौर पर अधिक है, इसलिए यहाँ भी उपलब्ध जानकारी को प्राप्त करना मुश्किल है।
- पिछड़े क्षेत्रों के ग्राम पंचायत कार्य कर रहे परिवर्तन अभिकर्ताओ (अधिकारियों, गैर-सरकारी संगठन, शोधकर्ताओं, शिक्षाविदों, जनप्रति-निधियों आदि) के प्रभावशीलता को बढ़ाना ताकि बदलते दौर में नई जानकारी इन तक असानी से पहुच सके

वर्ष 2013-14 में जिला अनुसार हेल्प लाइन उपयोग

दुर्ग	38
बालोद	57
बेमेतरा	51
राजनांदगांव	44
कबीरधाम	33
रायपुर	59
धमतरी	27
महासमुद	32
बलौदा बाजार	47
गरियाबंद	22
बस्तर	6
कांकेर	21
कोण्डागांव	2
बीजापुर	3

वर्ष 2013-14 में जिला अनुसार हेल्प लाइन उपयोग

नारायणपुर	1
सुकमा	4
दंतेवाड़ा	1
बिलासपुर	84
मुगेली	36
कोरबा	9
रायगढ़	25
जांजगीर-चांपा	78
सरगुजा	39
कोरिया	8
जशपुर	15
सुरजपुर	24
बलरामपुर	11

वर्ष 2013-14 में जिला अनुसार हेल्प लाइन उपयोग ग्राफ

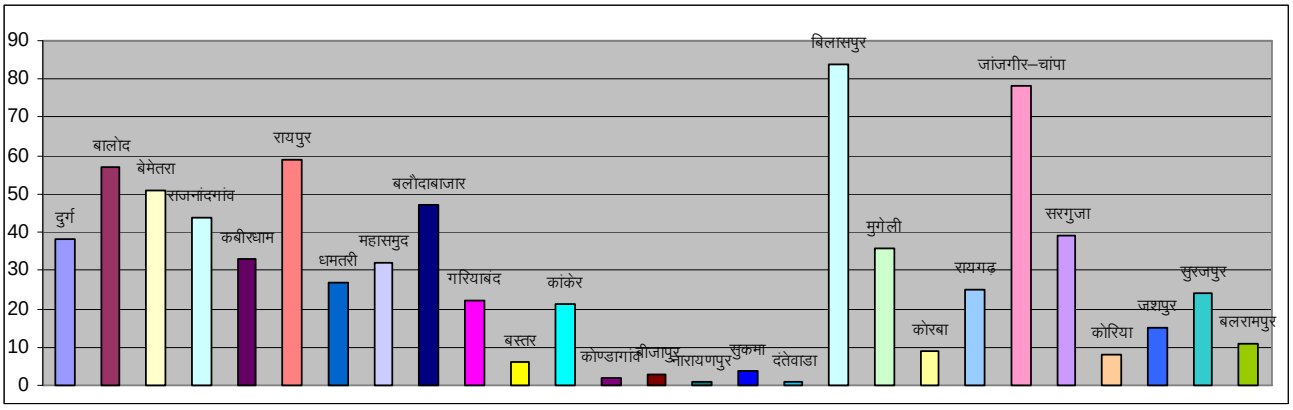

वर्ष 2013-14 हेल्प लाइन के उपयोग से प्राप्त तथ्यों निष्कर्ष निकलता है कि बिलासपुर जिला सबसे ज्यादा उपयोग हेल्प लाइन का किया है द्वितीय स्थान जांजगीर-चांपा जिले का है। और सबसे कम उपयोग नारायणपुर एवं दंतेवाड़ा जिला ने किया है।

दूरभाषा से चर्चा अनुसार प्राप्त हुआ कि इन जिलों में हेल्पलाइन सलाहकार की नियुक्ति नहीं हुई एवं जिसके हेल्पलाइन का प्रचार-प्रसार कम हुआ है।

वर्ष 2014-15 में जिला अनुसार हेल्प लाइन उपयोग

दुर्ग	29
बालोद	36
बेमेतरा	16
राजनांदगांव	35
कबीरधाम	29
रायपुर	56
धमतरी	19
महासमुद	18
बलौदाबाजार	39
गरियाबंद	21
बस्तर	6
कांकेर	11
कोण्डागांव	6
बीजापुर	0

वर्ष 2014-15 में जिला अनुसार हेल्प लाइन उपयोग

नारायणपुर	3
सुकमा	1
दंतेवाड़ा	0
बिलासपुर	65
मुंगेली	16
कोरबा	8
रायगढ़	22
जांजगीर-चांपा	51
सरगुजा	8
कोरिया	11

जशपुर	10
सुरजपुर	9
बलरामपुर	2

वर्ष 2014-15 में जिला अनुसार हेल्प लाइन उपयोग का ग्राफ

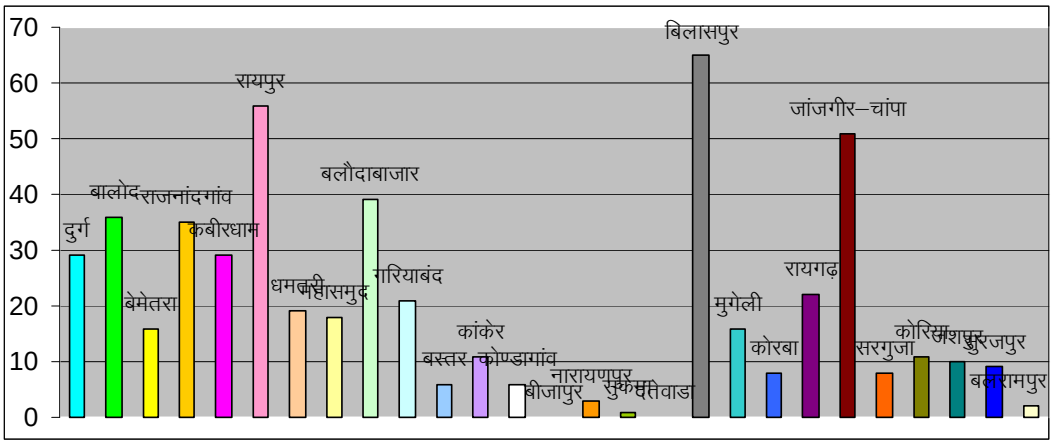

वर्ष 2014-15 हेल्प लाइन से प्राप्त तथ्यों निष्कर्ष निकलता है कि बिलासपुर जिला सबसे ज्यादा उपयोग हेल्प लाइन का किया है द्वितीय स्थान रायपुर जिले का है। और सबसे कम उपयोग सकुमा एवं बलरामपुर जिला ने किया तथा दंतेवाड़ा एवं बीजापुर जिले ने उपयोग ही नहीं किया।

दूरभाषा से चर्चा अनुसार प्राप्त हुआ कि इन जिलों में हेल्पलाइन सलाहकार की नियुक्ति नहीं हुई एवं नये जिले होने के कारण हेल्पलाइन का प्रचार-प्रसार कम हुआ है।

संभाग अनुसार हेल्प लाइन सुविधा उपयोग वर्ष 2013-14

दुर्ग संभाग	223
रायपुर संभाग	187
बिलासपुर संभाग	232
बस्तर संभाग	38
सरगुजा	97

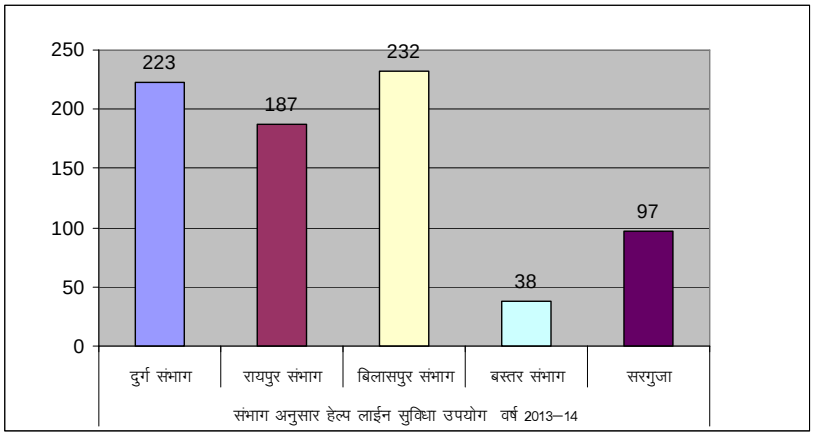

उपरोक्त सारणी एवं ग्राम से यह जानकारी प्राप्त होती है कि वर्ष 2013-14 में हेल्पलाइन का सर्वाधिक उपयोग बिलासपुर संभाग ने किया उसके बाद दुर्ग, रायपुर, एवं सरगुजा संभाग ने किया सबसे कम उपयोग बस्तर संभाग ने किया है।

संभाग अनुसार हेल्प लाइन सुविधा उपयोग वर्ष 2014-15

दुर्ग संभाग	145
रायपुर संभाग	153
बिलासपुर संभाग	162
बस्तर संभाग	27
सरगुजा	40

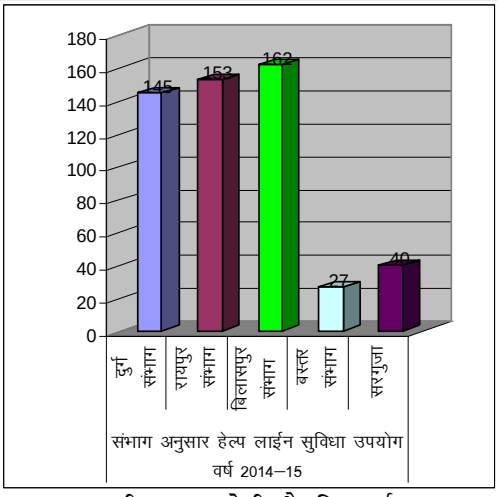

उपरोक्त सारणी एवं ग्राम से यह जानकारी प्राप्त होती है कि वर्ष 2014-15 में हेल्पलाइन का सर्वाधिक उपयोग बिलासपुर संभाग ने किया उसके बाद, रायपुर, दुर्ग, एवं सरगुजा संभाग ने किया सबसे कम उपयोग बस्तर संभाग ने किया है।

क्षेत्रक अनुसार प्रश्नों की संख्या वर्ष 2013-14

पंचायत संबंधी	213
स्वहितधारी योजना	212
योजना प्रक्रिया एवं विधी	218
शिक्षा स्वास्थ्य एवं पोषण	29
अधोसरंचना एवं सेटकाम	51
प्रशिक्षण	69
बीना प्रश्न किए	4
कुल	796

सारणी से प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2013-14 में योजना प्रक्रिया एवं विधी संबंधी प्रश्न हेल्प लाइन के उपयोग कर हितग्राहियो द्वारा ज्यादा पूछे गऐ है उसके बाद पंचायत एवं स्वहितधारी योजना से संबंधित प्रश्न पूछे गए है।

क्षेत्रक अनुसार प्रश्नो की संख्या वर्ष 2014-15

पंचायत संबंधी	177
स्वहितधारी योजना	143
योजना प्रक्रिया एवं विधी	141
शिक्षा स्वास्थ्य एवं पोषण	10
अधोसरंचना एवं सेटकाम	22
प्रशिक्षण	41
बीना प्रश्न किए	8

सारणी एवं ग्राफ से प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2014-15 में पंचायत संबंधी प्रश्न हेल्प लाइन के उपयोग कर हितग्राहियो द्वारा ज्यादा पूछे गये है उसके बाद स्वहितधारी योजना एवं योजना प्रक्रिया एवं विधी, प्रशिक्षण, अधोसरंचना एवं सेटकांम, शिक्षा स्वास्थ्य एवं पोषण से संबंधित प्रश्न पूछे गए है।

वर्ष 2013-14 अन्य राज्यों से प्राप्त प्रश्न-

वर्ष 2013-14 अन्य राज्यों से प्राप्त प्रश्न

मध्यप्रदेश	उत्तरप्रदेश	महाराष्ट्र	बिहार	झारखण्ड	आन्ध्रप्रदेश	गुजरात	कुल
6	9	1	3	0	0	0	19

सारणी से प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अन्य राज्यो द्वारा हेल्प लाइन का उपयोग किया जिसमें वर्ष 2013-14 में उत्तर प्रदेश सर्वाधिक प्रश्न पूछे उसके बाद मध्य प्रदेश, बिहार एवं महाराष्ट्र ने किए।

वर्ष 2014.-15 अन्य राज्यों से प्राप्त प्रश्न

अन्य राज्यों से प्राप्त प्रश्न वर्ष 2014-15

मध्य प्रदेश	उत्तर प्रदेश	महाराष्ट्र	बिहार	झारखण्ड	आन्ध्रप्रदेश	गुजरात	कुल
4	1	3	1	2	3	1	15

सारणी एवं ग्राफ से प्राप्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि वर्ष 2014-15 में कुल 15 प्रश्न अन्य राज्यो द्वारा हेल्प लाइन का उपयोग कर पूछे। जिसमें मध्य प्रदेश सर्वाधिक प्रश्न पूछे उसके बाद महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश, झारखण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार, गुजरात ने किए एवं हेल्पलाइन की उपयोगिता को अन्य राज्यो में बढ़ावा मिला।

सुझाव एवं उपसंहार

हेल्पलाइन उपयोगिता के संबंध में

वर्ष 2013-14 की अपेक्षा 2014-15 में हेल्प लाइन का उपयोग कम हुआ तथा कुछ जिलों जैसे दंतेवाड़ा एवं बीजापुर इस सुविधा का उपयोग किया ही नहीं।

हेल्प लाइन सुविधा का उपयोग बिलासपुर जिला ने अध्ययन वर्ष में सवार्धिक किया है।

वर्ष 2013-14 में हेल्पलाइन सुविधा का उपयोग संभाग अनुसार देखे तो बिलासपुर संभाग प्रथम, द्वितीय दुर्ग संभाग, तृतीय रायपुर, चतुर्थ सरगुजा एवं पंचम बस्तर संभाग का रहा है।

वर्ष 2014-15 में हेल्पलाइन सुविधा का उपयोग संभाग अनुसार देखे तो बिलासपुर संभाग प्रथम, द्वितीय रायपुर, संभाग, तृतीय दुर्ग, चतुर्थ सरगुजा एवं पंचम बस्तर संभाग का रहा है।

वर्ष 2013-14 में सर्वाधिक पूछे गए प्रश्नों का संबंध क्रमानुसार योजना प्रक्रिया एवं विधी, पंचायत संबंधी, स्वहितधारी योजना, प्रशिक्षण, अधोसरंचना एवं सेटकाम, शिक्षा स्वास्थ्य एवं पोषण से था।

वर्ष 2014-15 में सर्वाधिक पूछे गए प्रश्नों का संबंध क्रमानुसार पंचायत संबंधी, स्वहितधारी योजना, योजना प्रक्रिया एवं विधी, प्रशिक्षण, अधोसरंचना एवं सेटकाम, शिक्षा स्वास्थ्य एवं पोषण से था।

वर्ष 2013-14 में हेल्पलाइन के उपयोग के दौरान 19 प्रश्न पूछे गए जिसमें क्रमश सबसे अधिक उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार एवं महाराष्ट्र था।

वर्ष 2014-15 में हेल्पलाइन के उपयोग के दौरान 15 प्रश्न पूछे गए जिसमें क्रमश सबसे अधिक मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश, झारखण्ड, बिहार एवं गुजरात का रहा। इस वर्ष आन्ध्र प्रदेश, झारखण्ड, गुजरात राज्य के लोगों ने हेल्पलाइन का उपयोग किया।

हेल्पलाइन के व्यवस्था एवं प्रबंधंन के संबंध में

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि हेल्पलाइन व्यवस्था ठीक होने के कारण जिलों के अलावा अन्य राज्यों की सहभागिता भी बढ़ी है। लेकिन बस्तर संभाग एवं सरगुजा संभाग में हेल्पलाइन सलाहाकार की नियुक्ति न होने के कारण प्रचार-प्रसार का प्रभाव पड़ा जिसका परिणाम तथ्यों में स्पष्ट है।

राज्य स्तर पर हेल्पलाइन सुविधा होने एवं उचित प्रबंधन हितग्राहियों को समय पर प्रश्नों के उत्तर एवं समस्या के विकल्प प्रदान करने के कारण ही प्रश्नों की संख्या बढ़ी परन्तु संचार सेवा के अवरोध के कारण कभी-कभी कुछ हितग्राही उपयोग से वंचित रहे है।

प्रभावी कारक एवं नीतिगत समाधान

संसाधन की उपलब्धता; हेल्पलाइन के लिए सबसे प्रभावी कारक है संसाधन जैसे व्यक्तिक एवं भौतिक संसाधन की उपलब्धता हो। संसाधनों का समयानुसार उपलब्धता, सुधार एवं देख-रेख हो, बस्तर संभाग में हेल्पलाइन के संबंध में सबसे प्रभावी कारक है। जैसे- हेल्पलाइन सलाहकार की नियुक्ति, हेल्पलाइन के संबंध में प्रचार प्रसार।

प्रचार प्रसार एवं समयावधि; हेल्पलाइन का प्रचार-प्रसार, हेल्पलाइन का समय पर खुलना एवं बंद होना हितग्राहियों के समस्या या पूछे प्रश्नों के लिए विकल्प या उत्तर प्रदान करना। प्रचार प्रसार के लिए विभिन्न माध्यमों का प्रयोग होना चाहिए।

संचार माध्यम; संचार माध्यम की उपलब्धता एवं कनेक्टविटी की समस्या भी महत्वपूर्ण कारक है। जो हेल्पलाइन के उपयोग प्रभाव डालती है। अतः संचार माध्यम एवं कनेक्टविटी को सही होना चाहिए।

महिला जनप्रतिनिधी एवं अधिकारीयों को प्रोत्साहन; हेल्पलाइन के उपयोग के लिए महिला जनप्रतिनिधी एवं क्षेत्रीय अधिकारी/कर्मचारी को प्रोत्साहीत करना चाहिए।

संदर्भित ग्रंथ

पत्र/ ग्रंथ :

योजना अन्तर्गत इस सबंधं में जारी किये गये मार्गनिर्देशिका एवं सर्कुलर
पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग से संबंधित ग्रंथ
सामाजिक अनुसंधान -राम आहूजा, रावत पब्लिकेशन्स
लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं जनजातीय नेतृत्व -आशीष भट्ट, रावत पब्लिकेशन्स

पत्रिकायें :

पंचायत एवं ग्रामीण विकास विभाग के हेल्प लाइन सुविधा केन्द्र

वेब साईट :

http://www.cg.gov.in
http://www.panchayat.gov.in

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,61-62
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 18 सितम्बर 2016

शिक्षा का अर्थ : विवेकानन्द

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शिक्षा का अर्थ : विवेकानन्द* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

स्वामी विवेकानन्द का मानना है कि विद्यार्थी की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा में परिवर्तन करते रहना चाहिए, जिससे विद्यार्थी अपने अतीत के जीवनों में अपनी प्रवृत्तियों को गढ़ सके। इसके साथ ही साथ स्वामी जी का यह भी मानना है कि सभी प्रकार की शिक्षा और इच्छा शक्ति का प्रवाह और प्रकाश संयमित होकर फलदायी बन सके, उसी का नाम है 'शिक्षा'। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि, ''आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियों और फौलाद के स्नायु, दुर्दमनीय प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जो सृष्टि के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे उसके लिए समुद्र - तल में ही क्यों न जाना पड़े - साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े। हम 'मनुष्य' बनाने वाला धर्म ही चाहते हैं। हम मनुष्य' बनाने वाले सिद्धान्त ही चाहते है। हम सर्वत्र सभी क्षेत्रों में 'मनुष्य' बनाने वाली शिक्षा ही चाहते हैं।''

स्वामी विवेकानन्द जी का मानना है कि शिक्षा की व्याख्या शक्ति के विकास के रूप में की जा सकती है। बालक-बालिकाओं के मस्तिष्क में जानकारी को ठूसने के प्रयास को शिक्षा नहीं कहना चाहिए। ज्ञान क्या है इस विषय पर स्वामी जी का मानना है कि ज्ञान मनुष्य में उसके अन्दर से उत्पन्न होता है, क्योंकि मनुष्य की अपनी आत्मा ही ज्ञान का सनातन श्रोत है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि, ''मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्ति करना ही शिक्षा है।'' ज्ञान मनुष्य से स्वभाव सिद्धान्त है। बाहर से कोई ज्ञान नहीं आता, सब कुछ भीतर ही है। हम जो कहते है कि मनुष्य 'जानता' है, वास्तव में, मानसशास्त्र संगत भाषा में, हमें यह कहना चाहिए कि वह 'आविष्कार' करता है, 'अनावृत्त' अथवा 'प्रकट' करता है। मनुष्य जो कुछ सीखता है, वह वास्वत में 'आविष्कार' करता है, 'अनावृत्त अथवा 'प्रकट' करता है। मनुष्य जो कुछ सीखता है, वह वास्तव में आविष्कार करना ही है। आविष्कार का अर्थ है -मनुष्य का अपनी अनन्त ज्ञान स्वरूप आत्मा के ऊपर से आवरण हटा लेना।

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इस प्रकार समस्त ज्ञान लौकिक व आध्यात्मिक मनुष्य के मान में है। यह आवरण द्वारा ढका रहता है। जब यह आवरण धीरे-धीरे हटता जाता है तो व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता जाता है। जैसे-जैसे सीखने की प्रक्रिया बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि होती जाती है। जिस व्यक्ति के ऊपर से यह आवरण उठता जाता है, वह व्यक्ति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक ज्ञानी होता जाता है और जिस व्यक्ति के ऊपर से यह आवरण पूर्णतया हट जाता है, वह व्यक्ति सर्वज्ञ व सर्वदर्शी हो जाता है। यहॉ ज्ञान को एक रूपक द्वारा समझाया गया है। जैसे- चकमक पत्थर के टुकड़े में अग्नि निहित रहती है और किसी उद्दीपक के घर्षण द्वारा अग्नि को प्रज्ज्वलित किया जाता है। उसी प्रकार सभी ज्ञान और शक्तियॉ मनुष्य के अन्दर सन्निहित रहती है और वाह्य वातावरण उसे ज्ञानाग्नि को प्रकाशित कर देती है। शिक्षा की यह व्याख्या वर्तमान अंग्रेजी के एजूकेशन शब्द की उस व्याख्या से मिलती जुलती है, जिसमें 'एजुकेशन' शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के 'एजुकेटम से मानी जाती है। इसके अनुसार 'एजुकेटम' 'ए' और 'डूको' दो शब्दों के योग से बना है। 'ए' का अर्थ अन्दर से है और 'डूको' का अर्थ अन्दर से बाहर लाना है।

अतः हम कह सकते हैं कि स्वामी विवेकानन्द संसार की तमाम सूचनाओं के संग्रह को शिक्षा नहीं मानते। उन्होंने अपने समय की प्रतिपादित शिक्षा का विरोध किया है उसका भी कारण वही था कि उस समय की शिक्षा मनुष्य के आन्तरिक विकास की अपेक्षा वाह्य विकास पर अत्यधिक बल देती थी। स्वामी विवेकानन्द का कथन है कि, ''शिक्षा विविध जानकारियों का ढेर नहीं है, जो तुम्हारे मस्तिष्क में ठूँस दिया गया है और आत्मसात् हुए बिना वहॉ आजन्म पड़ा रहकर गड़बड़ मचाया करता है।''

आधुनिक दृष्टिकोण में शिक्षा को विकास की एक प्रक्रिया माना जाता है, जैसा कि प्रसिद्ध शिक्षाविद् फ्रोबेल महोदय ने बालक के लिए शिक्षा के महत्व की उपमा बीज और वृक्ष से दी है। जैसे बीज अनुकूल वातावरण मिलने पर स्वतः ही विकास कर एक वृक्ष का रूप धारण कर लेता है ठीक उसी प्रकार बालक भी स्वतः विकास कर एक पूर्ण मनुष्य बन जाता है। फ्रोबेल महोदय के समान ही स्वामी विवेकानन्द ने भी बालक के विकास की उपमा पौधे से दी है- ''तुम किसी बालक को शिक्षा देने में उसी प्रकार असमर्थ हो, जैसे कि किसी पौधे को बढ़ाने में। पौधा अपनी प्रकृति का विकास अपने आप ही कर लेता है। बालक भी अपने आपको शिक्षित करता है। पर हॉ, तुम उसे अपने ही ढंग से आगे बढ़ने में सहायता दे सकते हो। तुम जो कुछ कर सकते हो, वह निषेध -आत्मक ही होगा, विधि -आत्मक नहीं। तुम केवल बाधाओं को हटा सकते हो, और बस, ज्ञान अपने स्वभाविक रूप से प्रकट हो जाएगा।''

इससे यह स्पष्ट है कि हमें बालकों के लिए केवल इतना ही करना है कि वे अपने हॉथ, पैर, कान और ऑखों के उचित उपयोग के लिए अपनी बुद्धि का प्रयोग करना सीख लें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

विवेकानन्द चरित्र, रामकृष्ण मठ, नागपुर - मजूमदार, श्री सत्येन्द्र नाथ
विवेकानन्द साहित्य -अद्वैत आश्रम मायावती अल्मोड़ा जन्मशती संस्कार
विवेकानन्द स्वामी -कर्मयोग, रामकृष्ण मठ, धन्तोली नागपुर
विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर आगरा-पाण्डेय, राम सकल
अन्वेषिका -रेडियन जर्नल आफ टीचर एजूकेशन

पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,63-65
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 अगस्त 2016

महात्मा गांधी के आर्थिक विचार

प्रो. अंजली श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महात्मा गांधी के आर्थिक विचार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंजली श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

महात्मा गांधी ने कहा था 'कोई भी योजना जो देश के कच्चे माल का परिमाण बढ़ाने का प्रयत्न करती है, पर मानव शक्ति का उपयोग भुला देती है। वह कभी सुखी और समृद्ध समाज का निर्माण नहीं कर सकती। पश्चिम देशों में यही हुआ है कि उन्होंने संसार की मानव शक्ति का ख्याल तो छोड़ दिया और समस्त साधन थोड़े से लोगों को सौंप दिये। इससे कुछ व्यक्ति तो शक्ति और धन की दृष्टि से बहुत बड़े बन गये और शेष असंख्य लोग कष्टों में पड़े रह गये। ऐसा औद्योगीकरण गरीबों के लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकता और शेष संसार के लिए भी वह एक खतरा ही सिद्ध होता है।'

महात्मा गांधी के आर्थिक विचार अहिंसात्मक मानवीय समाज की अवधारणा से ओत-प्रोत हैं। उनके आर्थिक विचार आध्यात्मिक विकास को प्रोत्साहित करने वाले हैं। 'गांधीवादी अर्थशास्त्र' नामक शब्द का सबसे पहले प्रयोग उनके प्रसिद्ध अनुयायी जे. सी. कुमारप्पा ने किया था। गांधी जी ने कहा था कि हमारी धरती के पास प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता के लिए बहुत कुछ है पर किसी के लालच के लिए कुछ नहीं। गांधीजी का मंत्र था कि जब भी कोई काम हाथ में लो, यह ध्यान रखो कि इससे सबसे कमजोर और गरीब व्यक्ति को क्या लाभ होगा। मानव मात्र की खुशी ही गांधीजी की मूल कसौटी थी। उनका विचार था कि प्रगति को मानवीय प्रसन्नता के संदर्भ में देखा जाना चाहिए। वे समृद्ध समाज के ऐसे आधुनिक दृष्टिकोण में विश्वास नही करते थे जिसमें भौतिक विकास को ही प्रगति की मूल कसौटी माना जाता है। वे बहुजन सुखाय-बहुजन हिताय और सर्वोदय के सिद्धान्तों में विश्वास करते थे।

गांधीजी न तो भौतिक समृद्धि के विरुद्ध थे और न ही उन्होंने सभी परिस्थितियों में मशीन के उपयोग को नकारा। गांधीजी का कहना था कि बड़े उद्योगों की स्थापना के लिए बहुत अधिक कच्चे माल की आवश्यकता होती है और बहुत बड़ी

* सहायक प्राध्यापिका, अर्थशास्त्र विभाग, शासकीय महाराजा महाविद्यालय [सम्बद्ध सागर विश्वविद्यालय] छतरपुर (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

मात्रा में निर्मित वस्तुओं के विक्रय हेतु बड़े बाजारों की आवश्यकता होती है तथा कच्चे माल और बड़े बाजारों की रोजाना की यह प्रवृति साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद को जन्म देती है, जो नैतिकता के विरुद्ध है। उनके विचार में नैतिकता की बुनियाद औद्योगीकरण के चलते ध्वस्त हो जायेगी, अतः औद्योगीकरण नहीं होना चाहिए।

गांधी को भय था कि यह उद्योगवाद मानवजाति के लिए अभिशाप बन जाने वाला है। इससे संसाधनों का संग्रह मुट्ठी-भर लोगों में हो जायेगा और वह गरीबों का शोषण करेंगे जो कि विश्व शांति के लिए खतरा होगा।

गांधीजी बड़ी मशीनों को मानव जाति के लिए अभिशाप मानते थे, उनका विचार था कि समाज में घृणा, द्वेश और स्वार्थ में जो वृद्धि हुई है, वह सब मशीनी सभ्यता का ही परिणाम है। इसका यह अर्थ नहीं था कि गाांधीजी सभी प्रकार की मशीनों के प्रयोग के पूर्णतया विरुद्ध थे, मशीनों के प्रयोग के संबंध में उनका साधारण सिद्धान्त यह था कि जो मशीने सर्वसाधारण के हित में काम आती हैं, उनका प्रयोग उचित है, उदाहरण के लिए वे रेल, जहाज, सिलाई मशीन, चरखा आदि के समर्थक थे, किन्तु उनका विचार था कि विनाशकारी और मानव शोषण को प्रोत्साहित करने वाली मशीनों का प्रयोग सर्वथा त्यागने योग्य समझा जाना चाहिए। वे नहीं चाहते थे कि मनुष्य मशीनों का दास बन कर रह जाये अथवा वह अपनी पहचान ही खो दे। वे चाहते थे कि मशीने मनुष्य के लिए हों, ना कि मनुष्य मशीन के लिए हो। उनका कहना था कि मशीनों से सभी के समय और श्रम की बचत होनी चाहिए। गांधीजी के अनुसार, 'मुझे आपत्ति स्वयं मशीनों पर नहीं, बल्कि उसके लिए पागल बनने पर है। यह पागलपन श्रम बचाने वाले यंत्रों के लिए है। लोग श्रम बचाने में लगे रहते हैं, यहाँ तक कि हजारों लोगों को बेकार करके भूख से मरने के लिए छोड़ दिया जाता है। मैं भी समय और श्रम बचाना चाहता हूं मगर मानव सभ्यता के अंश के लिए नहीं, बल्कि सबके लिए।'

गांधीजी ने कुटीर उद्योग धन्धों पर आधारित एक ऐसी विकेन्द्रित अर्थव्यवस्था का प्रतिपादन किया, जिसके अर्न्तगत प्रत्येक गांव एक आर्थिक इकाई के रुप में कार्य करेगा। वे खादी को भारत की राजनीतिक एवं आर्थिक समस्याओं का पूर्ण हल मानते थे। उनके द्वारा आर्थिक क्षेत्र में स्वदेशी के विचार का प्रतिपादन किया गया। गांधीजी का मानना था कि प्रत्येक देश की अर्थ-व्यवस्था वहां की जलवायु, भूमि तथा वहां के निवासियों के स्वभाव को ध्यान में रखते हुए निश्चित की जानी चाहिए, इस आधार पर भारत के लिए कुटीर उद्योग-धन्धों की व्यवस्था ही सर्वोत्तम है। गांधीजी का यह मानना था कि जब छोटे-छोटे उद्योग जिसमें लकड़ी के कार्य, कपड़े की बुनाई तथा छोटे-छोटे औजारों के कार्य होंगे तो इससे व्यक्ति स्वावलंबी होगा। स्व-उद्यम के द्वारा व्यक्ति अपनी आर्थिक गुलामी से मुक्ति पा लेगा।

नई बुनियादी तालीम इन छोटे, लघु, कुटीर उद्योगों तथा स्वावलम्बन की पाठशाला होगी। इससे व्यक्ति किसी भी तरह उन्नति की समझ विकसित करेगा। ग्रामीण विपणन की व्यवस्था की परिकल्पना जो गांधीजी ने दी, उसके भी महत्व थे। उनका मानना था कि छोटे-छोटे हाट जब दो-चार गांव मिलकर विकसित कर लेंगे तो निश्चित ही जरुरत की चीजें गांव के लोगों को मुहैया हो जाएंगी तथा उत्पादन का मूल्य भी लोगों को समझ में आएगा। उन्नत कृषि कर्म के पीछे गांधी जी का विचार यह था कि इससे मनुष्य एक तो श्रम करेगा तथा दूसरे श्रम से उत्पादित वस्तुएं देश की तरक्की में अपना महत्वपूर्ण योगदान देंगी।

महात्मा गांधी ने कहा था कि, भारत की आत्मा गांवों में बसती है। उनका कहना था- 'ग्राम-स्वराज्य की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरुरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं करेगा और फिर बहुतेरी दूसरी जरुरतों के लिए, जिसमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा, वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गांव का पहला काम यह होगा कि वह अपनी जरुरत के अनाज और कपड़े के लिए कपास खुद पैदा कर ले। उसके पास इतनी सुरक्षित जमीन होनी चाहिए, जिसमें जानवर चर सकें और गांव के बड़े और बच्चों के लिए मन बहलाव के साधन और खेलकूद के मैदान वगैरा का बन्दोबस्त हो सके। इसके बाद भी जमीन बची तो उसमें वह ऐसी उपयोगी फसल बोएगा, जिन्हे बेचकर वह आर्थिक लाभ उठा सके। 'गांधीजी आदर्श गांव' समग्र सम्पन्नता' में देखते थे। गांधीजी की ग्रामीण अर्थव्यवस्था के सुदृढ़ीकरण की अवधारणा जात-पात और अस्पृश्यता जैसे भेदभाव के खात्मे के बाद नई समानताओं को उद्‌भूत करती है क्योंकि जब प्रत्येक के हाथ में काम होगा, सभी अपने कर्म करेंगे तो सभी की उन्नति होगी वरना यदि अछूत के नाम पर एक बड़ी आबादी अपनी अर्थिक सम्पन्नता से वंचित रह जाएगी तो कदाचित हम समृद्ध हो सकेंगे।

सर्वोदय समाज गांधीजी की कल्पनाओं का समाज था, जिसके केन्द्र में भारतीय ग्राम व्यवस्था थी। सर्वोदय का अर्थ है- सबकी उन्नति, सबका विकास, सबका उत्कर्ष। विनोबा जी ने कहा- 'सर्वोदय का अर्थ है सर्व सेवा के माध्यम से समस्त प्राणियों की उन्नति।' सर्वोदय के व्यवहारिक स्वरुप को विनोबा जी के भूदान आन्दोलन में देखा जा सकता है।' प्रथम व्यक्ति को जितना, अंतिम व्यक्ति को भी उतना ही।' इसमें समानता और अद्वैत का वह तत्व समाया है जिस पर सर्वोदय का विशाल प्रासाद खड़ा है। सर्वोदय की दृष्टि से जो समाज रचना होगी उसका आरम्भ अपने जीवन से करना होगा।

गांधीजी कहते थे- 'समाजवाद का प्रारम्भ पहले समाजवादी से होता है। अगर एक भी ऐसा समाजवादी है, तो उस पर शून्य बढ़ाये जा सकते हैं। हर शून्य से उसकी कीमत दस गुना बढ़ जाएगी लेकिन यदि पहला अंक शून्य हो, तो उसके आगे कितने ही शून्य बढ़ाये जायें, उसकी कीमत फिर भी शून्य ही रहेगी। 'रस्किन की पुस्तक' अन्टू दिस लास्ट'- इस अन्त वाले को भी -यह तथ्य सर्वोदय में पूर्णतः गृहीत है। सर्वोदय दर्शन का प्रमुख तत्व है -पारिश्रमिक की समानता हो। सर्वोदय संघर्ष को नहीं, सहकार को मानता है, इसलिए प्रतियोगिता का अभाव हो। सर्वोदय का सारा भवन अहिंसा की नींव पर खड़ा है।

आर्थिक अन्याय और असमानता को दूर करने के लिए गांधीजी का विचार था कि जीवन में अपरिग्रह के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिए। उनका मत था कि, प्रकृति स्वयं इतना उत्पादन करती है जितना सृष्टि के लिए आवश्यक है, इसलिए वितरण का प्राकृतिक नियम यह है कि प्रत्येक केवल अपनी आवश्यकता भर के लिए प्राप्त करे और अनावश्यक संग्रह न करे। महात्मा गाांधी मानवीय इच्छाओं की अत्याधिक वृद्धि से भी चिन्तित थे और सादगी तथा संतोषपूर्ण जीवन को ही आदर्श समझते थे। गांधीजी की यह धारणा साम्यवादी आदर्श से मिलती-जुलती है कि व्यक्ति को अपनी क्षमता के अनुसार काम करना चाहिए और आवश्यकतानुसार ही उपयोग करना चाहिए।

उन्होंने स्वदेशी की व्याख्या करते हुए कहा कि 'स्वदेशी का आशय है कि हम नजदीक रहने वाले की पहले सेवा करें। स्वदेशी के सिद्धान्त का अनुयायी अपने समीप के क्षेत्र की देखभाल करता है और पड़ोसियों की सहायता करने का प्रयत्न करता रहता है, और इसे अपना प्रथम कर्तव्य मानता है। वह दूर के दृश्यों से आकर्षित होकर संसार के दूसरे कोने तक सेवा करने को भागा हुआ नहीं जाता। आर्थिक क्षेत्र में इसके अनुसार हमें उस कारीगर से काम कराना चाहिए जो हमारे नजदीक रहता है। अगर वह होशियार न हो तो उसे होशियारी प्राप्त करने में हमको मदद करनी चाहिए। यह करना कभी उचित न होगा कि दूर से किसी चतुर कारीगर को या सस्ती दर से काम करने वाले को बुला लें और स्थानीय मजदूर को भूखों मरने के लिए छोड़ दें।

गांधी जी ने अपने इस सामाजिक आदर्श को 'राम राज्य' का नाम दिया था । इस प्रकार का राज्य केवल समस्त भारतीय जनता के लिए ही कल्याणकारी न होगा वरन उसमें समस्त संसार के हित का भी समावेश हो जायेगा ।

संदर्भ सूची

हमारी संस्कृति : इतिहास के कीर्ति स्तम्भ -पं. श्रीराम शर्मा आचार्य वाङ्मय
सर्वोदय, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद
हरिजन, 2 अगस्त 1942
विकीपीडिया : एक मुक्त ज्ञानकोष
इंडियन स्टडी स्पाट.इन
कुरुक्षेत्र, अक्टूबर 2009

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,66-69
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 सितम्बर 2016

भारत में आयकर

मनोज कुमार साहु*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में आयकर* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार साहु* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

आयकर एक प्रत्यक्ष कर (Direct Tax) है। आयकर भारत में 1860 में प्रथम बार लगाया गया था। प्रारंभ में भारत के कर राजस्व संग्रह में इसका भाग बड़ा नहीं था। परंतु पिछले कुछ वर्षों में कुल राजस्व संग्रह में आयकर की भागीदारी बड़ी हो गई है।

आयकर का इतिहास

भारत में आयकर अंग्रेजों द्वारा लागू किया गया। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 में अंग्रेजों के द्वारा आर्थिक व्ययों की पूर्ति आयकर के द्वारा करने के उद्देश्य से 1860 में इसे बजट में प्रथम कर विलसन द्वारा प्रस्तुत किया गया। इस प्रकार आयकर अधिनियम 1860 को लागू किया गया। 1886 के आयकर अधिनियम को पारित कर आयकर को स्थायी रूप प्रदान किया गया। आयकर अधिनियम 1922 में प्रथम बार यह नियम बनाया गया कि आयकर गत वर्ष की आय पर चालू वर्ष में लगाया जायेगा। आयकर अधिनियम 1939 (संशोधन) में महत्वपूर्ण संशोधन कर करारोपण की पद्धति को बदल कर खण्ड प्रणाली (Slab System) लागू की गई।

अनेक संशोधनों के कारण आयकर अधिनियम 1922 अत्यधिक जटिल हो गया था। तब नया आयकर अधिनियम 1961 को अधिनियम को सरल करने के लिए पारित किया गया। नया आयकर अधिनियम 1961, 1 अप्रैल 1962 से सम्पूर्ण भारत में (जम्मू एवं कश्मीर सहित) लागू है। इस अधिनियम में प्रत्येक वर्ष वित विधेयक के द्वारा परिवर्तन होते रहे हैं। भारत सरकार के द्वारा अधिनियम में सुधार करने के लिए चौकसे समिति व चेलैया समिति का गठन कर उनकी सिफारिशों को भी मान्य किया गया है।

* सहायक प्राध्यापक [वाणिज्य], शासकीय महात्मा गाँधी महाविद्यालय [खरसिया] रायगढ़ (छ.ग.) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

भारत में आयकर का आधार

एक करदाता की कमाई गई आय पर उसे आयकर देना पड़ता है। परंतु कमाने का स्थान भारत या विदेश भी हो सकता है। अतएव अर्जन की गई राशि को कर योग्य होने के लिए करदाता की निवास की स्थिति पर ध्यान देना पड़ता है।

करदाता को निवास स्थान के आधार पर 3 श्रेणियों में विभाजित किया गया है - (1) साधारण निवासी, (2) असाधारण निवासी, (3) अनिवासी।

विभिन्न करदाता व्यक्ति, फर्म, संयुक्त हिन्दु परिवार कम्पनी आदि के निवास स्थान निर्धारण करने के लिए अलग अलग नियम है।

व्यक्ति; 2 आधारभूत शर्तों (1) गत वर्ष में कम से कम 182 दिन भारत में रहा हो। (2) गत वर्ष से पूर्व के 4 वर्षों में कम से कम 365 दिन भारत में रहा हो। इनमें से किसी एक शर्त को पूरा करने के बाद उसे 2 अतिरिक्त शर्तें पूरी करने पर साधारण निवासी माना जावेगा। अतिरिक्त शर्तों में प्रथम उसे गत वर्ष से पूर्व के 10 वर्षों में कम से कम 2 वर्ष भारत में निवासी के रूप में रहने तथा गत वर्ष से पूर्व के 7 वर्षों में 730 दिन कम से कम रहना अनिवार्य है। दोनों अतिरिक्त शर्तों के पूरी न होने पर व्यक्ति असाधारण निवासी तथा आधारभूत शर्तों में से किसी एक के न पूरा होने पर अनिवासी माना जाता है।

फर्म व संयुक्त हिन्दू परिवार; यदि इसका प्रबंध व नियंत्रण भारत में आंशिक रूप से होता है तो वह साधरण निवासी तथा सम्पूर्ण नियंत्रण व प्रबंध भारत के बाहर हो तो वे अनिवासी कहे जायेंगे।

कम्पनी; भारतीय कम्पनी या नियंत्रण व प्रबंध पूर्ण रूप से भारत में होने पर कम्पनी साधारण निवासी मानी जावेगी। अन्यथा अनिवासी मानी जाती है।

निवास स्थान के आधार पर कर दायित्व; (1) एक साधारण निवासी की गत वर्ष की सम्पूर्ण आय उन्होंने विश्व में कहीं भी कमाई हो भारत में कर योग्य होगी। (2) असाधारण निवासी की भारत में प्राप्त हुई या प्राप्त समझी गई तथा भारत में उपार्जित या उपार्जित समझी गई आयें तथा भारत में नियंत्रित विदेश व्यापार की आय पर कर चुकाना होगा। (3) अनिवासी को केवल भारतीय आयों पर कर चुकाना पड़ता है।

आयकर गणना का आधार

एक करदाता की आय को 5 शीर्षकों में विभिन्न कर कर योग्य आय की गणना की जाती है - 1. वेतन से आय, 2. मकान सम्पति से आय, 3. व्यापार व पेशे से आय, 4. पूंजी लाभ, 5. अन्य साधनों से आय।

उपर्युक्त पाँचों शीर्षकों की आय को वर्गीकरण के बाद प्रत्येक शीर्षकों की आय को वर्गीकरण के बाद प्रत्येक शीर्षकों में सम्बन्धित स्वीकृत कटौतियों को घटाया जाता है। तत्पश्चात् सम्पूर्ण शीर्षकों की राशि को जोड़ने पर सकल कुल आय प्राप्त होती है। सकल कुल आय में से आयकर अधिनियम की धारा 80 सी से 80 यू तक की कटौतियों को घटाया जाता है। बची राशि ही कर योग्य आय होती है। इसी राशि पर कर निर्धारण वर्षों की लागू दरों से कर की गणना की जाती है।

कर निर्धारण वर्ष 2016-17 की लागू दरें; आयकर लगाने का आधार वित अधिनियम के द्वारा निर्धारित होता है। प्रत्येक वर्ष केन्द्रीय बजट में वित्तमंत्री द्वारा कर निर्धारण वर्ष में लागू दरों का बजट प्रस्ताव किया जाता है। आयकर का महत्वपूर्ण नियम कर निर्धारण वर्ष में लागू दरों के आधार पर किसी करदाता की गत वर्ष की आय पर कर लगता है।

कर दरें; भारत में निवासी करदाता (पुरूष व महिला) जिसकी आयु 60 वर्ष से कम हो -

आयु 60 वर्ष से कम हो

प्रथम	2,50,000 रू. पर	शुन्य
अगले	2,50,000 रू. पर	10 प्रतिशत
अगले	5,00,000 रू. पर	20 प्रतिशत

शेष आय पर 30 प्रतिशत

60 वर्ष से अधिक वरिष्ठ नागरिक होने पर उसे 3,00,000 रू. तक की आय पर कर नहीं देना होगा। अगले 2,00,000 रू की आय पर 10 प्रतिशत तथा शेष अन्य दरें यथावत रहेंगी।

80 वर्ष से अधिक वरिष्ठ नागरिकों होने की स्थिति में प्रथम 5,00,000 रू. की आय पर उसे कर नहीं देना होगा। अगले 5,00,000 रू. पर 20 प्रतिशत कर तथा शेष आय पर 30 प्रतिशत कर देना होगा।

करदाता की आय 1 करोड़ से अधिक होने पर उसे आयकर का 12 प्रतिशत सरचार्ज देना होगा। इसके अतिरिक्त शिक्षा व उच्च शिक्षा के लिये सरकार ने आयकर का 3 प्रतिशत उपकर भी लगाया है इसे करदाता वहन करता है।

1. *वेतन शीर्षक से आय गणना :* यदि करदाता वेतनभोगी है तो उसे इस शीर्षक में उसे प्राप्त वेतन, मजदूरी, भत्तों, व अनुलाभ का जोड़ पर कर देना होता है। वेतन शीर्षक में अवकाश ग्रहण पर प्राप्तियाँ तथा पेंशन भी शामिल होती है।
2. *मकान सम्पति से आय :* एक करदाता की एक से अधिक मकान सम्पति रहने पर तथा मकान से किराया आय प्राप्त करने पर आय इस शीर्षक में कर योग्य होती है। मकान का नियमानुसार वार्षिक मूल्य निर्धारण कर उस पर चुकाया गया नगर पालिका कर को घटाने की सुविधा होती है। तत्पश्चात् शेष राशि पर 30 प्रतिशत मानक कटौती दी जाती है। मकान सम्पत्ति की खरीदी, बनवाने या मरम्मत, पुर्ननिर्माण पर लिये गये ऋण पर ब्याज की कटौती स्वीकृत होती है।

एक व्यक्ति करदाता को स्वयं के रहने के लिये एक मकान पर भी मकान क्रय, निर्माण, पुनर्निर्माण के लिए गये ऋण पर ब्याज की छूट 2,00,000 रू. तक की होती है।

धारा 80 EE कर निर्धारण वर्ष 2017-18 के लिए लागू हुई है। इसके अंतर्गत एक करदाता को अतिरिक्त 50000 रू. की कटौती स्वीकृत होगी यदि उसने 1 अप्रैल 2016 से 31 मार्च 2017 में मकान के लिए ऋण लिया हो। मकान का मूल्य 50 लाख से कम हो। मकान का लोन 35 लाख रू. से कम हो तथा उसके पास कोई अन्य मकान न हो।

3. *ब्यापार व पेशे से लाभ की गणना :* एक व्यापारी की क्रय, विक्रय व निर्माण करने से कमाई गई आयें तथा पेशेवर व्यक्ति जैसे डाक्टर, वकील, इंजीनियर की पेशेवर कार्यों से कमाई गई प्राप्तियों पर इस शीर्षक से आय की गणना की जाती है।
4. *पूँजी लाभ :* इस शीर्षक में आने वाली आयें पूँजी सम्पतियों के हस्तांतरण से उदय हुई प्राप्तियाँ होती है। पूँजी सम्पतियाँ अल्पकालीन व दीर्घकालीन हो सकती है। यदि सम्पति हस्तांतरण से पूर्व में 36 माह से अधिक करदाता के पास रही तो दीर्घकालीन सम्पत्ति होती है। अंशों, प्रतिभूतियों की दशा में यहाँ 36 माह के बजाये 12 माह की गणना होती है।
5. *अन्य साधनों से आय :* विभिन्न प्रतिभूतियों से प्राप्त ब्याज, लाभांश, आकस्मिक आयें, लाटरी, जुआ से आयें इस शीर्षक में कर योग्य है। संसद सदस्यों व विधायकों के वेतन भत्ते इस शीर्षक में कर योग्य है।

धारा 80 की स्वीकृत कटौतियाँ

एक करदाता की सकल कुल आय में से 80C से 80U तक की कटौतियाँ घटाई जाती है।

महत्वपूर्ण कटौतियाँ है :

धारा 80 C; एक व्यक्ति व हिन्दू अविभाजित परिवार की आय पर 1,50,000 रू. की कटौती स्वीकृत होती है। यदि उसने अपनी आय का भाग जीवन बीमा प्रीमियम, सुपर एनुएसन, फंड अंशदान, रिहायशी मकान के ऋण पर मूलधन की वापसी के रूप में लगाई हो।

धारा 80 D; इसमें स्वास्थ्य बीमा के संबंध में करदाता को 25000 रू. तक स्वयं, पत्नि व आश्रित बच्चों के स्वास्थ्य बीमा प्रीमियम के संबंध में कटौती स्वीकृत होती है।

धारा 80 DD; निःशक्त आश्रित की चिकित्सा पर व्यय, पुनर्वास पर व्यय करने पर करदाता को सामान्य रूप से 75000 रू. की कटौती स्वीकृत होती है। गंभीर निःशक्तता से पीड़ित आश्रित की पुनर्वास चिकित्सा पर 1,25,000 रू. की कटौती स्वीकृत होती है।

80 E; उच्च शिक्षा के लिए ऋण पर ब्याज यदि ऋण इंजीनियरिंग, चिकित्सा विज्ञान, प्रबंध या अनुप्रयुक्त विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करने के लिये हो तो ब्याज भुगतान की कटौती मिलती है।

80 G; दिये गये दानों के संबंध में कटौतियाँ मिलती है।

आयकर प्रशासन

भारत में आयकर प्रशासन का सर्वोच्च केन्द्रीय प्रत्यक्ष आयकर बोर्ड है। इसके अतिरिक्त मुख्य आयकर कमिश्नर, आयकर कमिश्नर, अतिरिक्त आयकर कमिश्नर, संयुक्त आयकर कमिश्नर, उप कमिश्नर, सहायक कमिश्नर, आयकर अधिकारी, आयकर निरीक्षक होते हैं।

कर निर्धारण; करदाता द्वारा स्वयं आय का विवरण दाखिल किया जाता है। इसे स्वतः कर निर्धारण कहते हैं। यदि स्वतः कर निर्धारण के लिए आय का विवरण दाखिल किया जाता है तब आयकर अधिकारी द्वारा कर निर्धारण किया जाता है तब यह नियमित कर निर्धारण होगा। यदि करदाता आयकर निर्धारण के लिए सहयोग नहीं करता तब अधिकारी अपने पास एकत्रित तथ्यों के आधार पर निर्धारण करता है तब वह सर्वोत्तम कर निर्धारण होता है। इसके अतिरिक्त पुनः कर निर्धारण भी हो सकता है।

आयकर केन्द्रीय सरकार का महत्वपूर्ण आय का श्रोत है। 2016-17 के केन्द्रीय बजट में आयकर से 353,173 करोड़ रू. राजस्व संग्रह का अनुमान लगाया गया है। इसके अतिरिक्त कम्पनी कर का अनुमान 4,93,923 करोड़ रू. का है। बृहद मात्रा में राजस्व कल्याणकारी कार्यों के लिये सरकार की भूमिका निभाने में सक्षम बनाता है। प्रभावी कर वसूली से सरकार का लोक हितकारी कार्य पूरा होना अधिक संभव होता है।

संदर्भ

आयकर विधान व लेखे -डॉ0 एच0सी0 मेहरोत्रा एवं डॉ0 एस0पी0 गोयल
आयकर -डॉ. श्रीपाल सकलेचा
आयकर विधान एवं लेखे -जे0के0 बरेजा, डॉ0 पी0के0 जैन एवं आर0के0 त्यागी
Clear Tax Blog/https//blog.cleartax.in
Deductions and tax planning taxguru.in>income tax.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,70-74
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जुलाई 2016

वर्तमान पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव

संजीव सराफ* एवं अरुण कुमार गुप्त**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वर्तमान पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *संजीव सराफ एवं अरुण कुमार गुप्त* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

आज के बदलते समय में आधुनिक पुस्तकालय से पाठक को देश विदेश गॉव गिरांव, समाज के अन्दर हो रहे बदलाव को समाचार पत्र-पत्रिकायें, फिल्म, रेडियो तथा टेलिविजन के माध्यम से सूचनाओं को आसानी से प्राप्त कर लेता है। इन्हीं संचार के माध्यमों से एक जगह से अधिकांश पाठक तक एक तरफ संचरण को सरल बनाते है। 20वीं सदी के आधुनिक पुस्तकालयो में जनसंचार माध्यमों में तीक्ष्ण वृद्धि हुई है। टेलिविजन तथा चलचित्र सबसे अधिक प्रभावी माध्यम है क्योकि यह दृश्य तथा श्रव्य दोनों का समिश्रण करते है। टेलिविजन में समाचार पत्रों, पत्रिकाओं, फिल्मों, इन्टरनेट, कम्प्यूटरों, रेडियों ने पाठकों के जीवन शैली में बदलाव डाली है क्योकि इससे सम्प्रेषण आमने-सामने न होते हुए भी बहुत से मामलों में आमने-सामने के सम्बन्धों से भी अधिक व्यवहारिक तथा प्रभावी बना दिया है और कुछ स्थितियों में तो यह आमने-सामने सम्प्रेषण का भी एक रूप बन जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में छोड़ा गया उपग्रह एडूसेट (Eduset) के अंतर्गत प्रक्षेपण वेव आधारित अनुदेशन, डिजिटल पुस्तकालय एवं बहुमाध्यम अभिकरणों ने शिक्षा क्षेत्र में क्रान्ति ला दी है। इस क्रान्ति से ही अब दूर-दराज के क्षेत्रों के पाठकों को एक नई वास्तविकता के सम्मुख लाना सम्भव हो सका है।

आज का युग सूचना प्रसारण के विस्फोट का युग है। बिना अपने ज्ञान को ताजा रखे हम विश्व के साथ ताल-मेल मिलाकर नहीं चल सकते। पाठकों को अपने ज्ञान को ताजा रखने के लिए हमे सूचना प्रसारण तकनीक को अवश्य अपनाना होगा। इस तकनीक के अंतर्गत रेडियो, टेलिविजन, इन्टरनेट का प्रयोग शामिल है। जिस प्रकार महाभारत काल में संजय ने कुरूक्षेत्र में होने वाली एक घटनाओं का वर्णन धृतराष्ट्र को महल में बैठे-बैठे वर्णन कर दिया। उसी प्रकार आज हम अपने कार्यालय, कक्षा, सभागार, पुस्तकालय, वाचनालय, व्याख्यान हाल, या घर में बैठे-बैठे, विश्व के किसी भाग में हो रहे किसी शैक्षणिक कार्यक्रम का न केवल अवलोकन कर सकते है बल्कि इंन्टरनेट अथवा विडियों कान्फ्रेन्सिंग के द्वारा उसमें अपनी प्रतिभागिता सुनिश्चित कर सकते हैं।

* सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत
** शोध छात्र, पुस्तकालय और सूचना विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर (राजस्थान) भारत। E-mail : arunkumarg402@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पुस्तकालय क्षेत्र में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग स्वतंत्रता के बाद UGC के संगठन के बाद प्रारम्भ हुआ, जिसका उद्देश्य ज्ञान को जन-जन तक पहुचाना, सुलभ व सरल बनाना था। संचार के साधनों के माध्यम से ज्ञान को व्यापक रूप में फैलाने का प्रयास किया गया है। विज्ञान के क्षेत्र में सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग व्यापक क्षेत्र में होता है। जिससे पाठकों को इसका लाभ अच्छे ढंग से प्राप्त होता रहे। टी0वी0 पर दूरदर्शन द्वारा ज्ञान भारती चैनल द्वारा विभिन्न विषयों की सूचनाएं प्रसारित की जाती है। आकाशवाणी द्वारा भी मौखिक ज्ञान रेडियों के माध्यम से प्रसारित किया जाता है। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग इग्नू द्वारा व्यापक रूप से किया जाता है। इग्नू जो पत्राचार की पढ़ाई कराता है, अपने एडवांस स्टडी सेन्टर पर संचार प्रौद्योगिकी का प्रयोग बड़े-बड़े प्रोफेसरों के व्याख्यान उपलब्ध कराता है। यही नही कई बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों के क्लास रूम लेक्चर इन्टरनेट के माध्यम से, किसी पाठक के स्टडी रूम में कम्प्यूटर के माध्यम से आसानी से उपलब्ध हो जाता है।

इन्टरनेट के माध्यम से पाठक न केवल वैश्विक एजुकेशनल कन्टेक्स्ट को एक्सेस कर सकता है बल्कि घर बैठे अंतर्राष्ट्रीय स्तर की शिक्षा भी पाता है। विदेशी संस्थानों से आनलाईन कोर्स करना अब कोई नई बात नहीं है। नेट पर विभिन्न विषयों से सम्बन्धित हजारों वेबसाइट्स उपलब्ध हैं। रिसर्च से सम्बन्धित जानकारियां हो तो या विभिन्न एन्ट्रेन्स एग्जाम, एग्जाम नोटिफिकेशन, एग्जाम डेट, एडमिशन प्रोसेस, आनलाईन एग्जाम, डिस्टेन्स एजुकेशन, एजुकेशन लोन, एग्जाम रिजल्ट, विभिन्न कैरियर आप्शन्स, विदशों में पढ़ाई की जानकारी आदि से सम्बन्धित जानकारियां प्राप्त कर सकते हैं। स्मार्ट क्लासेज, ई-कम्प्यूटर, जैसी कई अवधारणाएं, आज वर्तमान शिक्षा में काफी लोकप्रिय है। सूचना तकनीकी के माध्यम से पाठकों को इंटरनेट पर भी लैब की सुविधाएं मिलने लगी हैं। आज वर्चुवल लैब पर साइंस टेक्नोलाजी, इंजिनियरिंग, आई टी आदि विभिन्न विषयों से सम्बन्धित प्रयोगों का घर बैठे ही लाभ प्राप्त किया जाता है।

विज्ञान से सम्बन्धित तकनीक तथा कुछ विषयों की सीमा तोड़कर, सूचना व संचार प्रौद्योगिकी ने पाठ्यक्रम के प्रत्येक पक्ष पर अपना अधिपत्य जमा लिया है। इसके प्रयोग से पाठकों की ग्रहण क्षमता, प्रेषण क्षमता व योग्यता में सार्थक व रचनात्मक ढंग से सुधार आया है। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी ने विषय की विषयवस्तु, शिक्षण विधियां, कक्षागत परिस्थितियों एवं शिक्षा के राष्ट्रीय व सामाजिक सरोकार के परिप्रेक्ष्य में अमूल परिवर्तन ला दिया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने कक्षा में व कक्षा के बाहर, पुस्तकों में, वाचनालयों में, अनुदेशन में प्रयुक्त होने वाले परम्परागत साधनों के अतिरिक्त आधुनिक, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग विस्तारित किया है। जिससे पाठकों को विषय से सम्बन्धित किसी प्रकार कोई अवरोध उत्पन्न न हो।

शिक्षा के क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किये हैं :

- पाठकों के शिक्षण के लिए रेडियो, दूरदर्शन प्रसारण, सी0डी0 कैसेट, डी0वी0डी0 कैसेट, कम्प्यूटर आदि उपकरणों का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है।
- पाठक विचार- विमर्श, सामूहिक अधिगम, व्यक्तिक अधिगम अनुसंधान हेतु नवीन शिक्षण विधियों के उपकरण के रूप में।
- पाठकों को पुस्तकालयों में पुस्तकों को आसानी से लेन-देन करने हेतु नवीन उपकरणों का प्रयोग करना।

आज के शिक्षा क्षेत्र में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के भौतिक संसाधनों का बहुतायत में प्रयोग किया जा रहा है; • कैलकुलेटर, • डिजिटल पुस्तकालय, • मल्टीमीडिया, • इंटरनेट, • ब्राडबैन्ड, • वर्ल्ड वाईब वेब, • आडियो और वीडियो, • हाईपर टेक्स्ट, • सर्च इंजन, • टेक्सट एवं ग्राफिक, • आनलाइन आवेदन करना, परीक्षा, साक्षात्कार, प्रोफाइल करना, • विडियो कान्फ्रेन्सिंग, • डाउनलोडिंग।

सभी संसाधनों के प्रयोग पुस्तकालयों में पाठको को उत्तम शिक्षा प्रदान करने के लिए किया जाता है। इन संसाधनों के माध्यम से पाठकों को शिक्षा क्षेत्र में नई से नई सूचनाएं आसानी से प्राप्त हो जाती है।

वर्तमान युग के पुस्तकालयों में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता व विकास दिन प्रतिदिन हो रहा है। पाठकों को अपने विषय से सम्बन्धित नीतियों का निर्धारण वर्तमान की आधारशिला पर भविष्य के विकास के लिए किया जाता है, जिससे भूतकाल से ऊर्जा प्राप्त की जाती है। वर्तमान समय में सभी पुस्तकालय पाठको को अच्छी से अच्छी सूचना व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था को चुस्त-दुरूस्त बनाकर रखने में, अत्याधुनिक यंत्रों की व्यवस्था की जा रही है ताकि समय के साथ ही विश्व में हो रही नई नई खोज, सूचनाओं, समसामयिक घटनाओं से अवगत हो जाये।

पाठकों के पाठ्यक्रम निर्माण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी की उपयोगिता विज्ञान के बढ़ते प्रभाव के कारण अपरिहार्य सी हो गयी। पाठ्यक्रम यथार्थ पाठको की प्रौद्योगिकी के अनुसार निर्मित किया जाता है। सूचना प्रौद्योगिकी के तमाम उपागम को पाठकों के पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया। जैसे ही सूचना एवं संचार के आधुनिक साधनो की जानकारी प्राप्त होती है। उसकी पूर्णतः व्यवस्था पुस्तकालयों में, एवं वाचनालयों में की जाती है। यदि ऐसा नहीं किया जाता तो हमारे पाठक दुनिया की दौर में पिछड़ सकता है।

आज वर्तमान समय में शैक्षिक प्रशासन में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का इतना अधिक प्रयोग किया जा रहा है कि समस्त सूचनाओं आकड़ों का निर्माण, प्रेषण कम्प्यूटर से किया जा रहा है। विडियो कान्फ्रेन्सिंग के माध्यम से राजधानी, जिला मुख्यालय, या पुस्तकालय के सभागार में बैठे शिक्षा प्रशासक, पुस्तकालयाध्यक्ष एवं अन्य प्रशासक अपने-अपने कार्यक्षेत्र का नियंत्रण कर रहे हैं। इसके लिए शिक्षा विभाग ने शैक्षिक सूचना प्रबन्धन प्रणाली तथा क्षेत्रिय स्तर पर शैक्षणिक सूचना प्रणाली साफ्टवेयर का निर्माण कर रहा है।

सूचनाओं का महत्व तभी है जब वह उचित समय पर, उचित स्वरूप में, उचित पाठक, व्यक्ति के पास पहुंच जायें, सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने इस कार्य को अपने सूचना सम्वाहन तंत्र के माध्यम से उपलब्ध करा दिया है। सूचनाओं के संग्रह हेतु मोबाइल, फैक्स, ई-मेल, प्रक्रमण हेतु कम्प्यूटर तथा उचित व्यक्ति के पास पहुचाने हेतु वेबसाइट, ई-मेल, फैक्स, फोन सेवा, उपलब्ध कराकर सूचना सम्वाहन को सरल एवं सुलभ बना दिया है।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने पुस्तकालय में कक्षा में, लेक्चर हाल में सभागार में, सेमिनार हाल में एक क्रान्ति सी ला दी है तथा प्रोफेसर, लेक्चरर, प्रवक्ता, अध्यापक, पुस्तकालयाध्यक्षों को अपने शिक्षण में सहयोग व पाठकों तक पहुँचाने के लिये सजीवता प्रदान की है। पुस्तकालय के सभागार में, वाचनालय में स्लाईड, विडियो, टेलीफिल्म, माईक्रोफोन, ध्वनि-प्रकाश, पद्धति, टेपरिकार्डर, का प्रयोग करके शिक्षण का कार्य किया जा रहा है। पाठकों के शिक्षण काल में इन आधुनिक यंत्रों की इतनी उपयोगिता बढ़ गयी है कि कक्षा में, पुस्तकालय के वाचनालय में नक्शा आदि के स्थानों को संकेत हेतु शिक्षक, प्रोफेसर, पुस्तकाल- याध्यक्ष, संकेतक के स्थान पर टार्च के द्वारा लाईट का प्रकाश फैककर करने लगा है तथा लम्बी कक्षाओं में अपनी आवाज को पहुचाने हेतु मोबाईल माइक्रोफोन का प्रयोग कर रहे हैं।

पुस्तकालयों के अभिलेखों के निर्माण व अनुरक्षण में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी में अपनी उपयोगिता प्रमाणित की है। प्रौद्योगिकी के तहत सूचनाओं का निर्माण अब कम्प्यूटर से किया जा रहा है। पुस्तकालय के अभिलेख कम्प्यूटर से बनाये जा रहे है। उनके अनुरक्षण हेतु कम्प्यूटर फ्लापी, सी0डी0 तैयार की जा रही है। अधिकांश कार्यक्रमों का अभिलेखीकरण फोटोग्राफी, टाइप प्रिन्ट, कम्प्यूटर प्रिन्ट, आदि के माध्यम से किया जा रहा है।

सूचना तथा संचार प्रविधियों फैलाव ने दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के परस्पर एकीकरण व सामंजस्य से दूरस्थ शिक्षा की प्रविधियों, शिक्षण, सामग्री प्रेषण, अन्तर्क्रियात्मक क्षमता में वृद्धि कार्यक्रम दूरभाष, कान्फ्रेन्सिंग, दूरवर्ती कान्फ्रेन्सिंग, कन्प्यूटर कान्फ्रेन्सिंग, ई-मेल, रेडियों, अन्तर्क्रियात्मक कार्यक्रम आदि के प्रयोग ने दूरस्थ शिक्षा को सहज रूप से ग्रहण किया है। ये साधन दूरस्थ शिक्षा के शिक्षार्थियों को अत्यंत प्रभावी ढंग से द्विमार्गीय अन्तर्क्रिया करने के विविधतापूर्ण अवसर उपलब्ध कराते है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक सूचना तथा संचार माध्यमों का सबसे महत्वपूर्ण व उत्साहजनक पक्ष उनकी लागत में पर्याप्त कमी आयी है। इसलिए इसकी उपयोगिता और बढ़ गई है।

टेलीकान्फ्रेन्सिंग, विडियो कान्फ्रेन्सिंग प्रक्रिया; संचार आधारित उपग्रहों के माध्यम से कान्फ्रेन्सिंग होती है। इसी माध्यम से पाठकों को दूर-दूर तक वार्तालाप एवं सूचनाओं का आदान-प्रदान समय के रहते होते रहते है। इसमें दृश्य श्रव्य दोनों माध्यमों में तारतम्यता के साथ सूचनाओं का प्रसारण किया जाता है। दृश्य एवं श्रव्य तरंग प्रेषक स्रोत से ही ग्राही केन्द्र तक संचार उपग्रहों के माध्यम से प्रसारित की जाती है।

टेलीकान्फ्रेन्सिंग; टेलीफोन या टेलीविजन द्वारा बैठक या संगोष्ठियों का आयोजन करना टेलीकान्फ्रेन्सिंग कहलाता है। इस पद्धति के माध्यम से कई स्थानों पर बिखरे व्यक्तियों से इस प्रकार बातचीत कर लेते है। जैसे एक ही कमरे में बैठे हो या एकत्रित

हों। टेलीकान्फ्रेन्स के आज विविध रूप देखने का मिलते है। जैसे आडियो कान्फ्रेन्स, विडियो कान्फ्रेन्स, कम्प्यूटर कान्फ्रेन्स इत्यादि। वर्तमान की व्यस्त व तीव्र जीवन शैली में टेलीकान्फ्रेन्स पद्धति का विकास वरदान सिद्ध हुआ है।

टेलीटैक्स एवं विडियो टैक्स्ट; यह दूरसंचार की आधुनिक प्रणाली है। जो कम्प्यूटर के विकास से ही सम्भव हुआ है। टेलीविजन संदेशों के साथ आकड़ों का प्रसारण भी करता है। यह विडियो टेक्स्ट कहलाता है। टैली टेक्स्ट प्रणाली टेलीविजन प्रसारण केन्द्र पर सूचनाओं को कम्प्यूटर में व्यवस्थित करके प्रसारित करती है। इस प्रक्रिया को डाटाबेस कहते हैं। विडियो टेक्स्ट में संदेशो को टेलीफोन द्वारा सम्प्रेषित किया जाता है। सूचना प्राप्त करने वाली इस प्रक्रिया में संदेश को कम्प्यूटर की मेमोरी में फीड कर लेता है। सूचना प्राप्त करने वाला व्यक्ति टेलीफोन द्वारा विडियो टेक्स्ट से सम्पर्क स्थापित करता है और कम्प्यूटर वांक्षित सूचना टेलीफोन लाईन द्वारा प्रसारित करता है।

गेटवे पैकेज स्वीचिंग पद्धति; जिस एरिया में टेलीफोन लाईनें बिछाना सम्भव नहीं है वहाँ उपग्रह संचार प्रणाली से सूचनाओं का आदान-प्रदान किया जाता है। उपग्रह संचार प्रणाली के सहायता से, कम्प्यूटर के माध्यम से, किसी भी स्थान से सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है। इस कार्य के लिए जिस तकनीक का प्रयोग किया जाता है उसे गेटवे पैकेज स्वीचिंग पद्धति कहा जाता है।

मोडम; आधुनिक संचार के क्षेत्र में मोडम कम्प्यूटरीकृत आधुनिक तकनीक है, जिससे कम समय व आवश्यकता से अधिक खर्च में समाचार पत्र का पृष्ठ तैयार हो जाता है। इस प्रणाली में सबसे पहले सन्देश प्राप्तकर्ता से टेलीफोन द्वारा सम्पर्क स्थापित करते हैं फिर मोडम नं0 डायल करते हैं, इसके उपरान्त सारे कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से नियन्त्रित किया जाता है।

प्रकाशीय संचार; सूचनाओं को जब प्रकाश के माध्यम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर सम्प्रेषण किया जाता है तो उसे प्रकाशीय संचार व्यवस्था कहा जाता है। इस संचार व्यवस्था में चित्रों व आकड़ों को प्रकाश के रूप में प्रसारित किया जाता है। इस कार्य को डायोड लेजर या लाईट एन्टीना डायोड ट्रान्समीटर के रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

लेसर दूरसंचार; लेसर किरणों ने दूरसंचार जगत में क्रान्तिकारी प्रगति का मार्ग प्रशस्त किया है। लेसर किरणों के द्वारा टेलीफोन, टेलीविजन प्रसारण, कम्प्यूटर डाटा और सूचनाओं को उपग्रहों तक भेजा जाता है।

नेटवर्क; भारत सरकार के योजना आयोग द्वारा राष्ट्रीय सूचना केन्द्रों की स्थापना प्रत्येक जनपद में की गई है। इसका मुख्य कार्य सरकारी विभागों के विचारों, निर्णयों का आदान-प्रदान तथा कान्फ्रेन्सिंग के माध्यम से पाठकों से सम्पर्क स्थापित करना है। यह सरकारी विभागों के लिए डाटाबेस उपलब्ध कराता है। जिसके माध्यम से सरकारी काम काज आसानी से संचालित किया जाता है। जिससे पाठकों को आपने अध्ययन से सम्बन्धित अधिक फायदा होता रहता है।

इन्डोनेट; इन्डोनेट का निर्माण कम्प्यूटर मेन्टेनेन्स कार्पोरेशन ने किया है। इन्डोनेट बनाने का मुख्य उद्देश्य देश के दूर दराज के हिस्सों में पाठकों को कम्प्यूटर के माध्यम से तत्काल घटने वाली सूचनाओं की जानकारी तथा शीघ्रता से प्राप्त हो जाय। इसके माध्यम से देश के प्रत्येक हिस्से में सूचनओं को एवं आकड़ों को आसानी से पहुँचाया जाता है। इसका दूसरा उद्देश्य के इलाकों में कम्प्यूटर द्वारा प्राप्त सूचनाओं के लिए साफ्टवेयर का विकास और निर्यात करने के साथ-साथ अभियांत्रिकी डिजाईन, मैनेजमेंट साइंस, ऊर्जा एवं कम्प्यूटर नेटवर्क क्षेत्र में विशेष पैकेज, वितरित सूचना निकायों कम्प्यूटर व्यवसाय का पाठकों की समय समय पर प्रशिक्षण प्रदान करता है।

इंटरनेट-इंटरनेट एक ऐसा विश्वव्यापी कम्प्यूटर नेटवर्क है जिसमें विस्तृत जानकारी एकत्रित कर एक कम्प्यूटर में उपलब्ध करायी जाती है। इंटरनेट का पूरा नाम इंटरनेशनल नेटवर्क है। इससे बहुत कम समय में दुनिया की बड़ी से बड़ी जानकारी प्राप्त की जाती है। वर्तमान समय में इस इंटरनेट का भरपूर उपयोग पाठक, विद्यार्थी, अध्यापक, प्रवक्ता, रीडर, डीन, प्रोफेसर, पुस्तकालयाध्यक्ष, पुस्तकालय प्रवक्ता, डाक्टर, वैज्ञानिक, शोधार्थी, सरकारी कर्मचारी, निजी कर्मचारी, व व्यवसायी, इसका पल-पल का लाभ उठा रहे हैं।

शिक्षा जगत में इंटरनेट का विशेष महत्व है। इसके द्वारा शिक्षक, पाठक, विद्यार्थी, प्रोफेसर किसी भी महत्वपूर्ण विषय पर दूर दराज बैठकर इंटरनेट के माध्यम से आपस में विचार-विमर्श कर सकते हैं। वर्तमान समय में मुख्य रूप से शोधकर्ता एवं वैज्ञानिक इंटरनेट के माध्यम से विश्व की अधिक से अधिक आधुनिक शोध सुविधाओं का लाभ उठा रहे हैं। इंटरनेट के

माध्यम से पाठकगण कला, संस्कृति, अन्तरिक्ष व खगोल विद्या, पर्यटन भौगोलिक एवं अंतर्राष्ट्रीय मामले समेत अन्य सूचनाएं भी समय-समय पर प्राप्त करते रहते हैं।

ई-मेल; ई-मेल का पूरा नाम इलेक्ट्रानिक मेल है। यह इंटरनेट का सबसे लोकप्रिय उपयोग है। जिसमें सूचना संचार के क्षेत्र में एक जबरजस्त क्रान्ति का उद्‌गार हुआ। ई-मेल के माध्यम से ई-मेल के सरलतम प्रयोग के रूप में ई-मेल के संदेश कम्प्यूटर फाईल को एक दूसरे कम्प्यूटर पर भेजा जाता है। यह प्रणाली अन्य इंटरनेट सेवाओं की तरह फ्लाइट सर्वर पद्धति पर आधारित है। ई-मेल के अंतर्गत ई-चैट, ई-कामर्स, ई-बिजनेस, पी-कामर्स, ई-प्रशासन इत्यादि आती है।

कन्वर्जेन्स; यह सूचना प्रौद्योगिकी पुस्तकालय जगत में एक नयी उपलब्धि है। यदि पुस्तकालय में केबल, टी0बी, इंटरनेट, टेलीफोन, फैक्स आदि की सुविधाएं उपलब्ध हैं तो निश्चित ही पुस्तकालय, वाचनालय में तारों व संजालों का जाल बिछ जायेगा जो पाठकों को अध्ययन में बाधा उत्पन्न होने लगेगा। यदि इन सारी सुविधाओं को एक ही कन्वेंशन में मिला दिया जाये तो जगह की बचत होगी और एक ही उपकरण से सारी सुविधाएं पाठकों को प्राप्त हो जायेंगी। कन्वर्जेंस इसी एकीकृत सुविधा व्यवस्था का नाम है जिसे हम सभी लोग अपनी भाषा में आल इन वन कहते हैं। इसके माध्यम से हम सभी पाठक लोगों को टेलीफोन बूथ, ई-कामर्स, टेली बैंकिंग, टेली ट्रेडिंग, टेली एजुकेशन (साइबर शिक्षा) टेली मेडिसीन, विडियो कान्फ्रेन्सिंग आदि का प्रयोग करते हैं। इसमें सूचना तकनीकी, संचार, तकनीक तथा प्रसारण सेवाओं को एक चैनल के माध्यम से पाठकों तक आसानी से पहुँचाया जाता है।

डिजिटल डिवाइड; डिजिटल डिवाईड शब्द 1990 के दशक में कम्प्यूटर के क्षेत्र में पाठकों के सामने प्रचालित हुआ। सूचना व संचार प्रौद्योगिकी तथा इंटरनेट के प्रयोग के सम्बन्ध में विभिन्न सामाजिक, आर्थिक स्तरों पर पाठकों, पुस्तकालय वाचनालय, घरेलू व्यवसाय, भौगोलिक, क्षेत्रों के बीच आये मतभेद को डिजिटल डिवाइड कहा जाता है।

सारांश

राष्ट्र उन्नति के पथ पर तभी अग्रसर होता है। जब राष्ट्र के सभी पाठकों को पढ़ने की सर्वोत्तम व्यवस्था मिले तथा अवसरों को पाठकों के द्वारा प्रभावी ढंग से लाभ प्राप्त हो सके। वर्तमान समय सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के अनेक विकास कार्यक्रम का संचालन अपनी ऊँचाई पर चढ़ती जा रही है। इसके माध्यम से शोध छात्रों, पढ़ने वाले छात्रों को अपने अध्ययन की सुविधा का विस्तार होता जा रहा है। वर्तमान समय में पूरा समाज एवं शिक्षा संस्थाओं को आई टी से जोड़ दिया गया है। इसी कारण शिक्षा के स्तर को दिन-प्रतिदिन वैज्ञानिक पद्धति में सुधार एवं विकास हो रहा है। आई टी के प्रभाव से आधुनिक पुस्तकालय को सुदृढ़ बनाये जाने का प्रयास किया जा रहा है। जिसके माध्यम से पुस्तकालय में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का प्रभाव पाठकों पर अच्छी तरह से पड़ता दिखायी दे रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

श्रीवास्तव महेन्द्र नाथ (2012) -शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा

जैन रंजना (2010) -शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, आर.एस.ए. इन्टरनेशनल, आगरा

शर्मा, राजकुमारी (2010) -शिक्षा में शिक्षा में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी, राधा प्रकाशन मंदिर, आगरा

कुलश्रेष्ठ, एस0पी0 एवं सिंघल, अनुपमा (2012) -शैक्षिक तकनीकी के मूल आधार, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा

पाटनी, डा0 मंजू (2007) -प्रसार एवं संचार, शिवा प्रकाशन, इंदौर

सिंह, शंकर (2000) -कम्प्यूटर और सूचना तकनीकी, दिल्ली-पूर्वांचल प्रकाशन

शर्मा, डा0 पाण्डेय, एस0के0 (1996) -कम्प्यूटर और पुस्तकालय, नई दिल्ली ग्रन्थ अकादमी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,75-81
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 22 अगस्त 2016

गुप्तकाल में चित्रकला एक सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम : एक खोज

राम कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गुप्तकाल में चित्रकला एक सशक्त अभिव्यक्ति का माध्यम : एक खोज* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *राम कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

चित्र मानव की आन्तरिक अभिव्यक्ति का एक माध्यम है। संसार में चित्रकला के विकास की खोज प्रागैतिहासिक गुहा-चित्रों में हुई है और चित्रकला के विकासक्रम को व्यवस्थित रूप देने का प्रयास किया गया है। किन्तु इस प्रकार की भारतीय चित्रकला की ऐतिहासिक कड़ियों को अभी व्यवस्थित रूप से जोड़ा जाना सम्भव नहीं हो पाया है। मिर्जापुर, होशंगाबाद, पंचमढ़ी आदि अनेक स्थानों से प्रागैतिहासिक गुहाओं की भित्तियों पर बड़ी संख्या में अनेक प्रकार के रेखा-चित्र मिले हैं; पर उनका अभी किसी प्रकार का कोई सम्यक् अध्ययन नहीं हुआ है और न उनका कोई समुचित काल-निर्धारण किया जा सका है। इस प्रकार वे चित्र अभी अपने-आप में अलग-थलग से हैं। इसी प्रकार ऐतिहासिक सीमा के परिगणना के भीतर चित्रकला के आदिम रूप की झलक हड़प्पा सभ्यता और उसके पूर्ववर्ती तथा परवर्ती सभ्यताओं के अवशिष्ट मृद्भाण्डों पर अंकित और खचित रेखाचित्रों तथा मुहरों के प्रतीकों में देखी जाती है। पर चित्रकला के इतिहास की दृष्टि से उनकी भी अभी तक कोई समुचित व्याख्या प्रस्तुत नहीं की जा सकी है। भारतीय चित्रकला के प्रारम्भिक इतिहास की एक अन्य कड़ी देश में सर्वत्र बिखरे आहत मुद्राओं पर अंकित आकृतियों में भी देखी जा सकती है। उनका समय बहुत-कुछ सातवीं-छठीं शती ईसा-पूर्व से लेकर ईसा-पूर्व दूसरी शती तक निर्धारित है और उनमें पशु-पक्षी, वृक्ष, मानव तथा नाना प्रकार के वास्तविक और काल्पनिक रूपों का अंकन हुआ है। पर वे भी अपने-आप में इतने एकांकी हैं कि चित्रकला के परिपृष्ट में उनका कोई मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

भारतीय चित्रकला के इतिहास की आज जो व्यवस्थित कड़ी हमें उपलब्ध है; वह अजिण्ठा[1] के गुफाओं से प्राप्त होती है। वहाँ के कुछ गुफाओं में ऐसे भित्ति-चित्रों के अवशेष मिले हैं, जिनका समय ईसा-पूर्व की दूसरी शती के आस-पास अनुमान किया जाता है और वे चित्रकला के अत्यन्त विकसित परम्परा के प्रतीक हैं। यह चित्रकला सहसा प्रादुर्भूत न हुई होगी; उस परम्परा तक पहुँचने के लिए निःसन्देह कलाकारों ने बहुत बड़ी साधना की होगी और उस साधना में अवश्य ही शताब्दियाँ लगी होंगी।

* शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इन पुरानी बातों को छोड़ दिया जाय और केवल गुप्तकालीन चित्रों की ही चर्चा की जाय तो सहज रूप से यह कहा जा सकता है कि उसकी चित्रकला की परम्परा की कड़ी उससे लगभग छः सौ बरस पहले से मिलने लगी थी। गुप्त-काल में चित्रकला ने पूर्ण विकसित वैभव प्राप्त कर लिया था। तत्कालीन तकनीकी और ललित, दोनों प्रकार के साहित्य से ज्ञात होता है कि उन दिनों लोग चित्रकला को केवल शौकिया ही नहीं सीखते थे, वरन् नागरिक समाज के उच्च वर्ग और राजमहलों की स्त्रियों और राजकुमारियों के बीच चित्रकला का ज्ञान एक अनिवार्य सामाजिक गुण माना जाता था और सामान्य जन में भी उसका प्रचार-प्रसार काफी था। कामसूत्र में चित्रकला का उल्लेख न केवल नागरक कला के रूप में हुआ है, वरन् उसमें उसके उपकरण, यथा- रंग, ब्रश, फलक आदि की भी चर्चा है और उन्हें नागरक के निजी कक्ष में होना आवश्यक कहा है। राजमहलों और धनिक घरों में चित्रकला होने का उल्लेख साहित्य में यत्र-तत्र मिलता है।[2] वह लोगों के चित्रकला के प्रति रुचि का परिचायक है।

गुप्तकालिक साहित्य से यह भी ज्ञात होता है कि चित्रकला का व्यवहारिक रूप का प्रचुर विकास तो हुआ ही था, उसके सिद्धान्त और तकनीक पर भी गम्भीरता से सोचा जा चुका था और चित्रकला सम्बन्धी सिद्धान्त निर्धारित हो चुके थे। विष्णु धर्मोत्तर पुराण में चित्रकला सम्बन्धी पूरा एक अध्याय है। उसमें उसके सिद्धान्तों पर विचार किया गया है और चित्र के सत्य (यथावत छवि), वैनिक (छन्दयुक्त), नागर (संस्कृत) और मिश्र चार भेद बताये गये हैं। साथ ही वर्णरेखा, वर्ण-पूजन, अवयवों के परिमाण, अंगों के गठन, तनुता-स्थूलता, भावना, चेतना आदि की भी विषद चर्चा की गयी है।

चित्र और तत्सम्बन्धी कला का उल्लेख कालिदास की कृतियों में अनेक स्थलों पर मिलता है। उनसे इनके सम्बन्ध की काफी जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रसंग में कालिदास ने चित्र[3] और प्रतिकृति[4] दो शब्दों का प्रयोग किया है। प्रतिकृति से उनका तात्पर्य आकृतिचित्र (पोट्रेट) से था। उनकी कृतियों में इसके सन्दर्भ अनेक हैं। विक्रमोर्वशीय में उर्वशी के चित्र, मालविकाग्निमित्र में मालविका के चित्र और रघुवंश में पूजागृह में दशरथ के चित्र का उल्लेख है। कुमारसम्भव में पार्वती द्वारा शंकर का चित्र बनाये जाने का उल्लेख है। ये प्रतिकृतियाँ चित्रकारों ने आकृतियों को देखकर बनायी थीं, इसका कोई स्पष्ट संकेत तो नहीं हैं, पर स्मरण से प्रतिकृतियाँ बनाये जाने की चर्चा तो मेघदूत में स्पष्ट है। विरहिणी यक्षिणी, विरह के लम्बे क्षणों को काटने के लिए अपने प्रियतम का चित्र अपने स्मरण के आधार पर बनाती है।[5] इस प्रकार यक्ष भी रामगिरि की शिला पर गेरू से अपनी पत्नी का चित्र बनाता है।[6] कालिदास के उल्लेखों के अनुसार प्रतिकृतियाँ देखकर अथवा स्मृति से बनायी जाती रही हों, सभी सजीव और भाव-प्रवण होती थीं।

प्रकृति-चित्रण की समग्र योजना का आभास भी कालिदास की रचनाओं में मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला की प्रतिकृति को पहचान कर दुष्यन्त उसके भय, औत्सुक्य, शैथिल्य आदि भावों की ओर इंगित करता है। थकान से शिथिल शकुन्तला की केशराशि खुलकर लटक गयी है, मुख पर पसीने की बूँद झलक रही है।[7] कालिदास ने चिन्तावृद्धि के भी रागबद्ध (चित्रित) किये जाने का उल्लेख किया है।[8] उन्होंने अन्यत्र भावावेगों के चित्रण की ओर संकेत किया है।[9] दुष्यन्त पर्याप्त सीमा तक शकुन्तला का चित्रण कर चुकने पर उसमें अनेक खामियों का अनुभव करता है। कहता है- ''अभी कान के ऊपर केशों की गाँठ नहीं डाली, कपोलों पर पराग झर पड़ने वाले शिरीष के कुसुमों के गुच्छे अभी कानों पर नहीं रखे; अभी स्तनों के बीच चन्द्र-किरणों से कोमल मृणालसूत्र बनाना तो रह ही गया।''[10] चित्र की शेष भूमि को कदम्ब-वृक्षों से भर देने की बात भी कही गयी है।[11] शकुन्तला के एक अन्य चित्रण में वह हाथ में नील कमल लिये ओठों पर मँडराते भ्रमर को दूर करते खड़ी बतायी गयी है।[12]

प्रतिकृतियाँ एकाकी और सामूहिक दोनों प्रकार की होती थीं। सामूहिक प्रतिकृतियों के चित्रण का अनुमान मालविकाग्निमित्र के प्रथम अंक से किया जा सकता है। उसमें रानी के साथ दासियों के बीच मालविका के चित्र के होने का उल्लेख है। इसी प्रकार एक चित्र में शकुन्तला के साथ उसकी दो सखियों के होने की चर्चा है। प्रतिकृतियों के अतिरिक्त प्रकृति चित्रण भू-चित्रण (लैण्ड-स्केप) का भी उल्लेख कालिदास की रचनाओं में मिलता है। उन्होंने दुष्यन्त के माध्यम से एक ऐसे चित्रण की कल्पना की है जिसमें मालिनी की धारा हो, जिसके पुलिनों पर हंस के जोड़े बिहर रहे हों, मालिनी के दोनों ओर हिमालय की पर्वतमाला चली गयी हो जिन पर हरिण बैठे हो, फिर दुष्यन्त की कल्पना है कि वह वल्कल लटकाये आश्रम के वृक्षों का अंकन करे। एक की शाखा तले बैठी मृगी अपने प्रिय मृग के सींग से अपना बायाँ नयन खुजला रही हो।[13]

विशाखदत्त के मुद्राराक्षस में यमपट नामक एक विशेष प्रकार के चित्र का उल्लेख हुआ है। इस काल से कुछ पहले चरणचित्र के नाम से उसकी ही चर्चा बुद्धघोष ने की है। दोनों का ही सम्बन्ध मृत्यु के बाद के जीवन के चित्रण से है। उनके विवरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि कर्मों के फलस्वरूप स्वर्ग और नरक के सुभोग और कुभोग को दरसाने और अगले जन्म को कर्मानुसार बनाने वाले दृश्यों का अंकन इन पटों पर होता था। वे एक प्रकार के काल्पनिक चित्र थे।

कालिदास के उल्लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि आज की तरह ही गुप्त-काल में भी चित्र-रचना में अनेक प्रकार के ब्रशों का प्रयोग होता था। उन्होंने इस प्रसंग में शलाका[14], वर्तिका[15], तूलिका[16], कूर्च, लम्बकूर्च[17] आदि शब्दों का उल्लेख किया है, जो विभिन्न प्रकार के ब्रशों और पेंसिलों के बोधक जान पड़ते हैं। शलाका महीन नोंक वाली पेंसिल को कहते थे जिससे चित्रों की सीमा रेखा तथा आकृतियों का बहिरंग खींचा जाता था। रेखाचित्रों के बनाने में भी सम्भवतः इसका प्रयोग होता था। वर्तिका विविध रंगों के मोटे पेंसिल को कहते होंगे, जो रंग भरने के काम आता होगा। तूलिका रुई से बनी नरम कूँची थी। बालों से बने ब्रश को कूर्च कहते होंगे और लम्बे आकार वाला ब्रश लम्बकूर्च कहा जाता होगा। ब्रशों आदि को जिस पेटिका में रखते थे उसे वर्तिका-करण्डक कहते थे।[18] उसी में रंग आदि भी रखते रहे होंगे। यह भी सम्भव है कि रंग रखने के लिए अलग पेटिका अथवा करण्डक होती रही हो। रंगों की चर्चा साहित्य में स्पष्ट रूप से नहीं हुई है, पर तत्कालीन जो चित्र आज उपलब्ध हैं, उनसे ज्ञात होता है कि उन दिनों चित्ररचना में प्रयोग किये जाने वाले प्रधान रंग गेरू, लाल, पीला, नीला (काला) और सफेद थे। ये सभी वनस्पतियों और खनिज से बनाये जाते थे।

जिस आधार पर चित्र बनाये जाते थे, उन्हें चित्रफलक[19] कहा गया है। इससे अनुमान होता है कि वह लकड़ी का बना चौकोर तख्त होता रहा होगा। पटों की ऊपर चर्चा की गयी है, उनसे यह अनुमान होता है कि कपड़ों पर भी चित्र बनाये जाते थे। किन्तु इन दोनों ही प्रकार के तत्कालीन चित्रों का नमूना आज उपलब्ध नहीं है। मेघदूत में यक्ष द्वारा चट्टान पर चित्र अंकित किये जाने का उल्लेख है। साहित्यिक सूत्रों से यह भी ज्ञात होता है कि धनी नागरिकों के घरों तथा राजमहलों के भित्ति और छत चित्रों से अलंकृत होते थे।[20] इनसे भित्ति चित्रों की परम्परा का परिचय मिलता है। गुप्त-कालीन आवास और राजमहल अभी तक प्रकाश में नहीं आये हैं, पर पर्वतों को काट कर जो धार्मिक गुहा-मन्दिर बनाये गये थे, उनमें भित्ति और छत दोनों ही अलंकृत मिलते हैं। वे राजमहलों के भित्ति-चित्र परम्परा में ही हैं। उनके देखने से ज्ञात होता है कि चित्रांकन से पहले भित्ति की भूमि तैयार की जाती थी। इस तैयारी अथवा चित्रों की प्रस्तुति-भूमि को विष्णुधर्मोत्तर पुराण में वज्रलेप कहा गया है। पहले दीवार घिस कर चिकनी कर ली जाती थी फिर उस पर प्रस्तरचूर्ण, मिट्टी और गोबर मिला कर शीरे की सहायता से लेप बना कर चढ़ाते थे। वह भूमि पर चढ़ कर पलस्तर की तरह जम जाता था। फिर उसे चिकना कर गीला रहते ही चूने के पानी से धो देते थे। इस प्रकार भूमि तैयार हो जाने पर उस पर चित्रांकन किया जाता था।

गुप्तकालीन सिद्धान्तकारों की दृष्टि में चित्रकला मात्र हस्तकौशल न थी। उसे उन लोगों ने योग की संज्ञा दी है, समाधिकर्म कहा है। चित्रालेखन की विशेषता ध्यान और योग की क्रिया की सहायक शक्ति में हैं। कहा गया है कि आलेखक को ध्यानविधि में निष्णात होना चाहिये। ध्यान के अतिरिक्त स्वरूप को जानने का कोई दूसरा साधन नहीं है, प्रत्यक्ष दर्शन भी नहीं। आलेखक को आलेखन से पूर्व समाधिस्थ होकर बैठना चाहिये और जब चित्र का भीतर-बाहर सब कुछ सर्वांग रूप से उसके मानस में उभर आये तभी वह आलेखन का प्रयास करे अन्यथा वह असफल होगा; उसमें शिथिल-समाधि का दोष आ जायेगा। मूलतः यह बात मूर्ति-निर्माण के प्रसंग में कही गयी है[21], पर वह चित्र-आलेखन पर भी समान रूप से लागू थी, यह कालिदास के माध्यम से ज्ञात होता है। मालविकाग्निमित्र[22] में राजा चित्रशाला में जाता है और हाल के बने मालविका के चित्र को देखता है, उसके रूप से वह चमत्कृत हो जाता है; कहता है- ''नारी चाहे कितनी सुन्दर क्यों न हो, वह इतनी (इस चित्र के समान) सुन्दर नहीं हो सकती।'' वह उस आलेक्य को अतिरंजित मानता है। किन्तु जब वह मालविका को नृत्याभिनय करते हुए देखता है तब सहसा कह उठता है- ''चित्र में इसका जो रूप देखा था, वह तो कुछ भी नहीं है। चित्रकार उसके वास्तविक रूप को पकड़ नहीं सका है। यह दोष तो निश्चय ही चित्रकार के शिथिल समाधि के कारण है।''

भित्ति-चित्र

ऊपर धार्मिक गुफाओं में भित्ति-चित्रों के अंकित होने की चर्चा हुई है। इस प्रकार के भित्ति-चित्र, जिनका समय तीसरी और छठी शती ई0 के बीच आँका जाता है, अजिण्ठा, बाघ, बादामी, बेदसा, कन्हेरी, औरंगाबाद, पीतलखोरा आदि अनेक स्थानों में मिले हैं। इनमें बेदसा के चित्र सबसे पुराने हैं। उनका चित्रण-काल तीसरी शती ई0 माना जाता है। पर वहाँ की चित्र-सम्पदा प्रायः नष्ट हो गयी है। कुछ धुँधली-सी पृष्ठभूमि और कुछ रेखा मात्र बचे हैं। छठी शती में चित्रित कन्हेरी (गुफा 14), औरंगाबाद (गुफा 3 और 6) और तीतलखोरा (चैत्य1) के चित्रों की भी यही दशा है। केवल अजिण्ठा (500-650 ई0), बाघ (लगभग 500 ई0) और बादामी (छठी शती ई0) के गुफाओं में ही किसी सीमा तक चित्र सुरक्षित बचे हैं। उनसे इस काल की चित्रकला की महत्ता प्रकट होती है। किन्तु अजिण्ठा गुप्त-साम्राज्य की परिधि से बाहर वाकाटकों की सीमा में स्थित है। इसी प्रकार बदामी भी चालुक्यों की राज-सीमा के अन्तर्गत रहा है। केवल बाघ के ही गुफा, जो मालवा में, मालवा-गुजरात के वणिक्पथ पर अमझेरा के निकट स्थित हैं, गुप्त-साम्राज्य के अन्तर्गत स्थित कहे जा सकते हैं। किन्तु उनकी रचना गुप्तों के शासन-काल में हुई, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हो सकता है, इन्हें भी वाकाटकों का संरक्षण प्राप्त रहा हो। वस्तुस्थिति जो भी हो, अजिण्ठा और बाघ के चित्रों की चर्चा गुप्त-कालीन कला के रूप में होती चली आ रही है।

अजन्ता की चित्रकला

अजन्ता के गुफा सह्याद्रि की पर्वतशृंखला में औरंगाबाद से लगभग 50 मील की दूरी पर स्थित उपत्यका में अर्द्ध- चन्द्राकार पर्वत में काट कर बनाये गये हैं। उनकी संख्या चौबीस है और उनका निर्माण ईसा-पूर्व दूसरी शती से सातवीं शती ईस्वी के बीच हुआ था। इनकी चर्चा किसी प्राचीन साहित्य में नहीं मिलती; किन्तु मध्यकालीन इतिहासकारों से ज्ञात होता है कि किसी समय औरंगजेब की सेना ने वहाँ से गुजरते समय इन गुफाओं को देखा था। पर वे भी इसके सम्बन्ध की कोई जानकारी प्रस्तुत नहीं करते। 1819 ई0 में अंग्रेजी सेना के एक अधिकारी ने उस मार्ग से जाते समय इन गुफाओं के सम्बन्ध में कुछ किंवदन्तियाँ सुनीं और उसने उन्हें देखने की चेष्टा की। उस समय इन गुफाओं में या तो जंगली पशु-पक्षी निवास करते थे या फिर कुछ घुमन्तू लोग; साधु-संन्यासी उनमें आकर रहते या ठहरते रहे। उसी अंग्रेज सैनिक अधिकारी ने सर्वप्रथम इन गुफाओं का परिचय संसार को दिया और लोगों की दृष्टि उस ओर गयी। फिर यथा समय उनकी खुदाई, सफाई और संरक्षण की ओर लोग उन्मुख हुए और उसका महत्व आँका गया। इन गुफाओं के प्रकाश में आने के पश्चात् बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के अनुरोध पर 1844 ईस्वी में ईस्ट इण्डिया कमपनी के चित्रों की अनुकृति बनाने के लिए मद्रास सेना के मेजर राबर्ट गिल को भेजा। पश्चात् 1915 ई0 में लेडी हरिंगहम ने अजन्ता के चित्रों की अनुकृति बनाकर प्रकाशित की। तदनन्तर निजाम सरकार ने अजन्ता के चित्रों का एक विस्तृत चित्राधार प्रकाशित कराया।

अजन्ता के 24 गुफाओं में से केवल सात (गुफा 1, 2, 9, 10, 16, 17 और 19) में ही अब चित्र बचे हैं। इन सात में भी दो (गुफा 9 और 10) के चित्र दूसरी पहली शती ईसा पूर्व के हैं; शेष पाँच का समय 500 ईस्वी और 650 ईस्वी के बीच आँका जाता है। गुफा 16 में, जो प्रस्तुत काल-सीमा के अन्तर्गत प्राचीनतम आँका जाता है, कुछ थोड़े से ही चित्र बचे हैं। उनमें बुद्ध के तीन चित्र, एक सोयी हुई स्त्री का चित्र और षड्दन्त जातक का मरणासन्न राजकुमारी वाला दृश्य है। मरणा-सन्न राजकुमारी का यह चित्र कला के इतिहास में भाव और करुणा की अभिव्यक्ति की दृष्टि से अद्वितीय है। ग्रिफिथ, बर्जेस और फर्गुसन ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है। इसी गुफा के एक चित्र में नन्द के संघ प्रवेश वाला दृश्य भी है जो अत्यन्त रागमय और करुण है। गुफा 17 में, जो गुफा 16 के बाद का है, वृत्तात्मक चित्रों का बाहुल्य है। उसमें बुद्ध के जन्म, जीवन और निर्वाण के अनेक मनोरम दृश्य हैं। उसमें सिंहलावदान, कपिलवस्तु की वापसी तथा महाहंस, मातृपोषक, रुरु, षड्दन्त शिवि, विश्वन्तर और नालगिरि जातकों का अंकन है। सिंहलावदान वाला चित्र, जिसमें जलप्लावन (सागर विप्लव) के बाद अपने बचे साथियों के साथ राजकुमार के सिंहल की भूमि पर अवतरण का दृश्य है, अपनी असाधारण गति और सुधराई के लिए अप्रतिम समझा जाता है। एक अन्य चित्र में शिशु लिये दो उँगलियों के सहारे कुछ गुनती हुई नारी अद्भुत कोमलता के साथ अंकित की गयी है। एक तीसरे चित्र में आकाशचारी तीन अप्सराओं की गति-छन्दस देखते ही बनती है। इस गुफा में अंकित

सिंह और श्याम मृग के शिकार और हाथियों के समूह का अंकन भी असाधारण रूप में हुआ है। लेडी हेरिंगहम के शब्दों में उनमें छाया और प्रकाश का जो संयोजन हुआ है, वह इटली में भी 17वीं शती ई0 से पूर्व देखने में नहीं आता। यह संयोजन और सामूहीकरण अद्‌भुत रूप से स्वाभाभाविक और आधुनिक है।

गुफा 19 में, जो गुफा 17 से कुछ पीछे का है, बुद्ध के अनेक चित्र और कपिलवस्तु की वापसी का दृश्य है। गुफा 1 और 2 इस क्रम में सबसे बाद के हैं। गुफा 1 में मार-धर्षण, पंचिक-कथा, शिवि और नाग जातक तथा कुछ अन्य दृश्य हैं। इस गुफा में पद्‌मपाणि बोधिसत्त्व का एक अनुपम चित्र है। उसकी धनुषाकृति भौंहें, छाया में अधखुली आँखें, पँखुड़ियों से उँगलियों में पकड़ा हुआ सुकुमार पद्‌म, एकावलि के बीच इन्द्रनील आदि सभी आश्चर्यजनक रूप से अंकित हुए हैं और वे सभी चित्रकारों के लिए एक चुनौती देते हुए से जान पड़ते हैं। गुफा 2 के चित्रों में श्रावस्ती का चमत्कार, क्षदन्तिवादिन और मैत्रीबल जातक तथा राजप्रासाद, इन्द्रलोक आदि के दृश्य हैं। इस गुफा के आकृति अंकन में चित्रकारों ने अद्‌भुत भाव-भंगिमाओं का संयोजन किया है। इस गुफा के चित्रों में वाम-पद मोड़ कर स्तम्भ से टिके बाँये कर के अँगूठे और अनामिका को मिलाये गुनती-सी नारी और झूला झूलती रानी इरन्दी के अंकन में अद्‌भुत अल्हढ़ता टपकती है।

विषय की दृष्टि से इन गुफाओं के सभी चित्र धार्मिक हैं और उनके अंकन का उद्‌देश्य भी धार्मिक ही है। किन्तु वातावरण, भाव आदि दृष्टियों से उनकी अभिव्यंजना में लौकिकता और नागरकता ही अधिक दिखायी देती है। अजन्ता के चित्रकार सौन्दर्य उद्‌घाटन और रस-बोध में चरम सीमा तक रम गये हैं; किन्तु उन्हें अपनी रचना की विषय-भूमि एकदम भूल गयी हो, अध्यात्मिकता और बौद्धिकता का एकदम लोप हो गया हो, यह बात नहीं है। उनमें धार्मिक चेतना की भी झलक बनी हुई है। अनेक दृश्यों में उन्होंने प्रधान व्यक्ति को अन्तर्ज्योति में पूर्ण और विराग-मय भाव से परिप्लावित ढंग से अंकित किया है कि वे समस्त दृश्य पर छाये हुए प्रतीत होते हैं।

अजिण्ठा के चित्रकारों ने नगरों, महलों, घरों, कुटियों, जलाशयों आदि के दृश्य नाना रूपों में अंकित किये हैं। मानव आकृतियाँ जीवन से अविच्छिन सम्बन्ध बनाये हुए, अपने विविध रूपों में चित्रित की गयी है। उनके अर्द्ध-निमीलित नेत्र, कमल की पँखुड़ियों-सी छन्दस की गतिशील मुद्राओं में नमित होती हुई उँगलियाँ, उनकी भंग, द्विभंग, त्रिभंग आदि भंगिमाएँ देख कर लगता है कि चित्रकारों ने उनके अंकन में रंगमंच के नटों की गति, नृत्यकला का कम्पन, स्फुरण, तरंग-विस्तरण तथा छन्दस-क्रिया के अत्यन्त सुकोमल रूप को आत्मसात् कर अपनी तूलिका से आकृतियों में रूपायित किया है। ये चित्रकार न केवल रूपायन में कुशल, वरन् मानवीय जीवन के प्रति संवेदनशील और उदार भी थे।

वृत्तचित्र और आकृति अंकन के अतिरिक्त अलंकरण उपस्थित करने में भी अजिण्ठा के चित्रकारों ने अपना अद्‌भुत कौशल प्रदर्शित किया है। उन लोगों ने चित्रों के अलंकरण के निमित्त पत्रावली, पुष्प, वृक्ष, पशु, पक्षियों का अनन्त रूप में प्रयोग किया है। उनमें सूक्ष्मतर विधिता इतनी अधिक है कि किसी प्रकार की पुनरावृत्ति उनमें ढूँढ पाना कठिन ही नहीं, प्रायः असम्भव है। यही नहीं, उन्होंने अपने अलंकरणों में सुपर्ण, गरुड़, यक्ष, गन्धर्व, अप्सराओं आदि का भी जगह-जगह मनोरम और सुकुमार रूप में उपयेाग किया है। अलंकरण में चित्रकारों की कल्पना ने अद्‌भुत उड़ान भरी है। इस प्रकार के अलंकरण गुफा 1 में विशेष हैं, गुफा 2 की छत भी ऐसे ही अलंकरणों से भरी है। पहले गुफा की छत पर साँड़ों की लड़ाई का जो अंकन हुआ है, वह अपनी गति और अभिव्यक्ति में असाधारण है।

बाघ की चित्रकला

बाघ के गुफा, मध्यप्रदेश में महू सैनिक छावनी से 90 मील दूर अमझेरा नामक स्थान के निकट, बाघ नामक नदी के किनारे स्थित है। यहाँ के गुफाओं की संख्या नौ है। अजन्ता की अपेक्षा यहाँ का पत्थर अधिक नरम होने के कारण वे अधिक क्षतिग्रस्त हैं। इन गुफाओं को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय लेफ्टिनेंट डैगरफील्ड को है। उन्होंने 1818 ई0 में इसके सम्बन्ध में जानकारी प्रकाशित की थी। जब लोगों का ध्यान इन गुफाओं की ओर गया तो ग्वालियर राज्य के पुरातत्व विभाग ने उनकी रक्षा और सफाई की व्यवस्था की। अजिण्ठा के समान ही इन गुफाओं की दीवारें, छतें, स्तम्भ आदि चित्रित थे। किन्तु इन चित्रों के केवल कुछ ही अंश अब गुफा 4 और 5 में बचे हैं। उनके जो अंश आज पहचाने जा सकते हैं, उनसे केवल यही अनुमान किया

जा सकता है कि वे बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित न होकर जातक और अवदान की कथाओं के आधार पर बने थे। किन्तु वे किन कथाओं के अंश हैं, यह पहचानना आज सम्भव नहीं है। चित्रों के जो टुकड़े वहाँ बचे हैं, उनका उल्लेख मात्र इन शब्दों में किया जा सकता है।[23]

1. दो स्त्रियाँ चँदोवे के नीचे बैठी हैं। उनमें एक शोकाकुल है। वह अपने मुख को एक हाथ के सहारे आँचल से ढँके हुए है। दूसरी स्त्री उसे सान्त्वना दे रही है अथवा उसकी करुण कहानी सुन रही है। चँदोबे के ऊपर कबूतर के दो जोड़े अंकित जान पड़ते हैं।
2. किसी जंगल या बगीचे के बीच चार साँवले व्यक्ति अधोवस्त्र मात्र पहने नीले और श्वेत गद्दीनुमा आसन पर पद्मासन में बैठे शास्त्रार्थ कर रहे हैं। बाँयी ओर बैठे दो व्यक्ति रत्न-जड़ित शिरोवस्त्र धारण किये हुए हैं। दाहिनी ओर बैठे शेष दो व्यक्ति नंगे सिर हैं।
3. इस अंश के स्पष्टतः ऊपर-नीचे दो भाग हैं। ये दोनों विभाग किसी एक दृश्य से सम्बन्धित हैं अथवा दो भिन्न दृश्यों के अंश हैं जो बादलों के बीच उड़ते हुए प्रतीत होते हैं उनमें से एक अधोवस्त्र धारण किये हुए है। शेष के केवल उत्तमांग ही दिखाई पड़ रहे हैं; उनका शेष अंश बादलों में छिपा है। उनके हाथ फैले हुए हैं। उनकी यह मुद्रा या तो उनके उड़ने का द्योतक है या वे देवगण हैं और किसी को आशीर्वाद दे रहे हैं। निचले अंश में पाँच सिर दिखायी पड़ते हैं जो सम्भवतः नर्तकियों के हैं। उनमें एक वीणा लिये जान पड़ती हैं। इन्होंने अपने केशों को एक गाँठ के रूप में पीछे बाँध रखा है। एक की केशग्रन्थि में श्वेत रज्जुका तथा नील पुष्प ग्रंथित हैं।
4. इसमें गायिकाओं के दो समूहों का अनुमान किया जाता है। बायीं ओर के समूह में सात स्त्रियाँ एक पुरुष नर्तक को घेर कर खड़ी हैं। नर्तक चोगा और पाजामा पहने खड़ा है, उसके केश दोनों ओर बिखरे हुए हैं। उसका दाहिना पैर झुका और हथेली नृत्य मुद्रा में ऊपर उठी है। गायिकाओं में एक मृदंग, तीन दण्ड तथा तीन मँजीरा और शेष तीन दण्ड बजा रही हैं।
5. सम्भवतः यह घोड़ें का जुलूस दृश्य हैं। इसमें सत्रह घुड़सवार हैं जो पाँच छः पंक्तियों में चल रहे हैं। उनमें मध्य में स्थित एक घुड़ सवार राज-चिह्नों से सुशोभित लगता है।
6. यह जुलूलस का दृश्य जान पड़ता है। इसमें छह हाथी और तीन घुड़सवार हैं, जिनमें से अब केवल एक घुड़सवार के चिह्न बचे हैं। जुलूस में जो सबसे आगे हाथी था वह नष्ट हो गया है, केवल उसका सवार ही दिखाई पड़ता है, कोई राज-पुरुष है। इसके ठीक पीछे एक घोड़ा है। जुलूस के मध्य में छह हाथियाँ हैं। उनमें दो बड़ी और दो छोटी हैं। छोटी हार्थियों में से एक आगे बढ़ने को सचेष्ट है, महावत अंकुश लगाकर उसे रोकने की चेष्टा कर रहा है। बड़ी दो हाथियों पर केवल महावत जान पड़ते हैं। दोनों छोटी हाथियों पर महावत के अतिरिक्त तीन-तीन स्त्रियाँ बैठी हैं। इस दृश्य के पीछे तोरणद्वार सरीखी कोई वास्तु है।

बाघ के ये चित्र छठी शती ई0 के आस-पास के अनुमान किये जाते हैं और वे अजन्ता के चित्रों की ही परम्परा में हैं; किन्तु चित्रों के जो अंश उपलब्ध हैं, उनमें आध्यात्मिकता की वह झलक नहीं है जो अजन्ता में दिखाई पड़ती है। इस दृष्टि से इन्हें अजन्ता के चित्रों से कुछ भिन्न कहा जा सकता है। अन्यथा जिस लौकिकता और नागरिकता का चित्रण अजन्ता में हुआ है, वही यहाँ भी प्रस्फुटित है। अल्हड़, उल्लसित, उन्मद अनियिन्त्रत जीवन की झलक दिखाई पड़ती है। यहाँ भी चित्रकारों ने मानव और पशुओं को एक-सी सजीवता के साथ प्रस्तुत किया है।

संदर्भ ग्रंथ

अग्रवाल, वी. एस.(1965) -इंडियन आर्ट : ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन आर्ट फ्राम अरलियस्ट टाइम्स टू थर्ड सेन्चुरी ए.डी., वाराणसी
कुमारा स्वामी, ए. के. (1927) -हिस्ट्री ऑफ इंडियन एंड इन्डोनेि-यन आर्ट, लंदन
सालेटर, आर. एन.- लाइफ इन द गुप्त एज

Footnotes

[1]*जिसे आज हम अजन्ता कहते हैं,* उसका मूल नाम अजिण्ठा है। वहाँ के आस-पास के निवासी इसे इसी नाम से जानते हैं।
[2]मालविकाग्निमित्र, पृष्ठ संख्या 264; रघुवंश, 14/25
[3]अभिज्ञानशाकुन्तल, 6/16
[4]मालविकाग्निमित्र, अंक 4; विक्रमोर्वशीय, पृष्ठ संख्या 174
[5]मेघदूत, 2/22
[6]वही, 2/42
[7]अभिज्ञानशाकुन्तल, पृष्ठ संख्या 209-10
[8]वही, पृष्ठ संख्या 13
[9]वही, पृष्ठ संख्या 208
[10]अभिज्ञानशाकुन्तल, पृष्ठ संख्या 208
[11]अभिज्ञानशाकुन्तल, पृष्ठ संख्या 212
[12]वही, पृष्ठ संख्या 213-14
[13]अभिज्ञानशाकुन्तल, अंक 6
[14]कुमारसम्भव, 1/24; 47
[15]अभिज्ञानशाकुन्तल, अंक 6
[16]कुमारसम्भव, 1/32
[17]अभिज्ञानशाकुन्तल, पृष्ठ संख्या 116
[18]अभिज्ञानशाकुन्तल, पृष्ठ संख्या 119
[19]वही, पृ0 108, 118, 120; विक्रमोर्वशीय, पृष्ठ संख्या 178
[20]मेघदूत, 2/1, 6, 17; रघुवंश, 16/16
[21]शुक्रनीति, 4/4/147-50
[22]मालविकाग्निमित्र अंक 1
[23]द बाघ केब्ज, पृष्ठ संख्या 47-57

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,82-84
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 सितम्बर 2016

"प्राचीन स्थल- शृंग्वेरपुर के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों का अवलोकन

डॉ. ज़ेबा इस्लाम*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"प्राचीन स्थल- शृंग्वेरपुर के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों का अवलोकन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ज़ेबा इस्लाम* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

उत्तर प्रदेश के इलाहाबाद जनपद में स्थित सिंगरौर नामक स्थान प्राचीन काल में श्रृंग्वेरपुर के नाम से प्रसिद्ध था। गंगातट पर स्थित इस स्थान से केवट द्वारा भगवान राम को गंगातट उतारने का प्रसंग रामायण में मिलता है। महाभारत[1] में इसकी गणना 'तीर्थों' में की गई है। श्रृंगी श्रृषि का आश्रम यहीं पर था। अतः इस स्थल का नाम श्रृंग्वेरपुर हुआ। भवभूति ने उत्तम रामचरित में भी इस स्थान का वर्णन किया है।

राम कथानक में श्रृंगवेरपुर का अपना महत्व है, श्रीराम, लक्ष्मण और सीता जब वनवास के लिये निकले तो उन्होंने प्रथम रात्रि अयोध्या से लगभग 20 किमी0 दक्षिण की ओर चलकर तमसा नदी के किनारे व्यतीत की। दूसरे दिन सूर्योदय के पूर्व ही, अयोध्यावासियों को जो उनके साथ आये थे, सोता हुआ छोड़कर, श्री राम सीता, लक्ष्मण सुमन्त के रथ में दक्षिण की ओर चल दिये और क्रमशः वेदश्रुति (वर्तमान बेसुई) गोमती तथा स्यंदिका सई नदियों को पार करके गंगा के किनारे श्रृंगवेरपुर पहुंचे। राम के जीवन से सम्बन्धित होने के कारण भारतवासियों के सांस्कृतिक जीवन में इसका स्थान महत्वपूर्ण था। अयोध्या से प्रयाग की ओर बढ़ते हुए राम ने लक्ष्मण व सीता के साथ श्रृंग्वेरपुरम में गंगा-तट पर वर्तमान इंगुही-वृक्ष की छाया में एक रात्रि विश्राम किया था। उपुर्यक्त मांगलिक वृक्ष एक श्रद्धेय तरू के रूप में रघुवंश[2] एवं उत्तमरामचरित आदि ग्रन्थों में भी निरूपित है। रघुवंश में श्रृंग्वेरपुर को 'निषादाधिपति-पुर' कहा गया है। इसके अनुसार श्रृंग्वेरपुर में रामचन्द्र ने अपना मुकुट एवं राजकीय वेश उतार दिया था तथा उनके स्थान पर जटा जूट एवं मुनि रूप धारण कर लिया।

''पुरं निषादाधिपतेरिदं तधस्मि-मथा मौलिमणि विहाय/ जटासु बद्धास्वरूदत्सुमनत्रः कैकेर्यिकामाः फलितास्तवेति।'' (रघुवंश : सर्ग 13, श्लोक 59)

* प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इससे प्रमाणित होता है कि राम ने गंगा को पार किया था। ऋग्वेद के प्राथमिक सूक्तों का काल 5000 ई0 पूर्व निश्चित किया गया है, अतः उस समय श्रृंग्वेरपुर विधमान था। श्रृंग का अर्थ है ऋषि और वेद का अर्थ है आश्रम। इस प्रकार श्रृंग्वेरपुर का नाम ही ऋषि आश्रम है।

गोस्वामी तुलसीदास[4] ने रामचरित मानस और कवितावली में श्रृंग्वेरपुर का जो वर्णन किया है, वह परवर्ती साहित्य में बहुत प्रभावकारी कहा गया है। तुलसीदास के काल में श्रृंग्वेरपुर के आस-पास शिव उपासक अधिक थे, सम्भवतः ये लोग नागवंशीय रहे होगें, उपरोक्त साहित्य से श्रृग्वेरपुर की ऐतिहासिकता की पुष्टि होती है।

पुरातात्विक खोजों के द्वारा भी श्रृंग्वेरपुर की ऐतिहासिकता प्रमाणित होती है। डॉ0 बी0बी0 लाल के निर्देशन में श्रृंग्वेरपुर में पिछले कुछ वर्षों से उत्खनन कार्य चल रहा है। यहां से प्राप्त अवशेषों से नगर के प्राचीन वैभव पर प्रकाश पड़ता है। श्रृंग्वेरपुर में धरातल से लगभग 10 मीटर की ऊँचाई वाला एक विशाल टीला है। जो गंगा के किनारे-किनारे एक किलोमीटर तक फैला है। टीले के पहले और बाद वाले स्थलों पर नदी के बहाव को ध्यान में रखने पर यह अनुमान होता है कि, प्राचीनकाल में नदी की धारा वर्तमान धारा से लगभग एक किलोमीटर हटकर रही होगी, और सम्भवतः यहीं कारण है कि श्रृंग्वेरपुर के तत्कालीन राजा या नगरपालकों के नगरवासियों के लिए पेयजल की व्यवस्था हेतु इतना बड़ा तालाब बनाना पड़ा।

इलाहाबाद संग्रहालय के सतीश चन्द्र काला[6] ने श्रृंग्वेरपुर के वानरों के साथ राम लक्ष्मण की एक पत्थर की मूर्ति प्राप्त की है जो 5वीं सदी की है। इस पुरास्थल को पुरातातविक मानचित्र पर स्थापित करने का कार्य शिमला उच्च अध्ययन संस्थान एवं भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के संयुक्त तत्वाधान में के0एन0दीक्षित एवं बी0बी0 लाल ने किया। उत्खनन से द्वितीय सहस्त्राब्दी ईसा पूर्व के अन्तिम चरण से मध्य काल के जमाव प्रकाश में आये हैं, जिन्हें निम्न काल खण्डों में विभाजित किया गया है - • कालखण्ड - I; 1050-1000 B.C, • कालखण्ड - II; 950 -700 B.C, • कालखण्ड - III; 700 - 250 B.C, • कालखण्ड - IV; 250 B.C - 200 A.D., • कालखण्ड - V; 300 B.C -600 A.D, • कालखण्ड - VI; 600-1300 A.D, • कालखण्ड - VII; 17th & 8 th A.D.

पहली संस्कृति गैरिक मृद भाण्ड संस्कृति है। पुरातत्वविदों की दृष्टि में प्रथम काल से लेकर चतुर्थ काल तक की सामग्री बड़े महत्व की है। इसके आधार पर भारत के प्राचीन इतिहास के कालक्रम का पुनः कुछ विस्तार किया जा सकता है। इस प्रकार श्रृंग्वेरपुर शुंग काल, कनिष्क काल तथा गुप्त काल में बड़ी उन्नत अवस्था में था। प्रथम काल में ही पक्के तालाब का निर्माण उसकी उन्नत अवस्था को प्रकट करता है। तालाब में एक मिट्टी की मूर्ति प्राप्त हुई है जो हरीति देवी की है। वास्तव में हरीति पूतना की ही अनुकृति है, पूतना की पूजा आज भी इस क्षेत्र में बच्चों के संरक्षण हेतु की जाती है।

द्वितीय संस्कृति के पात्र काले-लाल, काले पुते, चमकीले धूसर आदि हैं। इस संस्कृति स्तर से अस्थि निर्मित बाण, फलक, बंधेक, मिट्टी के बने मनके मिलते हैं।

प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व की दो मुद्रायें उपलब्ध हुई है, जिस पर एक पर 'धनकस' तथा दूसरी पर 'गोसलकस' लिखा है। अनुमान किया जाता है कि गुप्त राजाओं के पूर्व जो नागवंशीय लोग इस क्षेत्र में रहते थे उन्हीं के वंशजों को 'कस' कहा गया है। नागवंशीय लोगों में ही भार शिव थे। जिनकी स्मृति में पास ही में भाराशिव गाँव अभी भी विद्यमान है। श्रंग्वेरपुर से प्राप्त मुद्रायें, सिक्के, तालाब, मृदभाण्ड आदि से ज्ञात होता है कि उस समय वहां पर्याप्त उन्नति थी। 16वीं शती के अन्त में विसेन क्षत्रियों ने श्रृंग्वेरपुर को पुनः बसाया।

षष्ठ काल में जो सामग्री श्रृंग्वेरपुर से प्राप्त हुई है उसमें 13 चांदी के सिक्के, कुछ आभूषण हैं, जो गहड़वाल राजा के समय के हैं। सप्तम काल में अवशेष प्राप्त हुये हैं उसमें बस्तियों के अवशेष विशेषतः सुरक्षित हैं। इस प्रकार श्रृंग्वेरपुर मध्य गंगा घाटी का एक प्रमुख पुरातात्विक स्थल है। इस संस्कृति के काल ई0 पू0 250 से 200 ई0 तक माना गया है। इस काल में उत्तर भारत में नगरीकरण अपने उत्कर्ष पर था। इस प्रकार श्रृंग्वेरपुर के उत्खनन से मध्य गंगा घाटी की प्रारम्भिक संस्कृति के रूप में गैरिक मृदभाण्डों की प्राप्ति विशेष महत्वपूर्ण है।

वास्तव में श्रृंग्वेरपुर का इतिहास अत्यन्त महत्वपूर्ण है। बौद्ध धर्म का हिन्दू धर्म में विलय की गाथा का जितना विषद वर्णन यह स्थान करता है उतना दूसरा कोई और नहीं। श्रृंग्वेरपुर की प्राचीन स्थिति क्षीण हुई, पुराने बड़े ईंटों से बना पक्का तालाब, उसमें लगी सीढ़ियाँ, आज भी उसके अतीत की समृद्धता को प्रकट करती हैं।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1]महाभारत वनपर्व -वेद व्यास, 85/65-66
[2]रघुवंश -कालिदास, 13/59
[3]वही, पृष्ठ संख्या 126
[4]रामचरित मानस -तुलसीदास, वनयात्रा
[5]बी0बी0 लाल -एक्सकेवेशन्स एट श्रृंग्वेरपुर (1977-86), खण्ड -1, ए0 एस0 आई0, नई दिल्ली, 1993
[6]श्रृंग्वेरपुर गौरवम -प्रो0 संगम लाल पाण्डेय, पृष्ठ संख्या 93
[7]ऋग्वेद - 3/33/9
[8]उत्तररामचरित, अंक-1, श्लोक - 21

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,85-87
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 31 अगस्त 2016

वैदिक साहित्य में ऋतु-विमर्श

डॉ. सुमन दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैदिक साहित्य में ऋतु-विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुमन दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम प्रकृति की उत्पत्ति हुई। इस प्रकृति से ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना हुई। जल, वायु, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि इस सृष्टि के निर्माण में सहायक तत्त्व हैं, जिस प्रकार सूर्य और पृथ्वी के सम्बन्ध से रात और दिन की संरचना हुई। उसी प्रकार दिन और रात्रि के घटने-बढ़ने से ऋतुओं का निर्माण हुआ है। सूर्य की किरणों से हमें प्रकाश मिलता है उसी से ग्रीष्म की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि जब दिन में सूर्य की किरणों का प्रकाश रहता है तब ठंड़क रहती है। जिस समय रात की अपेक्षा दिन अधिक बड़ा होता है उस समय सूर्य की किरणों से हमें अधिक गर्मी मिलती है। इसलिए उस काल विशेष को 'ग्रीष्म ऋतु' कहते हैं। इसके विपरीत जब दिन छोटा और रात लम्बी होने लगती है, तब सूर्य की किरणों से हमें कम गर्मी मिलती है, और रात को ठण्डक अधिक लगती है, उस काल विशेष को 'शीत ऋतु' या 'जाड़ा' कहते हैं।

नैसर्गिक रूप से प्रकृति मानव की परम सहचरी रही है। वेदों में प्रकृति की देवता के रूप में आराधना की गई है। इन्हीं प्राकृतिक देवताओं के परस्पर सामंजस्य से ऋतुओं का निर्माण हुआ। ऋग्वेद में 'ऋतु' शब्द का प्रयोग कई स्थानों पर किया गया है। ऋग्वेद के भाष्यकार सायण ने 'ऋतून' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार की है- ऋतून् ऋगतौ अस्मादौणादिकोभावेकुप्रत्ययः लक्षणेअनोःकर्मप्रवचनीयत्वम् कर्मप्रवचनीययुक्तेइतिद्वितीया संहितायांदीर्घादटिसमानपादेइतिनकास्यरूत्वम्। अत्रानुनासिकः पूर्वस्यतुवेतिरोः पूर्वस्यवर्णस्यसानुनासिकत्वम्।'' यहाँ पर 'ऋतून्' शब्द का अर्थ 'आगमन काल' लिया गया है।[1] ऋग्वेद में ऋतून्' शब्द का अर्थ 'ऋतु' के रूप में ही किया गया है।[2] ऋग्वेद में ऋतु' शब्द के स्थान पर 'त्रिनाभिचक्रं शब्द का प्रयोग किया गया है। जिसका अर्थ सायण ने इस प्रकार किया है- त्रिस्रोनाभयः नाभिस्थनीयाः संबद्धा वात्रयऋतवोयस्यततादृशं केते ग्रीष्म वर्षा हेमन्ताख्या।[3] शब्दकोश में 'ऋतू' शब्द का मौसम, वर्ष का एक भाग अर्थ ग्रहण करते हुई इस प्रकार व्युत्पत्ति की गई है- ऋ+तु, कित्। ऋतुएँ छः हैं- 'शिशिरश्च. वसन्तश्च गीष्मो वर्षा शरद्धिमः 'शिशिर' और 'हिम' या 'हेमन्त' को एक गिनने पर ऋतुओं को पांच भी माना जाता है।[4]''

* [352/ 158] अलोपीबाग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऋग्वेद में मुख्य रूप से एक वर्ष में तीन ऋतुएँ मानी गई हैं। किन्तु इनका नाम आज की भाँति स्पष्ट नहीं था। ऋग्वेद के एक मंत्र में 'वसन्त' 'ग्रीष्म' और 'शरद्' का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में वर्षा ऋतु' को 'प्रावृश' और शीतऋतु को 'हिमा' या 'हेमन्त' शब्द से सम्बोधित किया गया है। ऋग्वेद में 'शीत' और ग्रीष्म दो ऋतुओं द्वारा वर्ष के आरम्भिक विभाजन का स्पष्ट चिन्ह नहीं मिलता है। इस स्थल पर 'हिमा' और 'समा' वर्ष के लिए प्रयुक्त केवल दो सामान्य संज्ञाएँ हैं।

'सप्तयुञ्जन्तिरथमेकचक्रमेकोअश्वोवहतिसप्तनामा। त्रिनाभिचक्रमजरमनर्वयत्रेमाविश्वाभुवनाधितस्थुः।।'[5]

ऋग्वेद में सूर्य और चन्द्रमा ये दोनों शिशु अपनी शक्ति से पूर्व-पश्चिम में विचरण करते हैं। ये क्रीड़ा करते हुए यज्ञ में जाते हैं। इनमें से चन्द्रमा संसार में ऋतु व्यवस्था करते हुए अश्व को देखते हैं और सूर्य ऋतु -विधान करते हुए बार-बार जन्म लेते हैं अर्थात् उदय और अस्त होते हैं- 'पूर्वापरंचरतोमायैयतो शिशूक्रीळन्तौ परियातोअध्वरम् विश्वान्यन्योभुवनाभिचष्टऋतूँ-रन्योविदधज्जायतेपुनः।[6]

ऋग्वेद में अग्नि के तीन जन्मस्थल बताये गये हैं- 1. समुद्र 2. आकाश तथा 3. अन्तरिक्ष। अग्नि ही सूर्य के रूप में अवस्थित होकर ऋतुओं का विभाजन करके पृथ्वी के सारे प्राणियों के हित के लिए पूर्व दिशा का यथाक्रम निष्पादन करता है अर्थात् सूर्य ने काल (ऋतु) और दिक् दोनों को बनाया है।

'त्रीणि जानापरिभूषन्त्यस्यसमुद्रएकंदिव्येकमप्सु। पूर्वामनुप्रदिशंपार्थिवानामृतून्प्रशासद्विदधावनुष्ठुः।।'[7]

ऋग्वेद दशम् मण्डल के 'पूरुष सूक्त' में सम्पूर्ण सृष्टि को एक यज्ञ के रूप में चित्रित किया गया है। इस यज्ञ को जब देवताओं ने पुरूष रूप हवि के द्वारा सम्पन्न किया तब इस सृष्टि रूपी विशाल यज्ञ में वसन्त ऋतु को आज्य (घृत) ग्रीष्म ऋतु को ईंधन तथा शरद ऋतु को हवि बनाया।

'यत्यपुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत। वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः।।[8]

शुक्ल यजुर्वेद में छः ऋतुओं का स्पष्ट रूप से नामोल्लेख प्राप्त होता है। जिसमें वसन्त ऋतु की गणना सर्वप्रथम की गई है- 'वसन्त ऋतुः। ग्रीष्म ऋतुः। वर्षा ऋतुः। शरद ऋतुः हेमन्त शिशिरावृत।।'[9]

शुक्ल यजुर्वेद के इन मंत्रों में ऋषि यजमान से कहता है कि यजमान तुम पूर्व दिशा में विहरण करो, वसन्त ऋतु तुम्हारी रक्षा करे। दक्षिण दिशा में विहरण करो, ग्रीष्म ऋतु तुम्हारी रक्षा करे। पश्चिम दिशा में विहरण करो, वर्षा ऋतु तुम्हारी रक्षा करे। उत्तर दिशा में विहरण करो, शरद ऋतु तुम्हारी रक्षा करे। ऊर्ध्व दिशा में विहरण करो, हेमन्त और शिशिर ऋतु तुम्हारी रक्षा करे। इस प्रकार प्रत्येक दिशाओं में षड् ऋतुएँ यजमान की रक्षा करती हैं।

'प्राचीमारोह गायत्री त्ववतु रथन्तर ∞ साम त्रिवृत्स्तोमो वसन्त ऋतुर्ब्रह्मद्रविणम्।। स्तोमो ग्रीष्म ऋतुः क्षत्रं द्रविणम्।। प्रतीचीमारोह जगती त्ववतु वैरूपसाम सप्त-दशस्तोमो वर्षा ऋतुर्विड्द्रविणम्।। उदीचीमारोहानुष्टुत्वावतुवैराज सामैकविशस्तोमः शरदृतुः फलं द्रविणम्।। ऊर्ध्वामारोह पड़िस्त्ववतु शाक्कररैवते सामनी त्रिणवत्रर्यास्त्र शै स्तोमौ हेमन्तशिशिरावृत् वर्चो द्रविणं प्रत्यस्त नमुचेः शिरः।।'[10]

अथर्ववेद के छठें काण्ड में षड्ऋतुओं का वर्णन प्राप्त होता है। ग्रीष्मादि छः ऋतुओं के अभिमानी देवताओं की स्तुति करते हुए उनसे गौ, पुत्र, पौत्र इत्यादि की कामना की गई है।

'ग्रीष्मो हेमन्तः शिशरो वसन्तः शरद वर्षाः स्विते नोदधात्। आनों गोषु भजता प्रजायां निवात इद्वः शरणे स्याम।।'[11]

अथर्ववेद में वर्षा ऋतु के आगमन की प्रक्रिया वर्णित है। जिस अन्तरिक्ष में नक्षत्र चक्र नियमित रूप से घूमता है, उसे प्राप्त होकर सूर्य रश्मियाँ सब पार्थिव रस को लेती हुई सूर्य मण्डल में चढ़ जाती हैं और फिर वहाँ से वर्षा करने लगती हैं और पृथ्वी को भिगो देती हैं- 'कृष्ण नियानं हरयः सुपर्णो अपो वसाना दिवमुत पतन्ति। त आववृत्रन्त्सदनादृतस्यादिद घृतेन पृथ्वीव्यूदुः।।'[12]

अथर्ववेद में सूर्य को जल का दोहन करने के कारण 'गौः' कहा गया है- आयं गौः।[13] सब प्रजाओं को फल देने वाले यह वैश्वानर अग्नि, देवताओं को यज्ञात्मक अन्न प्राप्त कराते और सूर्य के रूप में वसन्तादि ऋतुओं की रचना करते हैं- 'स विश्वा प्रति चाक्लृप ऋतंरुत् सृजते वषी। यज्ञस्य वय उन्तिरन्।'[14]

अथर्ववेद में अधिमास के रूप में सातवीं ऋतु का भी उल्लेख प्राप्त होता है- अहंमृतूं रजनयं सप्तसायकम्।[15]

ऐतरेय ब्राह्मण में ऋतुओं के बारे में कहा गया है जैसे देवता एक दूसरे के घर पर निवास नहीं करते उसी प्रकार से एक ऋतु अन्य ऋतु के समय नहीं होती- 'न वै देवा अन्योऽन्यस्य गृहे वसन्ति। नर्तुऋतोगृहेवसति।'[16]

तैत्तिरीय ब्राहमण में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के भिन्न ऋतुओं में अग्न्याधान करने का वर्णन है। ब्राह्मण वसन्त ऋतु में, क्षत्रिय ग्रीष्म ऋतु में तथा वैश्य शरद ऋतु में अग्नि का आधान करें- 'वसन्ते ब्राह्मणेग्निमाधीत् ग्रीष्मे राजन्य आदधीत्, शरदि वैश्य आदधीत्।'[17]

ताण्डय ब्राह्मण के अनुसार कुछ यज्ञ विशिष्ट मासों तथा विशिष्ट पक्षों में करने का विधान है- 'एकाष्टकायां दीक्षरेन्-फाल्गुनी पूर्णमासे दीक्षेरन्।'[18]

तैत्तिरीय आरण्यक में ऋतुओं का बड़ा ही वैज्ञानिक रूप से वर्णन प्राप्त होता है। इसमें ऋतुओं से सम्बन्धित होने वाले रोग के बारे में जैसे वर्षाऋतु में रोग की उत्पत्ति तथा पाण्डु रोग का प्रसार होता है- 'अदुःखो दुःखचक्षुरिव तथा पीतइवद्देश्यते।[19]

अश्व के अवयवों में कालादि की दृष्टि से बृहदारण्यकोपनिषद् के प्रारम्भिक मंत्र 'ऊँ' उषा वा अश्वस्य मेधस्य शिरः' में उषा (ब्राह्ममुहूर्त) यज्ञसम्बन्धी अश्व का शिर है। इसी प्रकार से आगे 'संवत्सर आत्मा, संवत्सरो द्वादशमासस्त्रयो दशमासो' काल के अवयवों का संवत्सर ही आत्मा हैं, संवत्सर बारह या तेरह महीने का होता है- 'ऋतवोड्गानिसंवत्सरावयवत्वादड्गसाधर्म्यात्।'[20] ऋतुएँअंड्ग हैं, क्योंकि संवत्सर के अवयव होने के कारण अड्गों से उनकी समानता है।

इस प्रकार वैदिक साहित्य में ऋतु-विधान ऋग्वेद, शुक्ल-यजुर्वेद, अथर्ववेद, ऐतरेय ब्राह्मण, शतपथ-ब्राह्मण, ताण्डय-ब्राह्मण, तैत्तिरीय आरण्यक, उपनिषद् तथा ज्योतिष शास्त्र में बड़े ही वैज्ञानिक रूप से किया गया है। इसी के आधार पर प्राचीन काल में और आधुनिक काल में भी मौसम वैज्ञानिक मौसम के विषय में जानकारी प्रदान करते हैं। ज्योतिषशास्त्री मौसम-गणना के अनुसार मनुष्य पर पड़ने वाले विभिन्न ग्रहों के प्रभाव के बारे में भविष्यवाणी करते हैं तथा कृषि-वैज्ञानिक ऋतुओं के अनुसार होने वाली फसलों की जानकारी प्रदान करते हैं। जिससे ऋतुओं के प्रभाव से होने वाली हानियों से बचा जा सके और किस ऋतु में कौन फसल लगाना लाभप्रद है इसकी समुचित जानकारी प्राप्त हो सके।

संदर्भ

[1]*ऋग्वेद,* मं.। अ. 9 सू. 49 मं. 3
[2]*ऋग्वेद,* मं.। अ. 15 सू. 95 मं. 3
[3]*ऋग्वेद,* मं.। अ. 22 सू. 164 मं. 2
[4]*संस्कृत-हिन्दी कोष* -वामन शिवराम आप्टे
[5]*ऋग्वेद,* मं.। अ. 22 सू. 164 मं. 2
[6]*ऋग्वेद,* मं.।0 अ. 7 सू. 85 मं. 18
[7]*ऋग्वेद,* मं. 1 अ. 15 सू. 95 मं. 3
[8]*ऋग्वेद,* मं.।0 अ. 7 सू. 90 मं. 6
[9]*शुक्ल यजुर्वेद,* 10. 10- 14
[10]*अथर्ववेद,* का. 6 अ. 6 सू. 55 मं. 2
[11]*अथर्ववेद,* का. 6 अ. 3 सू. 23 मं. 1
[12]*अथर्ववेद,* का. 6 अ. 4. सू. 31 मं. 1
[13]*अथर्ववेद,* का. 6 अ. 4. सू. 36 मं 2
[14]*अथर्ववेद,* का. 6 अ. 7 सू. 61 मं. 2
[15]*ऐतरेय ब्राह्मण,* 5. 2. 4.
[16]*तैत्तिरीय ब्राह्मण,* 1. 1.
[17]*ताण्डय ब्राह्मण,* 5. 9. 17
[18]*तैत्तिरीय आरण्यक,* प्र. 1 अ. 3, 4
[19]बृहदारण्यकोपनिषद्, पृष्ठ संख्या 41, 43

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,88-90
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 02 सितम्बर 2016

नाट्यगृहभूमिः

विजय कुमार*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *नाट्यगृहभूमिः* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विजय कुमार* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

नाट्यशास्त्रम् पंचमो वेदः[1] मतम्। तेन लक्षितं नाट्यं यज्ञवद् सानुष्ठानं भवति। अनुष्ठानं यत्र कुत्रचित् न कर्तुं युक्तम्। तदर्थं शास्त्रसम्मतं स्थानं मुहूर्त्तं चापि अपेक्षेते।

यतः नाट्यं यज्ञकल्पमनुष्ठानमस्ति तस्मादुत्तमे उपयुक्ते च भूमौ नाट्यगृहस्थापनं करणीयम्। तद्यथा-नाट्यशालाप्रतिष्ठायै प्रथमं परीक्ष्य उपयुक्तभूमिचयनं करणीयं भवति। परीक्षणमिदं वास्तुशास्त्रसम्मतं स्यात्। तत्रोक्तमस्ति गन्ध-वर्ण-रस-प्लवादिभिः भूमिः गृह-निर्माणाय परीक्षणीया भवति। ब्राह्मणेभ्यो मधुगन्धा, क्षत्रियेभ्यः घृतगन्धा, वैश्येभ्यः अन्नगन्धा, शूद्रेभ्यश्च रक्तगन्धा भूमिः सुखदायिनी भवति। तथैव ब्राह्मणेभ्यः मधुरा, क्षत्रियेभ्यः कट्वी, वैश्येभ्यः तिक्ता, शूद्रेभ्यश्च कशाया रजः- शालिनी भूमिः प्रशस्ता। प्लवदिशा ब्राह्मणादिभ्यः क्रमशः उदीची-प्राची-अवाची-प्रतीची प्लवगाभूमिः श्रेयस्करी भवति[2] सामान्यतः सर्वप्रकारकस्य गृहस्य निर्माणाय प्रशस्ता भूमिः सा भवति यत्र पवित्रद्रुमाः प्रसन्नाः स्युः; भूमिः समतला स्यात्; यत्र अवस्थिते सति अचिरं क्लान्तिः अपसरेत्; मनश्च शान्तिम् आनन्दं चानुभवेत्। तदेवोक्तं वराहसंहितायाम्, ''शस्तौषधिद्रुमलता मधुरा सुगन्धा/ स्निग्धा समा न सुचिरा च मही नराणाम्। अप्यध्वनि श्रमविनोमुपागतानां/ धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु।।''[3]

अपरत्र वराहसंहितायां शुभभूमिलक्षणं कृतमस्ति यत् हलेन कृष्ट्वा बीजवपने कृते सर्वस्मिन् भागे समत्वेन अङ्कुरः स्यात् अथवा ब्राह्मणैः गोभिश्च एकरात्रिपर्यन्तं निवस्यते भूमि शुद्धाः गृहनिर्माणयोग्या च भवति।[4] वास्तुसारसंग्रहे ग्रन्थे जनपदखेटपुरादीनां स्थापनयोग्या भूमिः वर्णिता वर्तते। नाट्यगृहस्य स्थापनम् एश्वेव आदेशेषु भवति। तस्मात्तेषां कृते या भूमिः प्रशस्ता सा एव नाट्यगृहार्थमपि प्रशस्यते इति मन्तव्यम्। तत्र वर्णितं- यदछिद्रम् अक्षतसीमानं स्यात् स्वादुशीतलवारियुक्तं च भवेत् किं च यत्र भूमिः कण्टक-अश्म -वल्मीकेभ्यः विरहिता स्यात्; तथैव यत्र दुरात्मनाः न वसेयुः, अन्य सर्वे वर्णाः वसेयुः मनः शान्तिंच लभेत् तत्रैव तेषां नाट्यगृहादीनां स्थापनं भवेदिति। समराङ्गणसूत्रमधारमुद्धरति वास्तुसारसङ्ग्रहे वासभूमिरेवं लक्षितास्ति। यस्मिन् क्षेत्रे समकालानि समानानि च बीजानि वपितानि च जायन्ते, यत् क्षेत्रं दैवप्रदत्तवारिणा नदनदद्यादिवारिणा च सुसिंचितं स्यात् तद्वासयोग्यं भवति। किं च विस्तृतसीमायुक्तं समतलं सुगन्धित-सुन्दर-शीतल-अवक्रसीमायुक्तं, देश-ग्राम-नगर-क्षेत्रं वा वासयोग्यं भवति। यस्मिन् आदेशे पुष्कलधान्योत्पादकानि

* शोध छात्र, संस्कृतविद्या विभाग, सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

क्षेत्राणि स्युः, सीमान्ते गोचराणि स्युः, पशुभ्यः पुष्कलं ग्रासादिकं भवेत्, यत्र च कण्टकविरहिताः वृक्षाः स्युः, सुशोभितप्रस्तराः सारल्येन उपलब्धाः भवेयुः, वल्मीकरहितसस्यं, जनक्षेत्रे सुमधुरसुस्वादुजलमुपलभ्येत, दुरात्मभिः अगम्यं, सुजनैः समूहेन ससुखं वसतिः स्यात्, तादृशमेव स्थानं वास्तुसारसम्मतं वासयोग्यं भवति। एतानि संगृहीतानि वचनानि एवं सन्ति।

''निष्पद्यन्तेऽधिकं यस्यां बीजान्युप्तान्ययत्नतः। कृष्टानुपहृतक्षेत्रे धन्या सा धान्यशालिनी।। जीवन्ति क्षेत्रिणो यस्यां नदनदद्या-दिवारिभिः। तां देवमातृकेत्याहुरनपेक्षितवारिदाम्।। शुभैः सुगन्धिभिः स्वादु शीतैः कान्तैरभङ्गुरैः। क्षेत्रेरक्षतसीमान्तैः सस्यनिष्पादिभिर्वृताः।। निष्कण्टकाश्मवल्मीकैः प्रभूतयवसेन्धनैः। विभक्त क्षेत्रसीमान्तैर्गोचरैरूपशोभिता।। स्थले तृणसमुद्राणामन्तरेषु वसुन्धराः। प्रशस्यन्ते समाऽऽ सन्ना स्वादु शीतलवारयः। दुरात्मनाऽधृष्या या तथाऽनेकाश्रयान्विताः। संरम्भस्त्रासनिर्मुक्तं मनश्च रमयन्ति याः।।[5] तास्वेवं गुणयुक्तासु महीषु विनिवेशयेत्। यथावस्थानं जनपदान् खेटग्रामपुरादिषु।।''

एतेभ्य दृष्टेभ्यः परीक्षणेभ्यो व्यतिरिक्तानि भूशुभाशुभपरीक्षणान्यपि शास्त्रेषु अवलोक्यन्ते। तदद्यथा :

(1) मत्स्यपुराणं भूमेः शुभाशुभपरिज्ञानाय द्वौ विधी निर्दिशति। तदद्यथा-

हलकृष्टे भूमौ यवादिबीजानि वापयेत्। त्रिपंचसप्तरात्रेण यत्र प्ररोहन्ति तानि सा श्रेष्ठोत्तमकनिष्ठा भूमिः क्रमशः तद्विन्ना कनिष्ठा च भूमिः गृहनिर्माणाय वर्जनीया।[6]

हस्तपरिमितं गर्तं गोमयेनोपलिप्य आमसरावस्थं घृतपूर्णं वर्तिकाचतुष्टयं दिक्चतुर्भ्यः दीपं प्रज्वालयेत्। यावद्धृतं सर्वाः वर्तिकाः प्रज्वलन्ति चेत् तत् सामूहिकवास्तु इति कथ्यते। तादृशी भूमिः वर्णचतुष्टयेभ्यः प्रासादगृहनिर्माणार्थं शुभा भवति। यदि केवलं ज्वलनशीला प्राचीदिग्वर्तिका स्यात् तर्हि ब्राह्मणाय, दक्षिणदिग्वर्तिका क्षत्राय, प्रतीचीदिग्वर्तिका वैश्याय, उदीचीदिग्वर्तिका च शूद्राय तस्याः भूमेः शुभत्वं सूचयति। यथोक्तं तत्र, ''अरत्निमात्रे गर्ते वै स्वनुलिप्ते तु सर्वतः। घृतमामसरावस्थं कृत्वा वर्तिचतुष्टयम्।। ज्वालयेद्भू- परीक्षार्थं सम्पूर्णं सर्वदिङ्मुखम्। दीप्तिपूर्वादि गृह्णीयाद्वर्णानामनुपूर्वशः। वास्तुसामूहिको नाम दीप्यते यस्तु सर्वतः। शुभदः सर्ववर्णानां प्रासादेषु गृहेषु च।।[7]

(2) पराशरस्तु मनुते यत् क्षेत्रमध्ये हस्तपरिमितं खनित्वा खाते मृत्तिकां संगृह्य अवटनिर्गतया मृदा आढकम् आपूर्य तोलयेत्। यदि चतुः षष्टिः पलानि भवन्ति तत्क्षेत्रं गृहनिर्माणाय शुभम् अन्यथा अशुभं वक्तव्यम्। किं च खान्निर्गता मृदं पुनः श्वभ्रे पूरयेत् यदि समं स्यात्तर्हि सा भूमिः समा; यदि श्वभ्रम् अपूरितं स्यात्तर्हि सा भूमिः अशुभा; यदि च खनिता पुनः पूरिता च मृत् श्वभ्रादधिका स्यात्तर्हि गृहादिनिर्माणाय शुभा मन्तव्या। अपरमपि, स्वच्छजलपूर्णा श्वभ्रं कुर्यात्। पदशतं गत्वा प्रत्यावर्त्य च यदि तच्छ्वभ्रं वारिपूर्णमेव भवेत्तर्हि सा भूमिः निर्माणाय शुभा अन्यथा अशुभा भवति। इदमेव परीक्षणं शब्दान्तरेण वास्तुसौख्यं समर्थयति यत् -

''गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम्। यदशूनमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं यत्।।''[8]

किं च,

श्वभ्रमथवाऽम्बुपूर्णं पदशतमित्वा गतस्य यदि नोनम्। तद्धन्यं यच्च भवेत् पलान्यपामादकं चतुःषष्टिः।।[9]

पराशरस्तु अमुमेव परीक्षणविधिम् अन्यद्रूपेण निर्दिशति यत्- जलपूर्णे खाते सन्ध्याकाले पुष्पचतुष्टयं, वर्णचतुष्टायम् अभिलिख्य रक्षेत्। परस्मिन् दिवसे प्रातः काले यस्य वर्णस्य सम्बद्धं पुष्पम् अम्लानं स्यात् तद् वर्णवासाय सा भूमिः शुभा, अन्टोभ्यश्च अनुपयुक्तेति मन्तव्यज्ञ। अथवा यस्यां भूमौ यस्य मनः अहेतुः आसन्नं स्यात् सा भूमिः तन्निवासयोग्या स्यात्। तदुक्तन्तत्र :

''निमेषशतमतीत्य स्यात्तच्छुभ्रजलगतां चारिणीम्। समुद्धृतामापूर्यमाणामतिरिक्तां मृदं चतुष्षष्टिपलाढ्याम्। आमे वा मृतपात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्यधिकम्। ज्वलति दिशिस्य शस्ता भूमिस्तस्य वर्णस्य।।''[10]

सर्वानैतान् परीक्षणविधीन् समाहृत्य गर्गेणापि उक्तमस्ति, ''तस्मिन् वा धरयेच्छ्वभ्रे चित्रं माल्यमनुक्रमात्। यच्चिरान्म्लायते माल्यं तद्वर्णं तत्र चावसेत्।। आम्रे वा मृन्मये पात्रे दीपवर्तिचतुष्टयम्। यस्यां दिशि प्रज्वलीति चिरं तस्यैव सा शुभा।।[11]

संदर्भसूची

[1]*ना0शा0,* 1/15।

[2]क्षेत्रमादौ परीक्ष्येत गन्धवर्णरसप्लवैः। सुमध्वाज्यान्नपिशितं गन्धं विप्रानुपूर्वकम्।। सितेषद्रक्तहरितकृष्णवर्णा यथाक्रमात्। मधुरं कटुकं तिक्तं काषायरससन्निभम्।। वास्तुसौख्यम्, दि0भागः श्लो0 14-15

[3]वास्तुसौख्यम् इत्यत्र द्वितीयोभागः, श्लो0 20 उद्धृता वराहसंहिता।

[4]कृष्टां प्ररूढबीजां गोऽध्युषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां च। गत्वा महीं गृहपतिः काले सांवत्सरोधिष्टे।। वास्तुसौख्यम्, तृ0भा0, श्लोक 41।

[5]वास्तुसारसंग्रहे, तुरीयं सोपानं, श्लोक 31-37 पर्यन्तम्।

[6]वास्तुसौख्यम्, दशपृष्ठे उद्धृतं मत्स्यपुराणमतम्।

[7]वास्तुसौख्यम्, द्वितीयोभागः, श्लोक 26-28 इत्यत्रोद्धृतं मत्स्यपुराणमतम्।

[8]वास्तुसौख्यम्, द्वितीयोभागः, श्लोक 24।
[9]वास्तुसौख्यम्, द्वितीयोभागः, श्लोक 25।
[10]वास्तुसारसंग्रहे, तुरीयं सोपानं, श्लोक- 16-17 पर्यन्तम्।
[11]वास्तुसौख्यम्, पृष्ठदशसंख्याके उद्धृतं गर्गस्य मतम्।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,91-96
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 सितम्बर 2016

वेदान्त दर्शन की शिक्षा तथा वर्तमान शिक्षा में इसकी उपादेयता

प्रियंका सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वेदान्त दर्शन की शिक्षा तथा वर्तमान शिक्षा में इसकी उपादेयता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *प्रियंका सिंह* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

शिक्षा एक सामाजिक आवश्यकता है। शिक्षा ही वह विशेष निधि है जो इस सम्पूर्ण जगत् में केवल मनुष्य को ही प्राप्त है। इसके विकास से ही मनुष्य में विवेक का जन्म होता है, वह सत्य-असत्य, उचित-अनुचित, सही-गलत आदि में विभेद करता है। शिक्षा माँ के समान लालन-पालन करती है, पिता के समान मार्गदर्शन करती है, पत्नी के समान सभी समस्याओं को दूर करते हुए सुख प्रदान करती है तथा मित्र के समान मुसीबत के समय सहयोग प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को उजागर करती है। उसकी देवत्य का दर्शन करती है, मानवीय मूल्यों की अनुभूति का उसे अवसर प्रदान करती है और स्वानुभूति का मार्ग प्रशस्त करती है। वेदान्त दर्शन ने शिक्षा के रूप में विद्यमान सारगर्भित तथ्यों को शैक्षणिक विचारों की धारा में प्रवाहित किया है, जिससे आगे आने वाली पीढ़ी भी उन विचारों से युग-युगान्तर तक आप्लावित होती रहे। शंकराचार्य, जैसे महान शैक्षिक विचारक ने इसी प्राचीन और पवित्र परम्परा को सुनियोजित और सारगर्भित रूप में प्रस्तुत कर नवीन दृष्टिकोण को विवेचित करने का प्रयास किया है, जिससे सामुदायिक विकास के साथ-साथ राष्ट्र के नव-निर्माण का मार्ग प्रशस्त हो सके। आज शिक्षा का अत्यधिक भौतिकीकरण मानवता एवं सम्पूर्ण सृष्टि के लिए घातक सिद्ध हो रहा है। मानवतावादी विचारों का दिनोंदिन क्षरण होता दिखाई दे रहा है। अतः आधुनिक शिक्षा व्यवस्था में प्राचीन भारतीय शैक्षिक मूल्यों की पुर्नस्थापना की आवश्यकता महसूस की जा रही है, जिससे विद्यार्थी अति भौतिकवादी एवं अति आत्मवादी विचारधाराओं से बच सके तथा इनके बीच समन्वय स्थापित कर सकें व एक आदर्श नागरिक बन सके।

वेदान्त दर्शन और शिक्षा का सम्प्रत्यय

वेदान्त के अनुसार शिक्षा का एकमात्र लक्ष्य विद्यार्थी को अज्ञान से मुक्त करके उसे ज्ञान की प्रतीति करवाना है, जिससे कि वह विद्या एवं अविद्या में विवेकपूर्ण भेद कर सके, सत्य एवं असत्य का अन्तर समझ सके और अपने आप में निहित अनन्त

* [एम. ए. शिक्षाशास्त्र] इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

-ज्ञान व अनन्त-शक्ति को पहचान सके। शिक्षा का कार्य छात्रों का इस विवेक-ज्ञान का निरन्तर विकास करने के लिए सक्षम बनाना है, जिससे कि वे भावी जीवन में अज्ञान से शनैः-शनैः मुक्ति पाकर सद्जीवन बिता सकें।

आचार्य शंकर के अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो मनुष्य को अज्ञान से मुक्ति दिलाए और ज्ञान की प्राप्ति कराये।

वेदान्त और शिक्षा के उद्देश्य

आचार्य शंकर ने मनुष्य जीवन का अन्तिम उद्देश्य मुक्ति माना है अतः उनके अनुसर शिक्षा का भी अन्तिम उद्देश्य यही होना चाहिए। मुक्ति के लिए उन्होंने ज्ञान मार्ग का प्रतिपादन किया। इस दृष्टि से शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान प्राप्ति होना चाहिए ज्ञान प्राप्ति के सन्दर्भ में शंकर ने श्रवण (अध्ययन) उस पर मनन निदिध्यासन अर्थात् इससे प्राप्त ज्ञान का नित्य में प्रयोग की बात कही है। श्रवण-मनन-निदिध्यासन के लिए साधन चतुष्टय आवश्यक बताया है :

नित्य-अनित्य वस्तु विवेक; अर्थात् आत्मा और शरीर एवं ब्रह्मा और जगत् के बीच भेद करने तथा ब्रह्मा और की अभिन्नता को समझने का विवेक जागृत करना।

भोग-विरक्ति; अर्थात् लौकिक एवं पारलौकिक, किसी भी प्रकार के भोगों की इच्छा न करना।

शमदमादि संयम; अर्थात् शम (मन का संयम), दम (इन्द्रियों पर नियंत्रण), उपरति (यज्ञ आदि विहित कर्मों का त्याग), तितिक्षा (सुख-दुःख सहन करने की शक्ति) और श्रद्धा (ज्ञान और ज्ञानीजन गुरुओं के प्रति श्रद्धा) का पालन।

ममुक्षकत्व; अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प करना।

इस दृष्टि से शिक्षा के प्राथमिक उद्देश्य होने चाहिए :

- शारीरिक विकास
- मानसिक विकास
- बौद्धिक विकास
- नैतिक विकास
- चारित्रिक विकास तथा चित्तशुद्धि

इन सब उद्देश्यों को हम आज की भाषा में स्थूल से सूक्ष्म क्रम में निम्नलिखित रूप में रख सकते हैं :

- भौतिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति
- स्वस्थ शरीर का निर्माण एवं विकास
- बालक का मानसिक विकास
- बालक को सत्य-असत्य तथा अच्छाई-बुराई में अन्तर करने योग्य बनाना
- आत्मानुभूति

वेदान्त दर्शन और पाठ्यक्रम

आचार्य श्री शंकराचार्य के अनुसार शिक्षा का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें निम्नलिखित तीन प्रकार की सत्ता का समावेश हो :

1 प्रतिभाषिक सत्ता; वे विषय, जो क्षण भर के लिए प्रकट होते हैं, किन्तु वास्तविक जाग्रत अवस्था में अनुभवों से बाधित होते हैं।

2 व्यावहारिक सत्ता; वे विषय जो व्यावहारिक जगत् में दिखाई देते हैं और जो परितर्वनशील है, जैसे, नित्य प्रति के व्यवहार में आने वाली वस्तुएँ, घटनाएँ आदि।

3 पारमार्थिक सत्ता; शुद्ध सत्ता जो सभी प्रतीतियों में प्रकट होती है, और जो न बाधित होती है और न जिसके बाधित होने की कल्पना की जा सकती है। अर्थात् ब्रह्म-ज्ञान।

श्री शंकराचार्य के अनुसार भी यह जगत तथा इस जगत सम्बन्धी ज्ञान व्यावहारिक दृष्टि से सत्य और पारमार्थिक सत्ता की अपेक्षा कम सत्य है। शंकराचार्य के अनुसार, ''वह सांसारिक ज्ञान, जिसमें जगत् को सब विषयों का मूल अथवा कारण माना जाता है, निश्चित ही सत्य है। जैसे कारण रूपी ब्रह्म की सत्ता विकास में रहती है, वैसे ही सत्तारुपेण जगत् भी विकास

में सत्य रहता है क्योंकि कारण-कार्य अभिन्न है।[1] नानारूपात्मक विषय सत्तारुपेण सत्य है, किन्तु अपने विशेष रूप में असत्य है।"[2]

अस्तु स्पष्ट है कि वेदान्त दर्शन में ज्ञान को दो वर्गों में बांटा है- प्रथमः अपरा विद्या और द्वितीयः परा विद्या। अपरा विद्या इस 'प्रत्यक्ष जगत् तथा आत्मा को धारण करने वाले शरीर से सम्बन्धित' है। परा विद्या 'आत्म-ज्ञान व ब्रह्म ज्ञान' में सम्बन्धित है। उपनिषदों में यों तो आत्मा को ही केन्द्रीय विषय बनाया गया है किन्तु उनमें अपरा विद्या की भी उपेक्षा नहीं की है। उन्होंने छात्रों को अपरा एवं परा विद्या दोनों का ज्ञान प्रदान करने पर बल दिया है। उपनिषदों में पाठ्यक्रम में भौतिक जगत् के अध्ययन, भौतिक उत्पादन, जीव-जगत् का अध्ययन, ज्ञानात्मक शिक्षा, आत्मा की उन्नति तथा आत्मा की अनुभूति से सम्बन्धित विषयों को पाठ्यक्रम में स्थान दिया गया।

शिक्षण विधि

ज्ञान और ज्ञान प्राप्ति के साधनों के सम्बन्ध में आचार्य शंकर ने विस्तृत चर्चा की है। आचार्य शंकर ने ज्ञान प्राप्ति के तरीकों को मुख्यतः तीन भाग में विभक्त किया है। इस सम्बन्ध में उनके विचार निम्नलिखित हैं :

1. ज्ञान के उपकरण; आचार्य शंकर ने ज्ञान प्राप्ति के उपकरणों को दो भागों में विभक्त किया है :

बाह्य उपकरण; इसमें कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ आती हैं।

आन्तरिक उपकरण; इसमें मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और आत्मा।

उनका स्पष्टीकरण है कि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव जब तक मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त और अन्त में आत्मा को स्वीकार नहीं होते तब तक वे सत्य के रूप में स्वीकार नहीं किये जा सकते।

2. ज्ञान के स्रोत; आचार्य शंकर ने ज्ञान के चार स्रोत बताये हैं :

प्रत्यक्ष विधि; प्रत्यक्ष विधि में बालकों को शब्द, प्रत्यय, प्रतीक आदि का निर्माण करना सिखाया जाता है। सभी प्रकार के विज्ञानों का अध्ययन-अध्यापन प्रत्यक्ष-विधि द्वारा किया जाता है।

अनुमान विधि; अनुमान विधि उस विधि को कहा जाता है जिसमें हम किसी लिंग के द्वारा किसी अन्य वस्तु का ज्ञान प्राप्त करते हैं। अनुमान प्रक्रिया में तीन पद हैं :

- *पक्ष :* अनुमान का वह अंग है, जिसके सम्बन्ध में अनुमान किया जाता है।
- *साध्य :* उसे कहते है, जो पक्ष के सम्बन्ध में सिद्ध किया जाता है।
- *हेतु :* उसे कहते हैं, जिसके माध्यम से पक्ष के सम्बन्ध में साध्य सिद्ध किया जाता है।

शब्द विधि; वेदान्त के अनुसार शब्द, ज्ञान प्राप्ति का एक स्वतंत्र स्रोत है। कोई कथन वैध है, यदि उसके अर्थ से निकलता हुआ आशय ज्ञान के अन्य स्रोत द्वारा गलत प्रमाणित न हो जाये।

अनुभव या साक्षात् विधि; उपर्युक्त तीनों विधियों से प्राप्त ज्ञान से परे भी एक स्थिति होती है, जिसे वेदान्त में अनुभव कहा जाता है। ज्ञान की सभी स्थितियों में ज्ञाता, ज्ञेय तथा ज्ञान के बीच भेद बना रहता है, और जब तक अभेद की स्थिति नहीं आ जाती तब तक ज्ञान की अनुभूति नहीं होती। कला, साहित्य, ध्यान, नाट्यीकरण, संगीत आदि के माध्यम के इस प्रकार का सहज ज्ञान अर्जित किया जा सकता है।

3. ज्ञान के साधन; ज्ञान प्राप्ति के साधन के लिए आचार्य शंकर ने तीन साधन बताये हैं- श्रवण (वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थों का गुरु-मुख द्वारा श्रवण अथवा उनका स्वाध्याय), मनन (श्रवण अर्थात् अध्ययन प्राप्त ज्ञान पर चिन्तन) और निदिध्यासन (प्राप्त ज्ञान का नित्य प्रयोग)।

वेदान्त दर्शन और शिक्षक

वेदान्त के अनुसार शिक्षक ऐसा होना चाहिए, जिसने सत्ता की अनुभूति कर ली हो तथा जो स्वयं जीवन-मुक्त हो। जो स्वयं बन्धन-मुक्त हो, जो स्वयं बन्धन में पड़ा हुआ है, तथा जो स्वयं अविद्या-माया से ग्रसित है, वह दूसरों को अविद्या के बन्धनों से कैसे छुड़वा सकता है?

वेदान्त के अनुसार विद्यार्थी अध्यापक का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से अनुकरण करते हैं, अतः अध्यापक की भाषा, रहन-सहन, व्यवहार आदि सभी बातें छात्रों के लिए अनुकरणीय होनी चाहिए। वेदान्त-मत के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी

को गुरु बनाना अनिवार्य है। अत्यन्त कुशाग्र-बुद्धि वाला व्यक्ति भी बिना गुरु की सहायता के ठीक प्रकार से शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता। उपनिषदों में वर्णित इस आदेश पर टिप्पणी करते हुए श्री शंकाराचार्य लिखते हैं कि प्रत्येक विद्यार्थी को एक ऐसे अध्यापक से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए, जिसका मन स्वस्थ हो, जो संयमी हो तथा जिसमें अपने छात्र के लिए प्रेम हो।

वेदान्त के अनुसार शिक्षक से एक और अपेक्षा यह की जाती है कि वह बालकों के व्यक्तित्व का समादर करे। उन्हें आत्मवत् समझे तथा क्रमशः भिन्नताओं में एकता देखने का अभ्यास करें।

वेदान्त दर्शन और छात्र

वेदान्त के अनुसार प्रत्येक छात्र अनन्त ज्ञान एवं शक्ति का स्रोत होता है, उनमें जो शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक भिन्नता दिखाई देती है वह कर्मजनिक होती है। यह भिन्नता तटस्थ लक्षण होती है, स्वरूप लक्षण नहीं। इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टि से सब छात्र समान होते हैं और व्यावहारिक दृष्टि से उनमें भिन्नता होती है। आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म ज्ञान के इच्छुक छात्रों को साधन चतुष्टय का पालन करना चाहिए। इस साधन चतुष्टय में इन्द्रय निग्रह मन की एकाग्रता, भोग से विरक्ति और गुरु में श्रद्धा का महत्व तो व्यावहारिक ज्ञान की प्राप्ति की दृष्टि से भी होता है। आज के छात्र यदि शंकर की यह बात मान लें तो शिक्षा जगत की समस्त समस्याओं का अन्त हो जाये।

उपनिषदों में छात्र उसे माना गया है, जिसमें ज्ञान प्राप्ति की उत्कृष्ट अभिलाषा हो और वह अपनी ज्ञान पिपासा की तृप्ति के लिए योग्य और विद्वान गुरु की खोज करता हो।

वेदान्त दर्शन और अनुशासन

अध्ययन को सुचारू रूप से चलाने के लिए अनुशासन आवश्यक है। जब तक मन संयमित न हो तब तक एकाग्रता नहीं आ पाती और बिना एकाग्रता के अध्ययन सम्भव नहीं है। वेदान्त में बाल-प्रकृति की चार अवस्थाचों का विवेचन किया गया है।

1. *क्षिप्त :* प्रथम अवस्था को क्षिप्त कहते हैं। यह वह अवस्था है जब बच्चा अपनी इन्द्रियों के अधीन रहता है और अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। यह अन्तःकरण की चंचल अवस्था है।
2. *विक्षिप्त :* दूसरी अवस्था को विक्षिप्त अवस्था कहते हैं। इस अवस्था में इन्द्रियों पर सीमित नियंत्रण होने लगता है। बालक थोड़े समय तक ध्यान केन्द्रित कर सकता है। वह स्वच्छतापूर्वक अध्ययन करने लगता है। ''स्व'' तथा ''अ स्व'' के मध्य की कशमकश की स्थिति विक्षिप्तावस्था कहलाती है।
3. *मुधा या मूढ़ :* तीसरी अवस्था मूढ़ कहलाती है। इसमें बालक का अपनी इन्द्रियों पर काफी नियंत्रण रहता है परन्तु आलस्यवश पूर्ण रूप से ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता। अनुशासन की दृष्टि से इसे सबसे निम्नतम माना जाता है।
4. *एकाग्रता :* चौथी अवस्था एकाग्रता की होती है, जिसमें बालक का इन्द्रियों, मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त सभी पर आत्मा का नियंत्रण होता है। ''उसे क्या करना चाहिए क्या नहीं? यह पाप है या पुण्य''? इस प्रकार के प्रश्न तिरोहित हो जाते हैं। उसका सहज आचरण आत्मा की प्रकृति के अनुरूप हो जाता है। वह सहज ही सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् से युक्त हो जाता है। यही अनुशासन की उच्चतम स्थिति कहलाती है।

आचार्य शंकर के अनुसार जो बच्चा इनमें से जिस स्तर पर होता है वह उसी कोटि में अनुशासित कहा जाता है। वास्तविक अनुशासन का अर्थ है एकाग्रता।

वर्तमान शिक्षा में वेदान्तिक शिक्षा की उपादेयता

भारतीय दर्शनिक चिन्तन में वेदान्त अन्तिम तथा चिरकालिक विचारधारा कही जा सकती है। श्री शंकराचार्य तथा श्री रामानुज के बाद भी जो कुछ चिन्तन हुआ वह किसी न किसी रूप में वेदान्त की ही पुनर्व्यवस्था थी। आधुनिक भारत के निर्माताओं

में गाँधी, टैगोर, विवेकानन्द, श्री अरविन्द आदि के नाम लिए जाते हैं। इन सभी का दर्शन किसी न किसी रूप में वेदान्त दर्शन है। स्वामी विवेकानन्द ने तो वेदान्त को जीवन में उतारने का स्तुत्य प्रयास किया है। गाँधी ने भी ऐहिक और पारलौकिक दोनों जीवन के विकास की बात को बुलन्द किया है। शंकर के समान अरविन्द ने भी योग की क्रियाओं का महत्व दिया है। यदि गाँधी, विवेकानन्द, अरविन्द आदि ने भारतीय शिक्षा को प्रभावित किया है, तो इसे वेदान्तिक प्रभाव मानना ही उचित है।

वेदान्त मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करता इसलिए जन-शिक्षा का हिमायती है। वह स्त्री-पुरुष में भी भेद नहीं करता इसलिए स्त्री-शिक्षा का भी समर्थक है। परन्तु वह यह स्वीकार करता है कि व्यावहारिक दृष्टि से मनुष्यों में शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक भिन्नता है जो कर्मजनित है। इस भिन्नता का अर्थ है कि व्यावहारिक क्षेत्र में बच्चों को अपनी भिन्नता के आधार पर विकास करने के अवसर प्रदान किये जायें। वेदान्त की ये सब बातें आज का लोकतंत्र से बड़ा मेल खाती है।

अद्वैत अर्थ और काम का विरोधी नहीं है, परन्तु इन्हीं को मानव जीवन का चरम लक्ष्य नहीं स्वीकारता, वह इन्हें साध्य नहीं साधन के रूप में महत्व देता है। चूँकि आज मानव जीवन को सर्वांग सम्पन्न बनाने के लिए 'आत्म-दर्शन' की आवश्यकता है। अतः दार्शनिक व्यवस्थापन तथा आत्म दर्शन का संदेश अद्वैतवादी शिक्षा व्यवस्था द्वारा ही चरितार्थ किया जा सकता है। मानव ही क्या पशु-पक्षी, कीट-पतंग सभी जीवों में वही आत्मन् अखण्ड रूप से परिव्याप्त है। इस भावना के हृदय में आते ही मनुष्य के जीवन का दृष्टिकोण तथा व्यवहार दोनों बदल जाते हैं, प्राणिमात्रा का सुख-दुःख उसका अपना हो जाता है, आज के भौतिकवादी मानव को इसी की आवश्यता है मानवीय दृष्टिकोण तीन प्रकार के होते हैं- भौतिक, आध्यात्मिक एवं निर्गुणी- एक ओर भौतिक दृष्टिकोण लघु है, तुच्छ है, पार्थिव है, हेय है तो दूसरी ओर निर्गुणी दृष्टिकोण ब्रह्मालीन परमसिद्ध महात्माओं का उच्च स्तरीय दृष्टिकोण है, जो सामान्य जन के लिए दुर्लभ है। अतः व्यावहारिक विचार से आध्यात्मिक दृष्टिकोण समाज में लाना सरल एवं आवश्यक है। इसी के आरोपण से समाज में सुव्यवस्था, सुख एवं शान्ति आ सकती है। अतः आज देश को लौकिक, विज्ञानपरक तकनीकी प्रगति के साथ आत्म विकास हेतु आध्यात्मिक शिक्षा की भी आवश्यकता है। यदि भौतिक प्रगति आत्म विकास में बाधक है तो वह व्याज्य है, जबकि वर्तमान समाज के पदस्थ कर्णधार शिक्षा में विज्ञान, उद्योग, तकनीक को प्रमुखता देकर रोजगारपरक बनाना चाहते हैं। वे शरीर, इन्द्रिय एवं सहज प्रवृत्तियों के प्रशिक्षण पर बल दे रहे हैं। भौतिक समृद्धि को लक्ष्य बनाकर उसी के प्रकाश में देश के सुधार का दिवास्वप्न देख रहे हैं जबकि अद्वैतवादी पद्धति नैतिक, आध्यात्मिक एवं नवजागरण को प्रमुख लक्ष्य बनाता है दर्शन केन्द्रित तथा दर्शनाभिमुखी शिक्षा का प्रबन्ध करता है। चूँकि भौतिक शिक्षा अविद्यामूलक है और आत्मशिक्षा विद्यामूलक है, अतः आध्यात्म शिक्षा को केन्द्र बनाकर भौतिक शिक्षा देने की व्यवस्था करता है, ताकि जीवन के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण का उन्मेष हो।

आज शिक्षा के क्षेत्र में आमूल परिवर्तन करते हुए, शिक्षा के बाह्य कलेवर की अपेक्षा उसके अन्तःकरण तथा भावतत्व को प्रभावित करना है। सत्यमेव जयते, योगः कर्म सुकौशलम् आदि आदर्श वाक्यों और सिद्धान्तों को हम अपना आदर्श तो बड़े गौरव से घोषित करते हैं, परन्तु उसकी प्रेरणा और प्रकाश में चलने, उसके अनुरूप अपना तथा छात्रों का जीवन ढालने की चेष्टा नहीं कर रहे हैं। आज जब वैज्ञानिक, भौतिक, आर्थिक वैभव, समृद्धि एवं सम्पन्नता में शिखरस्थ पाश्चात्य देशों की जनता किसी अज्ञात अभाव से अपना जीवन निस्सार एवं खोखला अनुभव कर रही है, वहाँ के बहुतायत संख्या में युवा वर्ग शान्ति प्राप्तार्थ भारत की ओर झुक रहे हैं, ऐसी दशा में यदि भाव स्वयं ही अपनी आत्म सम्पत्ति को विस्मृत कर प्रकृति विजय की दौड़ में शामिल हो जाये तो इससे बड़ी विडम्बना और क्या हो सकती है? अतः देश के नवनिर्माण हेतु शिक्षा के उद्देश्य, शैक्षिक संगठन, पाठ्यक्रम, परीक्षा प्रणाली आदि घटकों में आचार्य शंकर के शिक्षा दर्शन को आधार बनाकर शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च सभी स्तरों पर परिवर्तन उपादेय है।

प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक उद्देश्य के रूप में बालकों को शरीर की महत्ता, उच्च मूल्यों की प्राप्ति में साधनात्मक एकता, ऐहिक पदार्थों, सुखों, समृद्धियों का परिचय देकर उनके माध्यम से महापुरुषों के जीवन एवं आदर्श गुणों का प्रस्थापन किया जा सकता है। इस स्तर पर लौकिक ज्ञान की चर्चा प्रधान रूप में, आध्यात्मिक चर्चा गौड़ रूप में उनके सम्मुख रखते हुए, समाजोपयोगी आवश्यक योग्यताओं का ज्ञान देना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर लोक संग्रह की भावना, समाज कल्याण तथा लोकमंगल की कामना एवं उनकी उदात्त भावनाओं को उत्प्रेरित करने का प्रयास होना चाहिए। साथ ही अर्थ एवं परमार्थ को समकक्ष समायोजित कर बालकों को जीव एवं जगत के सत्य-असत्य का परिचय कराना आवश्यक है।

उच्च स्तर पर छात्रों को जीवन के परम सत्य की पूर्ण अनुभूति एवं उनका सम्यक् ज्ञान प्राप्त कराने की चेष्टा होनी चाहिए। उनमें अध्यात्मपरक व्यवहार की पुष्टि भी इस स्तर तक होनी चाहिए ताकि समाज की भौतिक स्पर्धा, राग, द्वेष, अहंकार, दर्प आदि का उन्मूलन हो सके। उनमें यह दृढ़ भावना विकसित हो कि धनवर्धन की अपेक्षा गुणवर्धन आवश्यक है।

वास्तव में शंकराचार्य का शिक्षा दर्शन भारतीय चिन्तन धारा का चरमोत्कर्ष है। यह मानव को अपने इष्ट ब्रह्मा से एकात्म भाव का ज्ञान कराकर आत्मिक शान्ति प्रदान करता है एवं आज के भौतिकवादी युग में जगत की नश्वरता और ब्रह्मा की सत्यता का ज्ञान कराता है। समस्त प्राणियों में एक ही ब्रह्मा का निवास है, अतः बाह्य रूप से भिन्न होते हुए भी सभी समान हैं, यह भाव मानव एकता का आधार प्रस्तुत करता है। आचार्य द्वारा इंगित शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, चारित्रिक विकास के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति का लक्ष्य आधुनिक शिक्षा का प्रमुख देन है। यही कारण है कि आचार्य द्वारा प्रतिपादित पाठ्यचर्या में आध्यात्मिक क्रियाओं के महत्व को आधुनिक युग में भी स्वीकारा जा रहा है और देश के प्रतिष्ठित शिक्षण संस्थान अपने पाठ्यक्रमों में योग को स्थान दे रहे हैं, क्योंकि योग साधना ही आधुनिक तनावपूर्ण जीवन में शान्ति प्रदान करने में सक्षम है। श्रवण, मनन, निदिध्यासन जैसी शिक्षण विधियाँ स्व-शिक्षा की प्रमुख विधि है जो स्वाध्याय पर बल देती है। आधुनिक युग में पत्राचार, शिक्षा, दूरस्थ शिक्षा आदि के क्षेत्र में इन विधियों का प्रयोग करके छात्रा लाभान्वित हो सकते हैं। अनुशासन के संदर्भ में आचार्य का आत्मानुशासन सम्बन्धी विचार मनोविज्ञान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। वास्तव में, मनुष्य को इन्द्रियों के शासन से उठाकर आत्मा के शासन तक ले जाने वाला दर्शन ही मानव की पाशविक प्रवृत्तियों का नाश करके उसे मानव से महामानव बना सकता है। अतः यदि आचार्य के शिक्षा दर्शन को सार्वभौमिक एवं सर्वकालिक दर्शन कहा जाय तो अनुचित नहीं है।

वेदान्त जीवन को श्रेष्ठतर बनाने के लिए व्यावहारिक के रूपान्तरण पर बल देता है। शिक्षा का आदर्श मनुष्य को उसकी पाशवी वृत्तियों से मुक्त करके उसे सही अर्थों में मानवोचित गुणों से युक्त करना है। वेदान्त का इस दृष्टि से अनुपम योगदान हो सकता है।

निष्कर्ष

शंकर का अद्वैतवाद और उसके आधार पर निश्चित शिक्षा का स्वरूप हमारे भारतीय जीवन दर्शन के अनुकूल है। यूँ शिक्षा के उद्देश्य निश्चित करने में शंकर का बल मुक्ति की प्राप्ति पर रहा है, परन्तु उन्होंने इस मानव शरीर और जगत की व्यावहारिक सत्ता को स्वीकार कर उसके ऐहिक जीवन सम्बन्धी उद्देश्यों को भी आध्यात्मिक उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक माना है, साधन माना है यही बात उनके द्वारा निश्चित शिक्षा की पाठ्यचर्या के सम्बन्ध में है। उन्होंने उसमें व्यावहारिक जीवन के लिए व्यावहारिक ज्ञान एवं क्रियाओं तथा आध्यात्मिक जीवन के लिए पारमार्थिक ज्ञान एवं क्रियाओं का स्थान दिया है। शिक्षण विधियों के क्षेत्र में तो वेदान्त का योगदान बहुत ही महत्व का है। आधुनिक मनोविज्ञान ने ज्ञान प्राप्ति के उपकरणों में केवल इन्द्रियों का वर्णन किया है, वेदान्त में इसके अतिरिक्त मन, बुद्धि, अहं, चित्त और आत्मा के कार्यों का भी विश्लेषण किया गया है और उस आधार पर श्रवण-मनन-निदिध्यासन की उत्तम विधियों का विधान किया गया है।

शिक्षण को जीवनमुक्त और शिक्षार्थी को साधन चतुष्टय का निर्देश देना शंकर के वेदान्त की एक और बड़ी विशेषता है। यदि आधुनिक शिक्षा में वेदान्त की भूमिका की बात कहे तो आधुनिक युग के भारतीय चिन्तकों- दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, गाँधी, टैगोर और अरविन्द के दार्शनिक एवं शैक्षिक विचारों का अवलोकन करें तो पायेंगे कि वे वेदान्त के कुछ निकट है।

निष्कर्षतः हम कह सकते है कि हम अपने जीवन और अपनी शिक्षा को वेदान्त से अलग कर भी नहीं सकते और करते हैं तो वह फिर हमारे भारत देश की आत्मा का अन्त होगा। हमें वेदान्त और उसके शिक्षा दर्शन का ही अनुगामी होना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]ओड़, लक्ष्मीलाल के0, -''शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि'', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

[2]रस्क आर0, -''शिक्षा के दार्शनिक आधार'', आर0 हिन्दी ग्रन्थ अकादमी

[3]शर्मा, योगेन्द्र कुमार एवं शर्मा, मधुलिका, -''शिक्षा के दार्शनिक आधार' 'नई दिल्ली, कनिष्क पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स

[4]सिंह सुमित्रा -''शंकराचार्य का शिक्षा दर्शन'' पब्लिश्ड इन परिप्रेक्ष्य दिसम्बर 2011

''यथा च कारणं ब्रह्मा त्रिकालेषु सत्यं न व्यभिपारित एवं कार्यमपि जगति विषु कालेषु सत्यं च व्यभिचरित।'' (ब्रह्मसूत्र 2/1/16)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,97-101
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 08 सितम्बर 2016

वैदिक विवाह संस्था की अवधारणा

डॉ. शारदा कुमारी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैदिक विवाह संस्था की अवधारणा* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *शारदा कुमारी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

वैदिक युग में विवाह एक सुव्यवस्थित प्रथा के रूप में दृष्टिगत होता है। ऋषि, महर्षि आदि प्रायः सभी आर्य विवाह करते थे। 'गृहणी गृहमुच्यते' वे नारी को ही घर मानते थे। ऋग्वेद 8/30 के अनुसार विवाह ही व्यक्ति को गृहस्थ बनाता है तथा देवताओं के निमित यज्ञ करने की योग्यता प्रदान करता है। देवताओं के पूजन मे पति-पत्नी एक दूसरे के सहायक माने गए है।

मानवीय विवाह के पूर्व ऋषि 'उषा' का विवाह कराते हैं। उषा सूर्योदय के पूर्व का प्रकाश है। ऋग्वेद 10/85 में उषा अर्थात् सूर्या विवाह का वर्णन प्राप्त होता है। सूर्या का अर्थ सूर्य की पुत्री है। उषा सूर्य से उत्पन्न होने के कारण उनकी पुत्री मानी गई है। ऋषि कहते हैं- मानो उषा का विवाह हुआ है। उसके वस्त्र भद्र, उज्जवल और गाथा से परिष्कृत हैं। वेद मंत्र उसकी सखी और मनुष्यों द्वारा गायी हुई ऋचाएँ उसकी सेविका हैं। जब सूर्या पति के घर गई उस समय अच्छे विचार उसकी चादर थे। पृथ्वी और आकाश उसके संपत्ति-कोश थे। स्तोत्र रथ-चक्र के डण्डे थे और कुरिर नामक छंद से उसका रथ शोभायमान था। अग्नि रथ के आगे चलने वाले दूत और अश्विनी कुमार पति हुए।[1]

उषा का सुन्दर विवाह करा देने के पश्चात् ऋषि मानवी विवाह का वर्णन करते हुए कहते है- हे उषा के समान सुहावनी बधु! पलाश और शाल्मली वृक्ष के काष्ठ से निर्मित सुन्दर, सुवर्ण के समान उज्जवल चक्र युक्त रथ पर आरूढ़ होओ। तुम सोम के निमित्त सुख देने वाले अविनाशी स्थान में गमन करो।[2]

पुत्री का पिता दामाद से कहता है, ''हे विश्वावसो! विश्व में, गृहस्थी में बसने वाला जमाता। इस कन्या का परिग्रहण हो चुका है। तुम अब यहॉ से उठो यह तुम्हारी पत्नी है। मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ और वाणियों से स्तुति करता हूँ। यह तेरा भग है। इससे संतान उत्पन्न करने की बात जान। तुम अपने से भिन्न गोत्र की इस युवती को अपनी पत्नी मानकर और इसका पति बनकर इसके साथ उत्तम व्यवहार कर।[3]

* भूतपूर्व अतिथि प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, ई. सी. सी. इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

ऋषि कहते हैं, ''हे वधु! मैं तुझे यहां से मुक्त करता हूँ, वहॉ से नहीं। अर्थात पितृ गृह से मुक्त करता हूँ और पति गृह से तुझे अच्छी तरह बॉधता हूँ। हे इन्द्र! यह कन्या सुन्दर भाग्य वाली और श्रेष्ठ पुत्र रूप संतान वाली हो।[4]

वैदिक ऋषि वधू को शिक्षा देते हुऐ कहते हैं, ''हे वधू! तुझे पूषा, तेरा पोषण करने वाला पति हाथ पकड़ कर ले जाय और उसके सहायक जो अश्विनी है तुझे रथ में बैठा कर तेरे पति गृह में पहुँचावे। वहॉ तुम गृहस्वामिनी बनकर सभी लोगो से मधुर व्यवहार करते हुए भृत्यादि पर शासन करो। हे कन्ये! पतिगृह में पुत्र-प्रसवा होती हुई सुख पाओ। स्वामी से प्रीति स्थापित करो और वृद्धावस्था तक परस्पर शासन करने वाली रहो।[5]

वैदिक ऋषि विवाह में उपस्थित लोगों से कहते हैं, ''विवाह में उपस्थित हे लोगो! यह वधू शोभन और सुमंगली है। आप लोग इसे आकर देखे और इसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देकर अपने-अपने घर जाएँ। जो शत्रु पति-पत्नी के पास आकर क्लेश देने वाले हैं वे सहज ही दुर्गम देश में चले जाएँ। सारे शत्रु दूर भाग जाएँ।[6]

इसके बााद वधू का पति उसका हाथ पकड़ते हुए कहता है, ''तुझे सौभाग्यवती बनाने के लिए मैं तेरा पाणिग्रहण करता हूँ। तुम मुझे स्वामी रूप में प्राप्त करती हुई वृद्धावस्था तक साथिनी रहना। भग, अर्यमा, और पूषा देवताओं ने तुम्हें मुझे प्रदान किया है।''[7] वधू को पहले सोम, फिर गन्धर्व इसके बाद अग्नि प्राप्त करते हैं, इसके बाद मनुष्य का वंशज उसका पति होता है।[8]

पुनः आशीर्वाद देते हुए वैदिक ऋषि कहते हैं, ''हे वर और वधू! तुम समान प्रीति वाले होकर यहॉ निवास करो। विभिन्न प्रकार के भोजनों को प्राप्त करते हुए पुत्र- पौत्रो सहित प्रसन्नतापूर्वक सुख भोग करो। ब्रह्मा हमें अपत्यवान् बनावें। अर्यमा हमें वृद्धावस्था तक साथ रहने वाला करे। हे वधु! तुम कल्याणकारिणी होकर इस घर में रहो और सबका मंगल करो। तुम पति के लिए मंगल करने वाली होओ। तुम्हारा नेत्र, शुभ दर्शन हो। तुम पशुओं को सुख देने वाली बनो। तुम्हारी सौन्दर्य-वृद्धि हो और मन सदा प्रसन्न रहे। तुम देवताओं की उपासिका और वीर प्रसव होओ। हे इन्द्र! तुम वधू को श्रेष्ठ पुत्र वाली और सौभाग्य से सम्पन्न बनाओ। दस पुत्रो की माता हो। हे वधू! सास, श्वसुर, ननद देवर आदि को वश मे करने वाली होओ।''[9]

तात्पर्य यह है कि वधू घर के इन सभी लोगो से ऐसा मधुर व्यवहार करे कि वह सबके द्वारा आदर की पात्र बन जाए। मृदुभाषी, सेवापरायण और विनम्र व्यक्ति परिवार और समाज दोनो के आदर का पात्र होता है। विवाह संस्था वर और वधू के हृदय की समता पर अपने उद्देश्य को प्राप्त करती है। अतः ऋषि वर-वधू से कहलाते हैं, कि सभी यह समझे कि हम दोनों का हृदय पानी की तरह मिल गया है। जल, वायु, ब्रह्मा, सरस्वती हम दोनो को एक करें। सभी देवता हमें समान प्रीति वाला बनावें। अर्थात् समस्त प्राकृतिक और आत्मिक शक्तियॉ हमें सहयोग करें।[10]

इसके पश्चात पति पत्नी से कहता है, ''जैसे पृथ्वी पर उगी हुई घास को वायु हिलाता है, वैसे मैं तेरे मन को कम्पित करता हूँ, जिससे तू मेरी ही कामना करने वाली हो, मुझसे अलग दूसरी तरफ न जाए।'' पति औषधि से कहता है, हे औषधे तु अनेक रूपों वाली कन्याओं का मन ग्रहण कर। यह कन्या पति पाने की कामना करके आयी है और पत्नी पाने की कामना करता हुआ मैं आया हूँ। जैसे हिनहिनाता हुआ घोड़ा अपनी मादा के पास आता है वैसा मैं धन के सहित अपनी पत्नी के पास आया हूँ।[11]

गृहस्थ पति-पत्नी को ऐसा व्यवहार करना पड़ता है जिससे वे जीवन पर्यन्त परस्पर जुड़े रहे। इसलिए जैसे हवा घास को हिलाती है वैसे पुरूष अपनी पत्नी का मन अपनी ओर खींचता है। पति पत्नी का मन और व्यवहार निष्कपट हो। इसके लिए कहा गया 'यत् अन्तरम् तद् बाहयम् यद बाहयम् तद् अन्तरम्'। जो अन्दर हो वही बाहर हो और जो बाहर हो वही अन्दर हो। वैदिक ऋषि कहते है, ''हे अग्ने! यह कन्या अधिक प्रसन्न और निर्मल मन वाली है अतः यह ऐसे पति को प्राप्त करे जो विवेकपूर्वक और मीठा बोलता हो, धन सम्पन्न हो जिससे यह कन्या सौभाग्यवती हो। जो धन पवित्र मन और ज्ञान से सम्पन्न होकर धारकदेव के सत्य नियम से उपार्जित है, उसे कन्या के पति के लिए समर्पित करता हूँ। हे वधू जो तुम्हारी कामना करता है, उस पति के पास अपनी सद्गुण रूपी नाव पर बैठकर जा। हे पुत्री! यह उत्तम स्वर्ण, बैल और अन्य प्रकार का धन सब तुम्हारे पति को देते है। हे कन्ये! जो तुम्हारी कामना करता है वह वर तुम्हें ले जाए। इसमें सविता, वन, वनस्पतियॉ सभी सहयोग करें।[12]

वेदों में किसी स्थल पर बाल विवाह का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। इस मंत्र से यह स्पष्ट होता है कि वर युवक होता था। वेदों में कहीं भी वर पक्ष के द्वारा दहेज माँगने की बात नहीं कही गई है। कन्या का पिता स्वेच्छा से वस्त्राभूषण आदि देता था। प्रसिद्ध वेद विद्वान पं0 सातवलेकर इस संदर्भ मे लिखते है ''आजकल कन्या का पिता वर को ढूँढता हुआ वर के शोधार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान के प्रति घूमता रहता है। यह प्रथा अवैदिक प्रतीत होती है। वधू का पिता अथवा वधू वर की खोज के लिए भ्रमण न करे अपितु वर अपनी योग्यता सिद्ध करे और वधू की माँग करने के लिए वधू के पिता के पास जावे।[13] ऋग्वेद के मतानुसार विवाह का उद्देश्य था गृहस्थ होकर देवों के लिए यज्ञ करना तथा सन्तानोत्पति करना।[14] पश्चातकालीन साहित्य मे भी यही बात पाई जाती है। स्त्री को जाया कहा गया है, क्योंकि पति ने पत्नी के गर्भ से पुत्र के रूप में जन्म लिया।[15] शतपथ ब्राह्मण का कहना है कि पत्नी पति की आधी (अर्धागिनी) है अतः जब तक व्यक्ति विवाह नहीं करता, जब तक सन्तानोत्पत्ति नहीं करता वह पूर्ण नहीं है।[16]

अथर्ववेद में तेरह मंत्रो का एक सूक्त स्त्री के गर्भधारण से ही सम्बन्धित है। उसमें बताया गया है कि पर्वत- पृथ्वी से लेकर द्यौ तक के सारे पदार्थो की सूक्ष्म शक्ति को लेकर मानो स्त्री का गर्भधारण होता है। स्त्री कहती है जैसे पृथ्वी सब भूतों का गर्भ धारण करती है वैसे मैं तुम्हारा गर्भ धारण करती हूँ। फिर सिनीवाली, सरस्वती आदि से गर्भधारण में प्रार्थना की गई है। इसके बाद मित्र, वरूण, बृहस्पति, इंद्र, अग्नि, धाता, विष्णु, त्वष्टा, प्रजापति, वरूण आदि को गर्भधारण के संबन्ध में मनाया गया है। देवताओं को मनाने के बाद पुरूष को गर्भाधान करने के लिए उत्साहित किया गया है। गर्भाधान के दस महीने बाद संतान पैदा होने की बात कही गई है। 'दशमे मासि सूतवे'[7] इस प्रकार उत्तम रीति से गर्भाधान के द्वारा जो संतान उत्पन्न होती है वह परिवार और समाज दोनों के लिए कल्याणकारी होती है।

परस्पर मिले हुए मन के पति-पत्नी शुभ कर्म से चलते हैं। जीवन के हर क्षेत्र में पवित्रता रखते हैं और हमेशा सुखी रहते हैं। परस्पर प्रेम से रहने वाले दंपती अन्न और वस्त्र से सम्पन्न रहते हैं। समझदार पति-पत्नी देवों अर्थात् प्राणियों का अपमान नहीं करते तथा अपनी बुद्धि को शुद्ध रखते हैं वे सुख और सुयश से सम्पन्न होते हैं। वे उत्तम धन पुत्रादि को प्राप्त कर उनमें आनन्द से रहकर अपनी दीर्घ आयु बिताते हैं। अमरता की प्राप्ति के लिए देवों की प्रार्थना करते हुए पति-पत्नी कहते हैं- अमृताय देवेषु कृणुतो ध्रुव-।[18] हम पर्वत, नदी और सर्वव्यापी तत्व में जो सुख है उसे पाना चाहते है।[19] पति पत्नी से कहता है, ''जैसे लता वृक्ष की ओर लौटती है वैसे तु मेरी ओर उन्मुख हो। मुझे चाहने वाली हो और मुझसे दूर न जा। जैसे आकाश मे उड़ने वाले पक्षी अपने दोनो पंखो को पृथ्वी की ओर दबाकर उड़ते हैं वैसे ही मैं तुम्हारे मन को अपनी ओर खींचता हूँ जिससे तु केवल मेरी इच्छा कर, अन्य पुरूष की ओर न जा। जैसे द्यावा-पृथिवी के बीच में सूर्य के उगते ही प्रकाश फैल जाता है वैसे ही मैं अपने को तेरे मन में फैलाता हूँ जिससे तुम मुझे ही चाहने वाली हो पर-पुरूष से प्रेम करने वाली न हो।[20]

तुम मेरे शरीर और अंगो की इच्छा कर और मैं तेरे शरीर और अंगो की। हम दोनों गृहस्थी की मर्यादा को छोड़कर अलग न भटकें। मैं तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, तुम्हें अपने हृदय में स्थान देता हूँ जिससे तु गृहस्थी कार्य में मेरा सहयोग करने वाली हो और मेरे विचारों के अनुसार चलो। जिसके अंग सुशोभित है और जिसके हृदय में ऐसा प्रेम है ऐसी स्त्री से हे गोमाता मुझे मिला दे।[21] पति कहता है, ''हे धर्मपत्नी! हम दोनो की आँखे मानो मधु हो। हम दोनों एक दूसरे को मिठास भरी आँखो से देखें। हम दोनो की आँखो में समता का सुंदर अंजन लगा हो। मुझे तु अपने हृदय में बसा। हमारा मन परस्पर मिला रहे।[22]

गृहस्थ जीवन को खुशहाल बनाने के लिए पति-पत्नी को प्रेमपूर्वक रहना आवश्यक है। यदि पति और पत्नी एक दूसरे को घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखेंगे तो गृहस्थी सुखद कैसे होगी। पति पत्नी में वैमनस्य बढ़ने पर वृद्ध माता पिता की सेवा भी ठीक से नहीं होगी और अगली पीढ़ी अर्थात बच्चों को अच्छे संस्कार भी नहीं मिलेंगे। जब पति-पत्नी एक दूसरे को प्रेमपूर्वक देखते और परस्पर मधुर व्यवहार करते हैं तब गृहस्थी सुखद होती है।

पत्नी पति से कहती है, ''हे स्वामिन् मैने अपने मन में प्रेम रखकर तुम्हारे लिए वस्त्र बुना है और मैं उसे तुम्हें पहनाकर मानो बाँधती हूँ, जिससे तू केवल मेरा पति होकर रहे। अन्य स्त्रियों का नाम तक न ले। ''वैदिक युग में स्त्रियाँ चरखा चलाकर कपड़े स्वंय बुन लेती थी। प्रायः सभी अपने परिवार के लिए स्वयं ही वस्त्र तैयार कर लेते थे। जिस प्रकार पति नहीं चाहता

कि उसकी स्त्री दूसरे पुरूष की ओर उन्मुख हो उसी प्रकार पत्नी भी नहीं चाहती कि उसका पति, पर स्त्री की ओर गमन करे। अतः पत्नी-पति से कहती है, ''हे स्वामी मैं पृथ्वी से एक औषधि खोदकर लाती हूँ। उसके प्रयोग से तु केवल मुझे ही देखेगा, पर स्त्री को नहीं। यदि तुम बुरे मार्ग में जाने को तैयार हो तो भी यह तुम्हें उससे रोक लेगी। यह औषधि मनुष्य को बुरे मार्ग से लौटा लेने वाली और अच्छे तथा कल्याणकारी मार्ग में लगाने वाली है। इस औषधि का नाम आसुरी है। इसके प्रयोग से इंद्र, देवताओं के उपर प्रभुत्व रखने वाला हो गया। इसका प्रयोग मैं तुम्हारे उपर करती हूँ जिससे मैं तुम्हारी अति प्यारी बनकर रहूँ।''

''हे आसुरी औषधि! तु चंद्रमा से शक्ति ग्रहण करती है, सूर्य से शक्ति ग्रहण करती है और विश्व की समस्त प्राकृतिक शक्तियों से शक्ति ग्रहण करती है इसलिए मैं तुम्हारी प्रशंसा करती हूँ।'' पत्नी पति से कहती है, ''हे पति देव! मैं बोलती हूँ तुम घर में मत बोलो। तुम सभा में ही जाकर बोलना। तुम केवल मेरा बनकर रहो। दूसरी स्त्री का नाम तक न लेना। यदि तुम मुझे तथा परिवार को छोड़कर किसी गुप्त जगह पर चले जाओगे या नदी पार चले जाओगे तो ध्यान रखना यह आसुरी औषधि तुम्हें वहॉ से बॉधकर मेरे पास ले आएगी।''[23]

शुक्ल ययुर्वेद में त्रयम्बक अर्थात् तीन आँखो वाले शिव से प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि वे सुगंधी और पुष्टि को बढ़ाने वाले है। हे त्रयम्बक! हम उसी प्रकार बंधनो से छूट जाऐं, जिस प्रकार पका फल टहनी से स्वयं छूट जाता है परन्तु अमृत से, शान्ति से एवं मोक्ष से कभी अलग न हो। इस मन्त्र के उत्तरार्ध में कहा गया है कि कन्या अपने पिता के घर से पके हुए फल की तरह सर्वथा मुक्त हो जाए, परन्तु पति के घर से कभी अलग न हो।[24]

पति और पत्नी के व्यवहार में संकीर्ण स्वार्थ का स्थान नहीं होना चाहिए अन्यथा गृहस्थी का सुख समाप्त हो जाता है। वैदिक ऋषि कहते हैं, ''हे पुरूष! तुम्हारी पत्नी तुमसे छिपाकर जो कुछ पकाती है और हे नारी! तेरा पति तुझसे छिपाकर जो करता है वह सब एक साथ मिला दो। वह सब तुम दोनों एक साथ मिलकर करो। तुम दोनों एक स्थिति में रहकर उन्नति करो। पति-पत्नी से उत्पन्न जितनी संताने हैं जो इस मातृभूमि की सेवा करती हैं उन्हें बुलाकर एक जगह ही पात्र में भोजन दो और बच्चे भी माता-पिता को केन्द्र मानकर साथ रहें। एक साथ भोजन करें तथा उन्नति के काम करें।[25]

इस प्रकार वैदिक विवाह संस्था हमारे समक्ष एक उच्च आदर्शो को प्रस्तुत करती है जिसे अपना कर परिवार और समाज की सभी विसंगतियों और समस्याओं को दूर किया जा सकता है।

सन्दर्भ

[1]*ऋग्वेद,* मंडल-10 सूक्त 85 मंत्र 6-19

[2]सुकिंशुकं शाल्मलिं विश्वरूपं हिरण्यवर्णं सुवृतं सुचक्रम्। आरोह सूर्ये अमृतस्य लोकं स्योन पत्ये वहतुं कृणुश्व।। ऋग्वेद - 10/85/20

[3]*ऋग्वेद,* 10/85/21-22

[4]*ऋग्वेद,* 10/85/24

[5]*ऋग्वेद,* 10/85/26-27

[6]*ऋग्वेद,* 10/85/29-33

[7]*ऋग्वेद,* 10/85/36

[8]*ऋग्वेद,* 10/85/40

[9]*ऋग्वेद,* 10/85/46

[10]*ऋग्वेद,* 10/85/47

[11]*अथर्ववेद,* कांड-2 सूक्त-30 मंत्र 1-5

[12]*अथर्ववेद,* कांड-2 सूक्त-36 मंत्र 1-8

[13]अथर्ववेद का सुबोध भाष्य (कांड-6 सूक्त 82)- पं0 सातवलेकर

[14]*ऋग्वेद,* 10/85/36, 5/3/2, 5/28/3, 3/53/4

[15]ऐतरेय ब्राह्मण - 33/1

[16]अर्धो ह वा एष आत्मनो यज्जाया तस्माद्यावज्जायां न विन्दते नैव तावत्प्रजायते असर्वो हि तावद् भवति। अथ यदैव जायां विन्दतेऽथ तर्हि हि सर्वो भवति। (शतपथ ब्राह्मण - 5/2/1/10)

[17]*अथर्ववेद*, कांड 5 सूक्त 25 मंत्र- 1-13

[18]*ऋग्वेद,* मंडल 8, सुक्त-31, मंत्र-9

[19]*ऋग्वेद,* मंडल 8, सूक्त-31 मंत्र 1-10

[20]*अथर्ववेद,* कांड-6, सूक्त-8 मंत्र 1-3

[21]*अथर्ववेद,* कांड-6, सूक्त-8 मंत्र 1-3

[22]*अथर्ववेद* 7/36/1

[23]*अथर्ववेद* 7/38/1-5

[24]*शुक्ल ययुर्वेद,* अध्याय-3, मंत्र-60

[25]*अथर्ववेद* 12/3/39-40

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,102-105
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 02 सितम्बर 2016

वेदों में वर्णित अन्त्येष्टि संस्कार और पर्यावरण

डॉ. सुमन दुबे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वेदों में वर्णित अन्त्येष्टि संस्कार और पर्यावरण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुमन दुबे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त विभिन्न संस्कारों के द्वारा शुद्ध एवं परिष्कृत होता है। संस्कार से तात्पर्य शुद्धता एवं पवित्रता से है। 'संस्कार' शब्द 'सम्' उपसर्ग पूर्वक 'कृञ् धातु में 'घञ् प्रत्यय के योग से बना है। इनकी संख्या मुख्यतः सोलह मानी गई है। अन्त्येष्टि संस्कार अन्तिम संस्कार होता है। मनुष्य का शरीर पाँच तत्त्वों से मिलकर बना है। ये तत्त्व पृथिवी, जल, अग्नि, आकाश, और वायु हैं जो कि मानव शरीर के निर्माण में सहायक होते हैं। प्रकृति के इन्हीं तत्त्वों में मरणोपरान्त अन्त्येष्टि संस्कार के द्वारा मनुष्य शरीर विलीन हो जाता है। अन्त्येष्टि संस्कार पर्यावरण को स्वच्छ रखने में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान करता है। 'पर्यावरण' का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है- 'परि आवृणोतीति' इति 'पर्यावरणम्' अर्थात् जिसके द्वारा यह पृथिवी घिरी हुई है उसको पर्यावरण कहते हैं। ऋग्वेद के दशम् मण्डल में ऋषि यह कामना करता है कि मृत व्यक्ति का नेत्र सूर्य के पास जाये श्वास वायु में जाये। मृत व्यक्ति अपने कर्मो के पुण्य-फल के द्वारा आकाश और पृथिवी पर जाये। यदि वह जल में जाना चाहता है तो जल में जाये। उसका शरीर वनस्पतियों में रहे, ''सूर्यंचक्षुर्गच्छतुवातमात्माद्यांचगच्छ-पृथिवींचधर्मणा। अयोवागच्छयदितत्रतेहितमोषधीषुप्रतितिष्ठाशरीरैः।।[1]

'अग्निदग्धः' शब्द तैत्तिरीय ब्राह्मण में उन लोगों के लिए आया है जिनकी अन्त्येष्टि चिता पर की जाती है। वैदिक काल में शव का अन्तिम संस्कार दो प्रकार से सम्पन्न होता था। पहला शव को जलाना और दूसरा शव को गाड़ना। इसी संदर्भ में यह मंत्र तैत्तिरीय ब्राह्मण में आया है, ''ये अग्निदग्धाः येऽनग्निदग्धाः। येऽमुंलोकं पितरः क्षियन्ति।।''[2]

गाड़ने की प्रथा ऋग्वेद-काल में अज्ञात नहीं थी। ऋग्वेद में इसका वर्णन मिलता है। पुत्र, पौत्रादि की रक्षा के लिए, मृत्यु के सामने रोकने के लिए, पाषाण का मैं व्यवधान करता हूँ, ताकि मरणमार्ग शीघ्र न आने पाये। ये सैकड़ों वर्ष जीवित रहें। शिला-खण्ड से मृत्यु को दूर करो।

''इमंजीवेभ्यः परिधिदधामिमैषानुगादपरोअर्थमेतम्। शतंजीवन्तुशरदः पुरुचीरन्तर्मृत्युंदधतांमपर्वतेन।।''[3]

* [352/ 158] अलोपीबाग, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

आगे मंत्र में ऋषि कहते हैं- मृत, मातृ-स्वरुपिणि, विस्तीर्ण, सर्वव्यायिनी, और सुखदायी पृथिवी के पास जाओ। यह यौवन से युक्त स्त्री के समान तुम्हारे लिए राशिकृत मेषलोम के सदृश कोमल-स्पर्शा है। तुमने दक्षिणा दी है, यज्ञ किया है। यह पृथिवी मृत्यु के पास से अस्थि-रूप तुम्हारी रक्षा करें।

''उपसर्पमातरंभूमिमेतामुरुव्यचसंपृथिवीसुशेवाम्। ऊर्णम्रदायुवतिर्दक्षिणावतएषात्वायातुनिर्ऋतेरूपस्थात्।।''[4]

इस मंत्र में ऋषि पृथिवी से मृतक को उन्नत रखने की, पीडा न देने की और जैसे माता पुत्र को आँचल से ढँकती है, वैसे आच्छादित करने की प्रार्थना करता है, ''उच्छ्वंचस्वपृथिविमानिबाधथाः सूपायनास्मैभवसूपबञ्चना। मातापुत्रंयथासिचाभ्येनंभू-मऊर्णुहि।।''[5]

पृथिवी को स्तूपाकार होकर मृत के ऊपर अवस्थित होने की प्रार्थना की गई है, ''उच्छ्वंच्छमानापृथिवीसुतिष्ठतुसहस्रंमित-उपहिश्रयन्ताम। तेगृहासोधृतश्रुचुतोभवन्तुविशाहास्मैशरणाःसन्त्वत्र।।''[6]

बोधायन का कथन है कि जन्म के बाद संस्कारों द्वारा मनुष्य इस लोक को विजित करता है, जबकि मृत्यु के बाद संस्कार द्वारा परलोक को विजित करता है।[7]

मृत्यु के बाद किये जाने वाले संस्कार को 'अन्त्येष्टि' संस्कार कहते हैं। इस संस्कार के द्वारा मृत प्राणी परलोक में शान्ति-लाभ करता है। मनुष्य के पार्थिव शरीर का दाह संस्कार किया जाता है। दाह-क्रिया करने के पहले अनेक धार्मिक कृत्य किये जाते हैं। जिसे मृतात्मा का ज्येष्ट पुत्र सम्पादित करता है। अन्त्येष्टि संस्कार में प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान है। ऋतुओं, दिवसों और रश्मियों के द्वारा प्रकट स्थान इस मृत को यम प्रदान करता है।[8]

मृत शरीर के अंगो के लिए सविता पृथिवी के अन्दर स्थान प्रदान करता है।[9] वायु उस स्थान को पवित्र करता है। सविता उस स्थान को पवित्र करता है। अग्नि के तेज और सूर्य के प्रकाश से वह स्थान पवित्र होता है।[10] (उस स्थान में खोदकर मृत की अस्थियों 'फूलों' को धरना।) हे ओषधियों! पीपल में तुम्हारा बैठना है और पलाश पर्ण में तुम्हारी बस्ती है। अब तुम पृथिवी को प्राप्त हो जाओ जो तुम पुरुष को सेवित करती हो।[11] इस मंत्र में ऋषि कहता है- हे मृत! सविता तुम्हारे फूलों को माता पृथिवी गोद में रखे। हे पृथिवी! उस मृत के लिए तुम शक्तिशाली होओ।[12] शव का अन्त्येष्टि संस्कार करते समय जल के निकट रखा जाता है। क्योंकि मृत के लिए जल अत्यंत कल्याण कारक होता है। नदियाँ सुखदा होती हैं।[13] इसी प्रकार से वायु मृत के लिए सुखकर हो पार्थिव अग्नियाँ सुखकर होवे। वे तुम्हें प्रदग्ध न करें।[14] मृत के लिए दिशायें कल्पिता होवें। अन्तरिक्ष शुभ हो। इसके साथ ही सारी दिशाएँ भी मृत के लिए खुली होवें।[15] अग्निदेव हवि को अन्य देवताओं को पहुँचाने का कार्य करते हैं।[16] क्योंकि अग्नि को देवताओं का मुख कहा गया है- 'अग्निवै देवानां मुखम्' तो जो भी हवि अग्नि देव को प्रदान की जाती है वह अग्निदेव के माध्यम से सभी देवों तक पहुँच जाती है। अग्नि देव यजमान की आयु को पवित्र करते हैं। अन्धकार के परे विद्यमान स्वर्गीय ज्योति सूर्य तथा उसकी उत्तम ज्योति को मृत प्राप्त करता है।[17] अग्नि, अन्न और वर्षा यजमान को प्रदान करता है।

मृत के मुख को हवि दी जाती है उसके मुख को घृत से पूर्ण किया जाता है। तो ऋषि कहता है कि हवि के द्वारा बढ़ने वाले, घृत से पूर्ण मुख वाले तथा घृत से उत्पन्न तुम बढ़ो। मधुर और स्वादिष्ट गोघृत का पान करके जैसे पिता स्वपुत्र की रक्षा करते हैं वैसे ही तुम हमारे इस स्वपुत्र की रक्षा करो। यह तुम्हारे लिए आहुति है।[18]

कच्चे मांस खाने वाले पितृमेधी अग्नि को दूर रखा जाता है। पापवाही वह श्मशान भूमि को प्राप्त होती हैं। यहाँ यज्ञगृह में यह तद्भिन्न उत्पन्न लभ्य अग्नि देवों को तथा स्वाधिकार को जानते हुए देवों के लिए हवि वहन करता है।[19]

हे जातवेदस् अग्ने! पितरो के लिए तुम वपा को वहन करो- दूर जहाँ तुम इन्हें निहित जानते हो। उन पितरों के लिए मेद की लघु सरिताएँ बह चलें और हमें उनके यथार्थ आशीर्वाद प्राप्त होवें। हे अग्ने! यह तुम्हारे लिए आहुति है।

अन्त्येष्टि संस्कार गढ्ढा खोदकर कब्र बनाकर भी किया जाता है। उसके लिए यजमान प्रार्थना करता है कि हे मृत! वायु तुम्हारे लिए सुखकर होवे। सूर्य सुखकर होवे और ईंटें तम्हारे लिए सुखकर होवें।[20] कब्र व श्मशान के मध्य एक पत्थर रखा जाता है। इसे जीवितों के लिए सीमा के रूप में रखा जाता है जिससे कोई अन्य जीवित इस मृत्यु भाव को न प्राप्त हो। वे सब बहुकर्म व्यापृत सौ वर्ष का जीवन पावे। वह जीव मृत्यु को पर्वत से छिपा दे यह भाव रहता है।[21]

हे पृथिवी! (कब्र) तुम हमारे लिए सुखदा और कण्टक रहिता हाओ और प्रभूत अन्न प्रदान करो।[22]

अथर्ववेद में एक वृक्ष को रखने का उल्लेख है;। हे प्रेत! तू जिस वृक्ष के नीचे बैठे वह तुझे व्यथित न करे। जिस पृथिवी का आश्रय ले वह तुझे पीड़ित न करे। तू यम के प्रजा के रूप में स्थान पाकर बढ़।[23] किंतु ऋग्वेद में ऐसा नहीं मिलता है। दोनों ही संहिताओं में भूमिगृह का उल्लेख है। ओल्डनबर्ग (रिलिजन देस वेद 571) के अनुसार दाह और दफन की दो प्रथाएँ नहीं थी। मैक्डानेल और कीथ के अनुसार दोनों ही प्रथाएँ साथ-साथ प्रचलित थीं। अथर्ववेद के इस मंत्र में वनस्पतियों में अस्थि रूप पुरुष को स्थापित करने का उल्लेख प्राप्त होता है- 'हे वनस्पते! तुममें जो अस्थि रूप पुरुष स्थापित किया था, उसे मुझे लौटाओं, जिससे वह यज्ञात्मक कर्मो को करता हुआ यम के गृह में स्थित हो।'[24]

अथर्ववेद में मृतक-संस्कार में केवल दाह का विधान पाया जाता है। यहाँ पर गाड़ने का जो उल्लेख मिलता है, वह अवशिष्ट अस्थियों के श्मशान में गाडने की ओर संकेत प्रतीत होता है- जिस कृत्या को कुएँ में डालकर, श्मशान में गाड़कर अथवा घर में किया है उसे मैं वापस करता हूँ।[25]

अतः अन्त्येष्टि संस्कार में सूर्य, पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, अन्तरिक्ष, पीपल का वृक्ष, पलाश का वृक्ष, गाय, बैल और नदी इत्यादि प्रकृति के विभिन्न तत्त्व सहायक सिद्ध होते हैं। इनसे ही मनुष्य का मृत शरीर परिष्कृत होकर पंचतत्त्व में विलीन होता है और पर्यावरण को स्वच्छ बनाने में सफल होता है।

संदर्भ

[1]*ऋग्वेद* -मं. 10 अ. 1 सू. 16 मं. 3

[2]*तै. ब्रा.,* 3. 1. 1. 7.

[3]*ऋग्वेद* -मं. 10 अ. 2 सू. 18 मं. 4

[4]*4.ऋग्वेद* -मं. 10 अ. 2 सू. 18 मं. 10

[5]*5.ऋग्वेद* -मं. 10 अ. 2 सू. 18 मं. 11

[6]*ऋग्वेद* -मं. 10 अ. 2 सू. 18 मं. 12

[7]*बौधायन गृह्य सूत्र,* 1. 43

[8]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.1 (अपेतोयन्तु पणयो ऽसुम्ना देवपीयवः। अस्य लोकः सुतावतः द्युभिरहोभिरक्तुभिव्यक्तं यमो ददात्वपसानमस्मै।।)

[9]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.1 (सविता ते शरीरेभ्यः पृथिव्यां लोकमिच्छन्तु। तस्मै युज्यन्तामुस्त्रिया।।)

[10]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.3 (वायु पुनातु सविता पुनात्वग्नेर्भ्राजसा सूर्यस्य वर्चसा। विमुच्यन्तामुस्त्रियाः।।)

[11]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.4 (अश्वत्थे वो निषदन् पर्णे वो वसतिष्कृता। गोभाज इत्किलासथ यत्सनवथ पुरूषम्।।)

[12]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.5 (सविता ते शरीराणि मातुरूपत्थ आवपतु। तस्मै पृथिवि शं भव।।)

[13]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.9 (कल्पन्तां ते दिशस्तुभ्यमापः शिवतमास्तुभ्यं भवन्तु सिन्धवः। अन्तरिक्ष शिवं तुभ्यं कल्पन्तां ते दिशः सर्वाः।।)

[14]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.7 (परं मृत्यो अनुपरेहि पन्थां यस्ते अन्य इतरो देवयानात्। चक्षुष्मते श्रृण्वते ते ब्रवीमि मा नः प्रजा रीरिषो मोत वीरान्।।)

[15]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.9

[16]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.14 (अनडाहमन्वारभामहे सौरभेय स्वतये। स न इन्द्र इव देवेभ्यो वहिः संतारणो भव।।)

[17]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.14 (उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरूत्तमम्।।)

[18]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.17 (आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि। घृतं पीत्वा मधु चारू गव्यं पितेव पुत्रमभिरक्षतादिमान्स्वाहा।।)

[19]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.19 (क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाहः। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्।।)

[20]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.8 (शं वातः शहि ते घृणिः शं ते भवन्त्विष्टकाः शं ते भवन्त्वग्नयः पार्थिवासो सा त्वाभिशूशुचन्।।)

[21]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.15 (इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि सैषां नु गादपरो अर्थमेतत्। शतं जीवन्तु शरदः पुरुचरिन्तमृत्यं दधतां पर्वतेन।।)

[22]*शुक्लयजुर्वेदसंहिता,* 35.21 (स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः। अप नः शोषुचदघम्।।)

[23]*अथर्ववेद संहिता,* का.18 अ.2 सू.2 मं.25 (मा त्वा वृक्षः संबाधिष्ट मा देवी पृथिवी मही। लेकं पितृषु वित्त्वैधस्व यमराजसु।।)

[24]*अथर्ववेद संहिता,* का.18 अ.3 सू.3 मं.70 (पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि। यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन।।)

[25]*अथर्ववेद संहिता,* का.5 अ.6 सू.31 मं.8 (यां ते कृत्यां कूपवदधुः श्मशाने वा निचरूनुः। सद्मनि कृत्यां यां चक्रुः पुनः प्रति हरामि ताम्।।)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,106-111
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 30 सितम्बर 2016

"मम्मट विरचित काव्य प्रयोजन को समझना और उसका निदर्शन विद्वानों के अनुकूल करना"

डॉ. मनीषा शुक्ला*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *"मम्मट विरचित काव्य प्रयोजन को समझना और उसका निदर्शन विद्वानों के अनुकूल करना"* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा शुक्ला* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

प्रस्तुत शोध पत्र काव्य की विस्तीर्ण पद्धति पर प्रकाश डालने वाले महान व्याख्याता मम्मट के काव्य प्रकाश के काव्य प्रयोजन पर आधारित है। इस शोध पत्र के अन्तर्गत मम्मट सभी अंशों को ज्यों का त्यों दिया गया है। इसके पीछे एक बहुत बड़ा कारण ये है कि मैं पिछले कई वर्षों से मम्मट के काव्य प्रयोजन को समझने और उसे भली भांति ज्ञात करने का प्रयास कर रही हूँ, इसके लिये मैंने महाज्ञानी विश्वनाथ कविराज का ग्रंथ अनेक बार पूरा का पूरा पढ़ा, किन्तु हर बार कुछ न कुछ अधूरा रह गया। काशी के संस्कृत विद्वानों को अक्सर इस काव्य प्रयोजन की नये सिरे से व्याख्या करते देखा, इसकी चाहे जितनी भी तैयारी कर लूँ पर मात्र दो पंक्ति की कारिका का निदर्शन उन विद्वानों के दृष्टिकोण के अनुसार करने में असफल रह जाती हूँ। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य काव्य प्रयोजन को पूरी तरह समझना और उसका निदर्शन करना है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।२।।

कालिदासादीनामिव यशः, श्रीहर्षादेर्धावकादीनामिव धनम्, राजादिगतोचिताचारपरिज्ञानम्, आदित्यादेर्मयूरादीनामिवानर्थ-निवारणम्, सकलप्रयोजनमौलिभूतं समनन्तरमेव रसास्वादन-समुद्भूतं विगलितवेद्यान्तरमानन्दम्, प्रभुसम्मितशब्दप्रधानवेदा-दिशास्त्रेभ्यः सुहृत्सम्मितार्थतात्पर्यवत्पुराणादीतिहासेभ्यश्च शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूतव्यापारप्रवणतया विलक्षणं यत्काव्यं लोकात्तरवर्णनानिपुणं कविकर्म तत् कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखीकृत्य रामादिवद्वर्तितव्यं न रावणादिवदित्युपदेशं च यथा योगं कवेः सहृदयस्य च करोतीति सर्वथा तत्र यतनीयम् ।।२।।

यह सम्पूर्ण कारिका पूर्ण रूप से स्मरण है किन्तु जैसे ही इस विद्वान सुनते हैं, कूद पड़ते हैं कि इसमें से क्या-क्या न पूछ लूँ, सामने वाले को पटक दूँ, अरे! भाई नया क्या कहते हो आप जो पहले नहीं कहा गया या नहीं पूछा

* [पूर्व-शोध छात्रा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय] प्रधान सम्पादिका, अन्वीक्षिकी शोध समग्र पत्रिका, वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

गया। काव्य प्रयोजन की इतनी सुंदर व्याख्या बहुत कम देखने को मिलती है। अतः आप भी एक बार मेरे साथ इसे आनन्दमय के साथ इसे पढ़ें और समझें।

काव्य के प्रयोजन

(इस ग्रन्थ में) कहा जाने वाला (काव्य का लक्षण, उसके भेद, गुण, दोष, अलङ्कार आदि रूप) विषय (रसा स्वादन आदि रूप काव्य के फलों की सिद्धि का प्रधान साधन होने से) सप्रयोजन है यह (काव्य के प्रयोजनों को दिखाते हुए) कहते हैं- ''काव्य का यशजनक, अर्थ का उत्पादक, (लोक-) व्यवहार का बोधक, (शिव अर्थात् कल्याण, शिवेतर अर्थात् उससे भिन्न) अनिष्टका नाशक, पढ़ने (या सुनने, देखने आदि) के साथ ही (सद्यः) परम आनन्द का देने वाला और स्त्री के समान (सरसरूप से कर्तव्याकर्तव्य का) उपदेश प्रदान करने वाला होता है ।।२।।

(काव्य का निर्माण कवि को) कालिदास आदि के समान (१) यश (की प्राप्ति, नैषध महाकाव्य के प्रणेता महाकवि श्रीहर्ष से नहीं, अपितु 'रत्नावली नाटिका' के प्रणेता राजा) श्रीहर्ष आदि से धावक आदि (पण्डितों) के समान (२) धन (की प्राप्ति कराता है और काव्यों के अध्ययन करने से पढ़ने वालों को वर्णित राजा आदि के साथ अन्य लोगों के व्यवहार को पढ़ने या नाटक आदि में देखने के द्वारा काव्य ही) (३) राजा आदि के साथ किये जाने योग्य आचार का परिज्ञान (कराता है। इसी प्रकार काव्यनिर्माण) (४) सूर्य आदि (की स्तुति) से 'मयूर' (कवि) आदि (के कुष्ट-निवारण) के समान अनर्थ का निवारण (करता है) और इन समस्त प्रयोजनों में मुख्य (काव्य के पढ़ने या सुनने के बाद सद्यः) तुरन्त ही रसके आस्वादन से समुत्पन्न और अन्य सब विषयों के परिज्ञान से शून्य (५) परम आनन्द (की अनुभूति), तथा राजा (की आज्ञा) के समान शब्द-प्रधान वेद आदि शास्त्रों से (विलक्षण), मित्र (विचन) के समान अर्थ- प्रधान पुराण और इतिहास आदि से (विलक्षण), शब्द तथा अर्थ दोनों के गुणीभाव के कारण रस के साधक (व्यञ्जन) व्यापार की प्रधानता के द्वारा, (वेद-शास्त्र-पुराण-इतिहास आदि से) विलक्षण, जो लोकांत्तर वर्णन-शैली में निपुण कवि का कर्म (अर्थात् काव्य) है वह (६) स्त्री के समान सरसता के साथ (सरस बनाकर) रास आदि के समान आचरण करना चाहिये, रावण आदि के समान नहीं, यह यथायोग्य उपदेश (आवश्यकतानुसार) कवि तथा सहृदय (पाइक आदि) दोनों को कराता है। इसलिए (काव्य की रचना तथा उसके अध्ययन) में अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।।२।।

इस वाक्य का अर्थ समझने के लिए उसका विश्लेषण करना आवश्यक है। वाक्य का क्रियापद 'करोति' लगभग वाक्य के अन्त में आया है। इस क्रिया के कर्म-पद यशः, धनम्, आचार-परिज्ञानम्, अनर्थनिवारणम्, आनन्दम्, उपदेशं च ये ६ हैं। इन सबके साथ उपमा और विशेषण जुड़े हुए हैं। विशेष रूप से आनन्द के साथ 'सकलप्रयोजन-मौलिभूतम्', 'रसास्वादनसमद्भूतम्' और 'विगलितवेद्यान्तरम्' ये तीन विशेषण जुड़े हुए हैं। वाक्य में 'काव्यम्' पद कर्तृपद है। पर उसके साथ 'वेदादिशास्त्रेभ्यः, पुराणादीतिहासेभ्यश्च विलक्षणं' इन विशेषणों को जोड़कर 'यत् काव्यं तत्', यह कर्तृपद बनता है। इन विशेषणों के साथ भी दूसरे विशेषण जुड़े हुए हैं। 'प्रभुसम्मित-शब्दप्रधानवेदादिशास्त्रेभ्यः (विलक्षणं) सुहृत्सम्मितार्थ-तात्पर्यवत्-पुराणादीतिहासेभ्यश्च' (विलक्षणं) यत् काव्यं तत्–यशः, धनम्, आचार-परिज्ञानम्, अनर्थ निवारणम्, उपदेशं च करोति' यह वाक्य बनता है। वेद-शास्त्र-इतिहास-पुराणादि से काव्य की विलक्षणता दिखलाने के लिए पूर्वोक्त विशेषणों के अतिरिक्त 'शब्दार्थयोर्गुणभावेन रसाङ्गभूत-व्यापारप्रवणतया' पद तथा 'उपदेशं' इस कर्मपद के साथ 'कान्तेव सरसतापादनेनाभिमुखीकृत्य' पद इतिकर्तव्यता भी समाविष्ट हो गयी है। फलतः इस वाक्य की रचना बड़ी दुरूह और क्लिष्ट हो गयी है। बिना टीका के इसका अर्थ समझना जरा टेढ़ी खीर है। मम्मटाचार्य ने सारे ग्रन्थ में इसी प्रकार की रचना शैली का अवलम्बन किया है। इसीलिए 'काव्य प्रकाश' की बीसों टीकाएँ होते हुए भी अनेक स्थलों पर उसका रहस्य आज भी दुरूह बना हुआ है। शायद यही कारण है कि जितने विद्वान हैं उतने ही मतभेद है।

उपदेश की त्रिविध शैली

काव्य की तीन प्रकार की उपदेश शैलियों का विधान है ये उपदेश शैलियाँ कदाचित या तो शब्द प्रधान हो सकती हैं या अर्थ प्रधान अथवा रस प्रधान हो सकती है। मम्मट महोदय ने काव्य प्रयोजन पर कारिका लिखते समय जो प्रयोजन दिखलाये उसकी व्याख्या विद्वान किस प्रकार करते हैं, अइये देखें-

इस प्रकार मम्मटाचार्य ने इस कारिका में काव्य के छह प्रयोजन दिखलाये हैं। इसमें से 'कान्तासम्मिततया उपदेशयुजे' इसकी व्याख्या करते हुए उन्होंने वेदादि शास्त्र तथा पुराण-इतिहासादि से काव्य का भेद और उसकी उपादेयता का प्रतिपादन बड़े अच्छे ढंग से किया है। काव्य के प्रयोजनों में यश, धन आदि अन्य प्रयोजनों के साथ कर्तव्याकर्तव्य का उपदेश करना भी एक मुख्य प्रयोजन है। वेद-शास्त्र-इतिहास-पुराण आदि की रचना भी मनुष्यों को शुभ-कर्मों में प्रवृत्त करने तथा अशुभ-कर्मो निवृत्त करने के लिए ही की गयी है। परन्तु काव्य की उपदेश-शैली उन सबसे विलक्षण है। इस विलक्षणता का उपपादन करने के लिए ग्रन्थकार ने शब्दप्रधान, अर्थप्रधान तथा रसप्रधान तीन तरह की उपदेश शैलियों की कल्पना की है, जिनको क्रमशः 'प्रभुसम्मित', 'सूहृत्सम्मित' तथा 'कान्तासम्मित' पदों से निर्दिष्ट किया है। वेद-शास्त्र आदि की शैली 'प्रभुसम्मित' या शब्दप्रधान शैली है। राजाज्ञाएँ तथा राजकीय विधान सदा शब्दप्रधान होते हैं। उनमें जो कुछ आज्ञा दी जाती है उसका अक्षरशः पालन अनिवार्य होता है। इसी प्रकार वेद-शास्त्र आदि में जो उपदेश दिये गये हैं उनका अक्षरशः पालन करना ही अभीष्ट होता है। इसलिए वे शब्दप्रधान होने से राजाज्ञा के समान या प्रभुसम्मित उपदेश-शैली में अन्तर्भुक्त होते हैं। इतना तो हम सभी जानते हैं, पर हम कारिका को समझने के लिये और भी गम्भीरता से अध्ययन की आवश्यकता है।

काव्य की उपदेश-शैली इन दोनों से भिन्न प्रकार की होती है। उसमें न शब्द की प्रधानता होती है और न अर्थ की। वहाँ शब्द तथा अर्थ दोनों का गुणीभाव होकर केवल रस की प्रधानता होती है। इस शैली को मम्मट ने 'कान्ता-सम्मित' उपदेश-शैली नाम दिया है। स्त्री जब किसी काम में पुरूष को प्रवृत्त या किसी कार्य से उसको निवृत्त करती है तब वह अपने सारे सामर्थ्य से उसको सरस बनाकर ही उस प्रकार की प्रेरणा करती है। इसलिए कान्तासम्मित शैली में शब्द तथा अर्थ दोनों का गुणीभाव होकर रस की प्रधानता हो जाती है। इसलिए इसको रसप्रधान-शैली कहा जा सकता है। मम्मटाचार्य ने काव्य की उपदेश-शैली को इस श्रेणी में रखा है। काव्यों के पढ़ने से भी रामादिके समान आचरण करना चाहिये, रावण आदि के समान आचरण नहीं करना चाहिये इस प्रकार की शिक्षा प्राप्त होती है। परन्तु उसमें शब्द या अर्थ की नहीं अपितु रस की प्रधानता होती है। काव्य के रसास्वादन के साथ-साथ कर्तव्य-अकर्तव्य का ज्ञान भी मनुष्य को होता जाता है। यह शैली वेद-शास्त्र की शब्दप्रधान तथा इतिहास-पुराण आदि की अर्थप्रधान दोनों शैलियों से भिन्न और सरसता के कारण अधिक उपादेय है। इसलिए काव्य के विषय में प्रयत्न करना ही चाहिये, यह ग्रन्थकार का अभिप्राय है।

निःसंदेह काव्य से यश प्राप्त होता है यहाँ इस संदर्भ में चर्चा करने हेतु विद्वान किस प्रकार निदर्शन करते हैं यह सर्वथा द्रष्टव्य है।

काव्य से यश की प्राप्ति होती है इसको सिद्ध करने के लिए ग्रन्थकार ने कालिदास का उदाहरण दिया है, जो उचित ही है। अर्थप्राप्ति भी काव्य से हो सकती है, इसके लिए ग्रन्थकार ने धावक का नाम लिया है। श्रीहर्ष के नाम से 'रत्नावली-नाटिका' आदि जो ग्रन्थ पाये जाते हैं वे वस्तुतः उनके बनाये हुए नहीं हैं अपितु धावक नामक किसी अन्य कवि के बनाये हुए हैं। राजा श्रीहर्ष ने प्रचुर धन देकर उस कवि को सम्मानित तथा पुरस्कृत किया, इसलिए कवि ने उस पर से अपना नाम हटाकर लिखने वाले के स्थान पर राजा श्रीहर्ष का नाम डाल दिया है। इस प्रकार उन काव्यों से धावक को केवल धन की प्राप्ति हुई, यश की प्राप्ति जितनी होनी चाहिये थी उतनी नहीं हुई। तीसरा प्रयोजन 'व्यवहारविदे' अर्थात् व्यवहार का ज्ञान है। काव्य-नाटक आदि में जो चरित्र-चित्रण होता है उससे भिन्न-भिन्न स्थितियों में पात्रों के परस्पर व्यवहार की शैली का परिज्ञान होता है, विशेषकर राजा आदि के साथ किस प्रकार का शिष्टाचार व्यवहार में लाना चाहिये इस बात का परिज्ञान काव्यादि के द्वारा ही साधारण जनों को प्राप्त होता है। 'सद्यः परनिर्वृतये' अर्थात् काव्य के निर्माण अथवा पाठ के साथ ही जो एक विशेष प्रकार के आन्तरिक आनन्द की प्राप्ति होती है वह

अलौकिक आनन्दानुभूति ही काव्य का सबसे मुख्य प्रयोजन है। इस आनन्दानुभूति की बेला में पाठक संसार का और सब-कुछ भूलकर उसी काव्य जगत् में तल्लीन हो जाता है। इस तन्मयता में ही उस अलौकिक आनन्द की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए ग्रन्थकार ने उसके साथ 'विगलितवेद्यान्तरम्' तथा 'सकलप्रयोजनमौलिभूतम्' ये दो विशेषण जोड़े हैं।

इन प्रयोजनों में 'शिवेतरक्षति' अर्थात् अनिष्ट-अमङ्गल का निवारण भी एक प्रयोजन बतलाया गया है। इसके लिए ग्रन्थकार ने 'मयूर' कवि का उदाहरण दिया है। 'मयूर' कवि का एकमात्र काव्य 'सूर्यशतक' मिलता है। इसमें सूर्य के स्तुति-परक १०० श्लोक हैं। कहते हैं कि इन श्लोकों द्वारा सूर्य की स्तुति कर 'मयूर' कवि ने कुष्ठ-रोग से छुटकारा पाया था। इसलिए ग्रन्थकार ने उसे अनिष्ट-निवारण के उदाहरण रूप में प्रस्तुत किया है। 'मयूर' कवि के कुष्ठ होने के विषय में एक कथा प्रसिद्ध है। उसका भी इस प्रसङ्ग में उल्लेख कर देना उचित होगा। 'मेरुतुङ्गाचार्य' कृत 'प्रबन्धचिन्तामणि' तथा 'यज्ञेश्वरभट्ट' कृत 'सूर्य-शतक' की टीका में मयूरभट्ट के कुष्ठ होने और उस दुष्ट रोग से मुक्त होने की कथा इस प्रकार दी गयी है। काव्य प्रयोजन को भली भांति समझने में कई आख्यान भी बड़े ही मददगार हैं।

मयूरभट्ट का उपाख्यान

संवत् १०७८ या सन् १०२१ में मयूर कवि राजा भोज के सभारत्न थे और धारानगरी में रहते थे। 'कादम्बरी' नामक प्रसिद्ध गद्य-काव्य के निर्माता महाकवि 'बाणभट्ट' इनके भगिनी-पति अर्थात् बहनोई थे। वे भी उसी धारानगरी में रहते थे। दोनों ही कवि थे इसलिए साले-बहनोई के इस सम्बन्ध के अतिरिक्त भी उन दानों में विशेष मैत्री-भाव था। दोनों अपनी नूतन रचनाएँ एक-दूसरे को सुनाते रहते थे। ऐसा सुन्दर समायोजन बहुत कम देखने को मिलता है।

एक दिन की बात है कि बाण की पत्नी किसी कारण से बाणभट्ट से अत्यन्त अप्रसन्न हो गयी। बाणभट्ट ने उसको मनाने का बहुतेरा प्रयत्न किया पर उसमें उनको सफलता नहीं मिली। इस मान-मनौवल में ही उनकी सारी रात बीत गयी और लगभग सबेरा हो आया, पर बाणभट्ट भी अपने प्रयत्न में लगे हुए थे वे अपनी पत्नी से कह रहे थे, ''हे प्रिये, रात्रि समाप्त हो आयी है। चन्द्रमा अस्त होने जा रहा है और यह दीपक भी रातभर जागने के कारण अब निद्रा के वशीभूत होकर झोंके ले रहा है। यद्यपि प्रणाम से मानकी समाप्ति हो जाती है पर मेरे सिर नवाने पर भी तुम अपना क्रोध नहीं छोड़ रही हो।''[१]

यद्यपि कवि सक्षम थे कि वे आगे की रचना कर सकते थे किंतु विद्वत् चर्चा का आनन्द आखिर किस प्रकार उठाया जा सकता था और ऐसे में श्लोक के तीन चरण बन पाये थे ओर बाणभट्ट उन्हीं तीनों को बार-बार दुहरा रहे थे। इसी समय मयूरभट्ट प्रातः काल के भ्रमण और काव्यचर्चा के निमित्त बाणभट्ट को साथ ले जाने के लिए उनके घर आ पहुँचे। बाणभट्ट को ऊपर लिखे श्लोक का पाठ करते हुए सुनकर वे बाहर ही रुक गये। थोड़ी देर सुनने के बाद उनसे चुप न रहा- 'कुचप्रत्या-सत्त्या हृदयमपि ते चण्डि कटिनम्।'

बाण की पत्नी ने जब यह सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया और उस क्रोध के आवेश में उसने पूर्ति करने वाले को पहिचाने बिना ही कुष्टी हो जाने का शाप दे दिया। उसके पातिव्रत्य के प्रभाव से मयूरभट्ट पर शाप का प्रभाव पड़ा और वे कुष्टी हो गये। इसके बाद मालूम होने तथा क्रोध शान्त होने पर उसी ने उनको शाप के प्रभाव से मुक्त होने का यह उपाय बतलाया कि तुम गङ्गा के किनारे जाकर सूर्य की उपासना करो, उसी से तुम इस रोग से मुक्त हो सकोगे। तदनुसार मयूरभट्ट ने गङ्गा के किनारे एक वृक्ष पर एक रस्सी का छीका लटकाकर और उस पर बैठकर सूर्य देव की उपासना प्रारम्भ की। वह प्रतिदिन सूर्य की स्तुति में एक नया श्लोक बनाते थे और प्रतिदिन अपने छीके की एक रस्सी काटते जाते थे। छीके की सौ डोरियाँ कट जाने पर उनके गङ्गा में गिरने के पूर्व ही सूर्य देव की कृपा से उनको आरोग्य-लाभ हो गया। इस नाम से प्रसिद्ध है। इसी प्रसिद्ध कथा के आधार पर मम्मटाचार्य ने 'शिवेतरक्षतये' की व्याख्या में मयूरभट्ट के नाम का उल्लेख किया है, अर्थात् शिव से जो इतर है उससे रक्षा भी काव्य का एक प्रयोजन है।

वामनाभिमत काव्य के प्रयोजन

मम्मटाचार्य ने यहाँ काव्य के जिन छह प्रयोजनों का निरूपण किया, लगभग उसी प्रकार के काव्य-प्रयोजनों का प्रतिपादन उनके पूर्ववर्ती आचार्यों ने भी किया है। इनमें से 'वामन' कृत प्रयोजनों का निरूपण सबसे अधिक संक्षिप्त है। उन्होंने काव्य के केवल दो प्रयोजन माने हैं- एक कीर्ति और दूसरा प्रीति या आनन्द। उन्होंने लिखा है- इनमें से प्रीति अर्थात् आनन्दानुभूति को काव्य का दृष्ट-प्रयोजन तथा कीर्ति को काव्य का अदृष्टार्थ-प्रयोजन माना है और इस पर विशेष बल दिया है।[२] उन्होंने इस विषय में तीन श्लोक भी दिये हैं।[३]

भामह-प्रतिपादित काव्य-प्रयोजन

वामन के भी पूर्ववर्ती आचार्य भामह ने इनकी अपेक्षा अधिक विस्तार के साथ काव्य के प्रयोजनों का वर्णन निम्नलिखित प्रकार किया है- *धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च। करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबन्धनम्।।*[४] अर्थात् उत्तम काव्य की रचना धर्म, अर्थ काम और मोक्ष-रूप चारों पुरुषार्थों तथा समस्त कलाओं में निपुणता और कीर्ति एवं प्रीति अर्थात् आनन्द को उत्पन्न करने वाली होती है।

भामह के इस श्लोक को उत्तरवर्ती सभी आचार्यों ने आदरपूर्वक अपनाया है। इसके अनुसार कीर्ति तथा प्रीति के अतिरिक्त पुरुषार्थ-चतुष्टय, कला तथा व्यवहार आदि में निपुणता की प्राप्ति भी काव्य का प्रयोजन है।

कीर्ति को काव्य का मुख्य प्रयोजन बतलाते हुए जिस प्रकार वामन ने तीन श्लोक लिखे थे, जो ऊपर दिये जा चुके हैं, उसी प्रकार भामह ने भी कुछ श्लोक इसी अभिप्राय के लिखे हैं[५]; उत्तम काव्यों की रचना करने वाले महा-कवियों के दिवङ्गत हो जाने के बाद भी उनका सुन्दर काव्य-शरीर 'यावच्चन्द्रदिवाकरौ' अक्षुण्ण बना रहता है।।६।। और जब तक उनकी अनश्वर कीर्ति इस भू-मण्डल तथा आकाश में व्याप्त रहती है तब तक वे सौभाग्यशाली पुण्यात्मा देव पद का भोग करते हैं।।७।। इसलिए प्रलय पर्यन्त स्थिर रखने वाली कीर्ति के चाहने वाले कवि को, उसके उपयोगी समस्त विषयों का ज्ञान प्राप्त कर उत्तम काव्य की रचना के लिए प्रयत्न करना चाहिये।।८।। काव्य में एक भी अनुपयुक्त पद न आने पावे इस बात का ध्यान रखना चाहिये, क्योंकि बुरे काव्य की रचना से कवि उसी प्रकार निन्दा का भाजन होता है जिस प्रकार कुपुत्र से पिता की निन्दा होती है।।११।। (कु-कवि बनने की अपेक्षा तो अ-कवि होना अच्छा है क्योंकि) अ-कवित्व से न तो अधर्म होता है और न व्याधि या दण्ड का भागी ही बनना पड़ता है परन्तु कु-कवित्व को विद्वान् लोग साक्षात् मृत्यु ही कहते हैं।।१२।।

कुन्तक-प्रतिपादित काव्य-प्रयोजन

कुन्तक ने अपने 'वक्रोक्तिजीवित' में इसको और भी अधिक स्पष्ट किया है। उन्होंने काव्य के प्रयोजनों का निरूपण करते हुए लिखा है- काव्य की रचना अभिजात-श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न- राजकुमार आदि के लिए सुन्दर एवं सरस ढंग से कहा गया धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की सिद्धि का सरल मार्ग है।[६]

सत्काव्य के परिज्ञान से ही व्यवहार करने वाले सब प्रकार के लोगों को अपने-अपने व्यवहार का पूर्ण एवं सुन्दर ज्ञान प्राप्त होता है।

(और सबसे बड़ी बात यह है कि) उससे सहृदयों के हृदय में चतुर्वर्ग-फल की प्राप्ति से भी बढ़कर आनन्दा-नुभूतिरूप चमत्कार उत्पन्न होता है।

कवि तथा पाठक की दृष्टि से प्रयोजन-विभाग

इस प्रकार पूर्ववर्ती आचार्यों ने जिन काव्य-प्रयोजनों का प्रतिपादन किया था उनका और भी अधिक परिमार्जन करके काव्य प्रकाशकार ने सबसे अधिक सुन्दर एवं विस्तृत रूप में काव्य के प्रयोजनों का निरूपण किया है। इनमें से तीन को मुख्यतः कवि-निष्ठ तथा तीन को मुख्यतः पाठक-निष्ट प्रयोजन कहा जा सकता है। 'यश से', 'अर्थकृते' तथा 'व्यवहारविदे' 'सद्यः परनिर्वृतये' तथा 'कान्तासम्मिततया उपदेशयुजे' ये तीन मुख्यतः पाठक की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण प्रयोजन कहे जा सकते हैं। परन्तु प्राचीन आचार्यों ने इस प्रकार का विभाजन नहीं किया है।

भरत मुनि के काव्य-प्रयोजन

काव्यशास्त्र के आद्य आचार्य श्रीभरत मुनि ने अपने 'नाट्यशास्त्र' में नाट्य अथवा काव्य के प्रयोजनों का वर्णन किया है।[७]

उत्तरवर्ती आचार्यों ने इसी के आधार पर काव्य के प्रयोजनों का निरूपण किया है।

इस प्रकार अधिकांश आचार्यों ने कीर्ति या यश को काव्य का मुख्य प्रयोजन माना है। कदाचित् इसीलिए मम्मटाचार्य ने भी अपनी कारिका में उसको सबसे पहिला स्थान दिया है। कवि की दृष्टि से वह है भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण। परन्तु पाठक की दृष्टि से सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रयोजन 'सद्यः परनिर्वृति' अर्थात् अलौकिक आनन्दानुभूति है। इसलिए मम्मटाचार्य ने उसको 'सकलप्रयोजन-मौलिभूतम्' कहा है।।२।।

निष्कर्षतः काव्य प्रयोजन को समझने के यद्यपि कवि मम्मट की कारिका पर्याप्त है किंतु विद्वानों के मतों का निदर्शन उसे और भी रोचक बना देता है।

स्रोत

[१]गतप्राया रात्रिः कृशतनुशशी शीर्यत इव/ प्रदीपोऽयं निद्रावशमुपगतो घूर्णित इव। प्रणामान्तो मानस्त्यजसि न तथापि क्रुधमहो। (काव्य प्रकाश, कारिका-२, पृष्ठ संख्या १३)

[२]काव्यं सद् दृष्टादृष्टार्थं प्रीतिकीर्तिहेतुत्वात्। (वामन -काव्यालङ्कारसूत्र, १/१/५)

[३]प्रतिष्ठां काव्यबन्धस्य यशसः सरणिं विदुः। अकीर्तितवर्तिनीं त्वेवं कुकवित्वविंडम्बनाम् ।।१।। कीर्ति स्वर्गफलामाहुरासंसारं विपश्चितः। अकीर्तिन्तु निरालोकनर-कोद्देशदूतिकाम् ।।२।। तस्मात् कीर्तिमुपादातुमकीर्तिञ्च व्यपोहितुम्। काव्यालङ्कारसूत्रार्थः प्रसाद्यः कविपुङ्गवैः।।३।। (वामन -काव्यालङ्कारसूत्र, १/१/५)

[४]भामह -काव्यालङ्कार, १/२

[५]उपेयुषामपि दिवं सन्निबन्धविधायिनाम्। आस्त एव निरातङ्कं कान्तं काव्यमं वपुः।।६।। रणद्धि रोदसी चास्य यावत् कीर्तिरनश्वरी। तावत् किला-यमध्यास्ते सुकृती वैबुधं पदम् ।।७।। अतोऽभिवाञ्छता कीर्ति स्थेयसीमा भुवः स्थितेः। यत्नो विदितवेद्येन विधेयः काव्य-लक्षणः।।८।। सर्वथा पदमप्येकं न निगाद्यमवद्यवत्। विलक्ष्मणा हि काव्येन दुःसुतेनेव निन्द्यते।।११।। नाकवित्वमधर्माय व्याधये दण्डनाय वा। कुकवित्वं पुनः साक्षान्मृतिमाहुर्मनीषिणः।।१२।। (भामह -काव्यालङ्कार, प्रथम परिच्छेद)

[६]धर्मादिसाधनोपायः सुकुमारक्रमोदितः। काव्यबन्धोऽभिजातानां हृदयाह्लादकारकः।।३।। व्यवहारपरि-स्पन्दसौन्दर्य व्यवहारिभिः। सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते।।४।। चतुर्वर्गफलास्वादमप्यतिक्रम्य तद्विदाम्। काव्या-मृतरसेनान्तश्चमत्कारो वितन्यते।।५।। (वक्रोक्तिजीवितम्, प्रथम उन्मेष, ३-५ कारिका)

[७]उत्तमाधममध्यानां नराणां कर्मसंश्रयम्। हितोपदेशजननं धृति-क्रीड़ा-सुखादिकृत्।।११३।। दुःखार्तानां श्रमार्तानां शोकार्तानां तपस्विनाम्। विश्रान्तिजननं काले नाट्यमेतद् भविष्यति।।११४।। धर्म्यं यशस्यमायुष्यं हितं बुद्धिविवर्द्धनम्। लोकोपदेशजननं नाट्यमेतद् भविष्यति।।११५।। (अ० १, श्लो० ११३-११५)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,112-114
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2016

प्लेटो का राजनीतिशास्त्र

डॉ. मनोज कुमार अग्निहोत्री*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्लेटो का राजनीतिशास्त्र* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार अग्निहोत्री* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

कार्य-अकार्य के प्रश्न भी सीधे उसकी सामजिक और सामाजिक कल्याण के प्रश्नों से जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि राजनीति प्लेटो के लिए मात्र एक शास्त्रीय अध्ययन या आनुभविक निरूपण का विज्ञान न होकर, व्यक्ति के लिए एक सक्रिय सामाजिक दायित्व का क्षेत्र है। तदनुसार ग्रेटर हिप्पियस (281) में उसके द्वारा इस आश्चर्य की अभिव्यक्ति कि क्यों उसके पूर्ववर्ती महान् चिंतकों-बियास, पिट्टाकुस, थेल्ज, एनेक्सागोरस आदि ने राजनीति में सक्रिय भाग नहीं लिया, बिल्कुल स्वाभाविक है। राजनीति में भाग लेने का अर्थ है, राजनीतिक सद्गुणों में हाथ बँटाना, क्योंकि ये ही उसके अनुसार राज्य की स्थिरता के आधार है। और चूँकि सर्वोच्य ज्ञान-सम्पन्न ''दार्शनिक' ही सद्गुणों के क्षेत्र में, और इसलिए सदाचरण के क्षेत्र में भी सर्वाधिक पारदर्शी व्यक्ति है, प्लेटो उसे ही राज्य के सर्वोच्च आसन पर आरूढ़ देखना चाहता है।

प्लेटो के लिए राज्य का आदर्श प्रतिमान तत्कालीन 'नगर-राज्य' था। राज्य व्यक्तियों से बनता है और उसका आदर्श नागरिकों का स्वस्थ व कल्याणकारी जीवन है। अतः राज्य और व्यक्तियों दोनों को ही एक पक्षपातरहित सामान्य नैतिक नियम के अधीन रहना चाहिए। यह नियम 'न्याय' है और इसका चर्चा प्लेटो ने रिपब्लिक में पहले राज्य-सन्दर्भ से तथा बाद में व्यक्ति -सन्दर्भ से विस्तारपूर्वक की है। उसके अनुसार 'न्याय' में ही राज्य का स्वास्थ्य निहित है क्योंकि वह न केवल सदाचारी का पुरस्कर्त्ता है, वरन् साथ ही दुराचारी को भी दण्ड द्वारा अन्याय के मार्ग से हटाकर सदाचार में प्रवृत करने वाले। किन्तु इस 'न्याय' का ठीक- ठीक स्वरूप स्थिर कर पाना सहज नहीं क्योंकि उसे प्लेटो अपने समय की प्रचलित राज्य-शासन प्रणालियों या संविधानों में नहीं देख पाता। अतएवं वह उसके संदर्भ में एक आदर्श-संविधान की रूपरेखा स्पष्ट करता है, जिसका व्यवहार में यथासम्भव अनुकरण, उसके अनुसार, वांछनीय है।

प्लेटो के आदर्श संविधान का आधार 'साम्यवाद' है किन्तु निरसन्देह आधुनिक भौतिकतावादी साम्यवादी विचारधारा के प्रतिकूल, उन आध्यात्मिक विचारों से अनुप्रमाणित है जिसका आधार स्वतः प्लेटो का 'एक' या 'शुभ' का आदर्श प्रत्यय है। अवश्य एक भौतिक-सामाजिक इकाई के रूप में राज्य का उद्गम, प्लेटो के अनुसार, मनुष्यों की आवश्यकता में है - हम व्यक्ति रूप

* एस. एस. खन्ना महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत। E-mail : agni.mkumar@yahoo.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

से अपने आप में पर्याप्त वहीं हैं, अतः एक साथ मिलकर अपनी आवश्यकताओं की संपूर्ति का प्रयास करते हैं। किन्तु इस तरह एक साथ मिलकर कार्य करने में एक खतरा यह है कि हममें से कुछ अधिक चालाक, बलवान, धनी या कुशल व्यक्ति अन्य व्यक्तियों को अपनी इच्छापूर्ति के लिए साधन के बतौर प्रयोग कर सकते है और इससे राज्य का सारा औचित्य समाप्त हो जाता हैं। इस खतरे से बचने का उपाय प्लेटो की दृष्टि में यह है कि राज्य का प्रधान, अर्थात् शासक, किसी तरह नैसर्गिक या पारस्परिक ढंग से पदारूढ़ न हो सके, यद्यपि व्यवहारतः राज्यों में व्यक्तियों को इसी तरह शासन में आता हुआ देखा जाता है। अतः इस पद्धति से निपटने के लिए आवश्यक है कि नागरिकों को उचित प्रशिक्षण मिले, क्योंकि यही एक ऐसा मार्ग है जिससे राज्य में सुधार सम्भव है, प्रशासन और अनुशासन के सन्दर्भ में औचित्य-अनौचित्य का ज्ञान एक सार्वजनिक स्तर पर सम्भव है। केवल इतना ही नहीं, स्वतः व्यक्ति को भी इससे आत्मानुशासन में स्थिर रह सदाचारी बनने की शिक्षा मिलती है।

जैसे कि ऊपर कहा गया है, राज्य का उद्‌गम मनुष्य की आवश्यकताओं में है और इसलिए उसका एक अनिवार्य आर्थिक पहलू भी है। इसकी अभिव्यक्ति समाज में श्रम-विभाजन के रूप से होती है। मनुष्यों में विविध कार्यो के प्रति एक स्वाभाविक रूचि व दक्षता पायी जाती है। बहुसंख्यक जनों को शारीरिक श्रम वाले धंधो में खेती, औजार-उपकरण-निर्माण, वस्त्र-बुनाई, लेन-देन आदि में लगा देखा जाता है। किन्तु इस तरह के कार्य-कलापों वाला जीवन बहुधा बड़ा स्थूल जीवन होता है और समाज का कार्य केवल इससे नहीं चलता। फलतः हम समाज में संगीतज्ञों, कवियों शिक्षकों आदि का भी स्थान पाते हैं। किन्तु इससे नगर राज्य की जनसंख्या में वृद्धि होने लगती है और उसे अपने क्षेत्र-विस्तार के लिए अपने निकटवर्ती स्थानों में पहले से बसे जन-समुदायों से संघर्ष में उलझना होता है। इस तरह सामाजिक संगठन के प्रारम्भिक स्तरों पर विशुद्ध आर्थिक कारणों से युद्ध का जन्म होता है और इस स्थिति का सफलतापूर्वक सामना कर सकने के लिए आभिभावकों' की आवश्यकता होती है जो राज्य-संगठन और सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होते हैं। प्लेटो इन अभिभावकों के पूर्ण प्रशिक्षण, विवेक और सद्‌गुणों पर जोर देता है और इस तरह संविधान के उसके शास्त्रीय विवेचन में यही वह बिन्दु है जहाँ वह राज्य के आर्थिक सन्दर्भ से ऊपर उठकर नैतिकता और व्यवहार-जगत् में प्रथम भौतिक सन्दर्भ से द्वितीय आदर्श सन्दर्भ की ओर संग्रहण की क्रिया शिक्षा के माध्यम से सम्पन्न होती है। इस तरह ऐसा जान पड़ता है जेसे प्लेटो राज्य-तन्त्र का उपयोग भौतिक जड़ता से अभिभूत 'आर्थिक मनुष्य' को एक दार्शनिक विवके वाले 'आदर्श मनुष्य' के रूप में विकसित करने के लिए कर रहा हो। राज्य में सामाजिक संगठन की संरचना का जो स्तर-भेद प्लेटो को मान्य है, उसमें भी उक्त 'भौतिक-आदर्शो का भेद परिलक्षित है। वह समाज में सबसे नीचे स्तर पर शरीर - श्रमजीवी कृशकों-कारीगरों से आरम्भ कर श्रम में बौद्धिक 'सूक्ष्मता के क्रमशः वर्तमान उच्चस्तरीय राज्य-कार्यो के आधार से 'अभिभावकों' के वर्ग तक पहुँचता है। इन अभिभावकों को भी वह दो उपवर्गो में बांटता हैः राज्य-शासक जिसके चयन का आधार केवल बौद्धिक श्रेष्ठता और सद्‌गुण होंगे तथा अन्य, जो उक्त राज्य-शासक के सहायक होंगे। इन दो वर्गो के बीच एक बड़ा वर्ग सैनिकों का होगा। सैनिकों के उचित प्रशिक्षण पर प्लेटो बड़ा जोर देता है, क्योंकि यदि ये त्याग और संयमपूर्वक जीवन व्यवतीत नहीं करते तो अपनी शक्ति का दुरुपयोग स्वार्थ के लिए करेंगे और इस तरह पूरा राज्य ही खतरे में पड़ जायेगा। पुनः चूंकि सहज प्रवृत्ति, रूचि और प्रशिक्षण के अनुसार आत्महित की उपलब्धि और उसके लिए की जाने वाली क्रिया की स्वतन्त्रता केवल वहीं तक मान्यता है जहाँ तक कि वह अन्य व्यक्तियों की ऐसी स्वतन्त्रता का अतिक्रमण न करे, प्लेटो समाज के उक्त तीनों वर्गो के लिए अपनी-अपनी जगह और उस जगह सम्बन्धी अपने-अपने कर्तव्यों के पालन के प्रति पूर्णतः सचेत है। किन्तु समाज के विविध वर्गो के लिए इस स्थान व कर्तव्य-भेद की धारणा प्लेटो ने इस तरह की है कि वे एक-दूसरे के सम्पूरक तत्वों के रूप में कार्य करते हैं। राज्य की बुद्धिमत्ता उसके अभिभावकों में साहस उसके सैनिकों में और संयम उसकी अनुशासित प्रजा (कृषकों, कारीगरों) में होता है। 'न्याय' इसमें निहित है कि समाज में प्रत्येक व्यक्ति अपने क्रिया-कलाप बिना किसी अन्य व्यक्ति को बाधा पहुँचाये सुचारु रुप से करता है। जिस तरह कोई व्यक्ति तभी न्यायी कहलाता है, तब उसके अन्तर्गत (आत्म) के सभी अंश परस्पर समन्वित रुप से, निम्न-स्तरीय अंश के आधीन रहकर, कार्य करते हैं, उसी तरह राज्य में भी 'न्याय' तभी होता है जब उसके विविध वर्गो के बीच इस तरह का सम्बन्ध होता है।

निस्सन्देह समाज के उक्त तीन वर्गो के अतिरिक्त एक वर्ग 'दासों' का है, किन्तु उन पर प्लेटो के उक्त आदर्श राज्य के उच्चस्तरीय विचार प्रयुक्त नहीं होते। वस्तुतः वे उक्त उच्चवर्गीय स्वामियों की सम्पत्ति की तरह है। यद्यपि प्लेटो उनके प्रति

मनमाने व्यवहार का निषेध करते हैं, तथापि यह भी सत्य है कि वह उनके लिए सहज और स्वतन्त्र जीवन का पक्षधर नहीं है। वह न तो तत्कालीन एथेन्स में दासों के प्रति प्रजातन्त्रीय उदारता को समर्थन करता है और न ही तत्कालीन स्पार्टा में उनके प्रति अधिनायकवादी अत्याचार का। वह दास-प्रथा को उच्च वर्गो के लिए एक उपयोगी पारम्परिक संस्था के रूप में बनाये रखने का समर्थक है।

किन्तु दूसरी ओर समाज में स्त्रियों के स्थान के बारे में वह अधिक उदार है। रिपब्लिक में वह पत्नियों और बच्चों के 'समुदाय' (Community) की चर्चा करता है, जिसके अन्तर्गत ऐसी व्यवस्था का प्रावधान है कि स्त्रियों को पुरुषों की ही तरह प्रशिक्षित किया जावे तथा बच्चों की शिक्षा-दीक्षा राज्य के संरक्षण में हो। वस्तुतः वह सैनिकों और अभिभावकों के लिए किन्हीं अन्य स्थायी सम्पत्तियों के निषेध की ही तरह स्त्रियों-बच्चों को भी केवल उनकी निजी सम्पत्ति के रूप में रखे जाने का विरोधी हैं अन्य सम्पत्तियों के संग्रह और सुरक्षा की तरह इस जैसी सम्पत्ति के सम्बन्ध में भी इन उच्च वर्गो के त्याग और संयमपूर्ण जीवन में बाधा पड़ेगी और उनकी उच्च आध्यात्मिक समभाव की मानसिकता प्लेटो के दर्शन में ज्ञान केवल बौद्धिक व्यायाम नहीं है। इसमें चरित्र और नीतिवान् होना भी सम्मिलित है। दूसरी बात है कि मानव इस संसार में विस्मृति तथा इन्द्रिय मोह की दशा में रहता है। इस विस्मृति और मोह को केवल ज्ञान के द्वारा आलौकिक किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में मानव स्वभावतः सुखवादी होता है और उसे केवल शिक्षा के द्वारा श्रेयवादी बनाया जा सकता है।

योद्धा को भी सिखाना पड़ता है कि उसे भय नहीं खाना चाहिए, वरन् कठिन परिस्थितियों का सामना निर्भीकता के साथ करना चाहिये। इसी प्रकार श्रमिकों को आलसी नहीं होना चाहिए।

फिर शासक और श्रमिक वर्गो के बीच भेद योद्धाओं के बल पर ही किया जा सकता है। पर बल की अपेक्षा शिक्षा पर आधारित संस्कार के ही द्वारा तीनों वर्गो में सामंजस्य रखा जा सकता है। इसी सामंजस्य से सामाजिक न्याय का उद्‌भव होता है जो आदर्श राज्य का परम लक्ष्य है। पर अन्त में देखा जाए तो आदर्श राज्य की ऐसी व्यवस्था रहनी चाहिए जिसमें प्रत्येक नागरिक अपने स्वभाव और अपनी शिक्षा एवं प्राकृतिक क्षमताओं के अनुसार अपना-अपना विकास करे। गीता में लिखा है - *स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धि लभते नरः।*

पर यह निश्चित बात है कि बिना शिक्षा के नागरिक अपनी परम गति को नहीं प्राप्त कर सकते हैं और न आदर्श राज्य का प्रतिपालक कर सकते हैं। यही कारण है कि प्लेटो के आदर्श राज्य में शिक्षा को प्राथमिकता दी गई है और यह काम शासक वर्ग के लिये परमावश्यक बताया गया है। शिक्षा प्राप्त सुयोग्य नागरिक को प्लेटो ने 'दार्शनिक' कहा है। इसलिये उनकी प्रसिद्ध उक्ति है जब तक शासक दार्शनिक शासक न हो तब तक आदर्श राज्य की स्थापना नहीं हो सकती है। स्थिर न रह सकेगी। पुनः प्लेटो यह देख पाने में भी सक्षम है कि पुरूषो और स्त्रियों के बीच नैसर्गिक एक जैसी है, यद्यपि उनके बीच जैविक-प्रक्रिया सम्बन्धी भेद तथा शारीरिक शक्तिमत्ता का भेद है। अतः स्त्रियों को केवल बच्चो के प्रजनन, लालन-पालन और गृह-दायित्वों तक सीमित रखने का कोई औचित्य नहीं है। शिक्षा, रोजगार, सामाजिक दायित्व और राजकीय प्रशासन के कार्यो में उन्हें समान अवसर व स्थान मिलना चाहिए। अतः उच्च सामाजिक स्तर पर प्लेटो चाहता है कि स्त्री-पुरूषों के बीच वैवाहिक सम्बन्ध राज्य की देखरेख में हो, जिससे कि न केवल उनकी प्रशासनगत सुविधाओं-असुविधाओं पर ध्यान रखा जा सके, वरन् साथ ही जिनसे उत्तम सन्तान की उत्पत्ति भी हो। जहाँ तक निम्नवर्गीय कृषक-कारीगरों का सवाल है, प्लेटो का मत है कि उन्हें अपनी वैयक्तिक सम्पत्ति व परिवार बनाए रखना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

पाण्डेय, डॉ0 राम सकल -*विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री*
पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो से संबंधित दर्शन - ग्रन्थ
दि फिलासफी ऑफ प्लेटो
फ्रीतो एण्ड फीड्रो
प्लेटो का प्रजातंत्र
प्लेटो दि मैन एण्ड हिज वर्क
त्रिपाठी, डॉ0 सी0एल0 -*ग्रीक दर्शन,* प्रयाग पुस्तक सदन, इलाहाबाद

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,115-127
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 25 सितम्बर 2016

लोक कलायें और लोक परम्परायें

डॉ. योगेश मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *लोक कलायें और लोक परम्परायें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *योगेश मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारतीय जीवन संस्कृति की अवधारणा लोक मानस को अपना आधार बनाती है। लोक से लोक की संयोगात्मक अभिव्यक्ति ही भारतीय संस्कृति की पहचान है। इसी आधार पर इसमें सम्प्रेषणीयता के सभी आवश्यक तत्व समाहित हो जाते हैं। जब भी लोक कला अथवा लोक विधा पर बात चलती है तो भारत उसमें स्वतः उपस्थित होता है क्योंकि हमारे यहाँ लोक से इतर किसी वास्तु या विधा की कल्पना ही संभव नहीं है। भारतीयता में यह लोक तत्व ही है जो इसको संसार की अन्य सभी सभ्यताओं से विशेष बनाता है। इसकी सम्प्रेषण शक्ति का कायल विश्व है। हमारी समस्त शास्त्रीय विधाएं स्वयं लोक से उत्तर कर आती हैं। यहाँ लोक से इतर कोई कल्पना है ही नहीं। भारत का जीवन प्रवाह ही लोक के लिए स्थापित है। इसीलिए यहाँ की लोक शैलियां कई बार शाश्वत स्थापना पा जाती हैं। यह हमारी लोकोन्मुख दृष्टि का ही परिणाम है कि समाज का अशिक्षित हिस्सा भी अपने महापुरुषों की उक्तियों और रचनाओं के भारी अंश मौखिक रूप से कभी भी सुनाने में सक्षम रहा है। गोस्वामी तुलसीदास से लेकर सूर, कबीर, मीरा, गोरख, नानक, रैदास, तुकाराम, चौतन्य आदि अनेकानेक कवियों, मनीषियों की शिक्षाओं के लिए भारत के लोक को किसी अलग विधा की तलाश नहीं करनी पड़ी बल्कि बड़ी आसानी से ये रचनायें लोक जीवन में प्रवेश कर गईं और आज भी प्रभावकारी भूमिका में हैं। आल्हा, बिरहा, सोरठी, पण्डवानी, सोहर, नकटा, कजरी जैसी गायन विधाएं यदि लोक से ही होकर आती हैं तो मधुबनी कला, पीडिया के भित्ति चित्र, राजस्थान की बंधेज जैसी विधाएं भी ठेठ लोक से ही आती है।

वास्तविकता में संचार किसी भी समाज की आधारभूत आवश्यकता है और यह समाज के निर्माण की पहली शर्त है। सदियों से अलग-अलग समाजों ने संचार के लिए विशिष्ट माध्यमों को विकसित किया है। आदिम समाजों में सामूहिक नृत्य-गायन और भोजन करना संचार का सशक्त माध्यम होते थे। आज भी आदिवासी समाजों में ये परंपरा जीवित है, तो इसके पीछे मजबूत आधार भी हैं। एक साथ नाचने-गाने और भोजन करने से आदिवासी समाज के बीच न केवल गहरा संवाद स्थापित होता है बल्कि पूरा आयोजन अपने सदस्यों के बीच ये संदेश भी छोड़ता है कि वे आपस में गहरे से जुड़े हुए हैं।

* बी-13, बटलर पैलेस कॉलोनी, जॉपलिंग रोड, लखनऊ (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

इनसे थोड़े से विकसित समाजों में कुछ सुधरे रूप में नाचने गाने की परम्परायें स्थापित होती हैं। इनसे आगे अति-आधुनिक समाज यदि डिस्को या पब संस्कृति को जन्म देते हैं तो ये उनकी उसी आदिम इच्छा का परिणाम है जिसमें प्रत्येक मनुष्य दूसरों से जुड़ना चाहता है। इसी प्रकार समाज का निर्माण होता है। भले ही आज के पब या अन्य सामाजिक आयोजन आदिम समाजों के कार्यक्रमों से भिन्न हैं लेकिन इससे यही साबित होता है कि संचार मनुष्य की पहली जरूरत है। संचार के माध्यम से ही संस्कृति को आगे ले जाया जा सकता है, मनुष्य अपनी संचार गतिविधियों से ही संस्कृति को निरंतर उत्कृष्ट बनाता है और उसे अगली पीढियों तक पहुँचाता है।

मानव विकास का इतिहास प्रकृति से जुझते हुए निरंतर अपने अस्तित्व को बचाये रखने का इतिहास है। इस संघर्ष के दौरान ही उसने समूह में रहना आरंभ किया। आदिमानव अपने सहयोगियों के साथ शिकार के दौरान संकेतों और ध्वनियों के रूप में संचार करता था। लेकिन ये संचार बहुत व्यवस्थित नहीं था। कुछ ध्वनियों और इशारों के सामूहिक रूप में विशेष अर्थ थे। इसी दौरान अनेक आदिमानव समाजों ने अपनी गुफाओं में भिति चित्रों की मदद से अपनी भावनाओं को उकेरना भी आरंभ कर दिया। दुनिया के अनेक हिस्सों में इस प्रकार के चित्र पाये गये हैं। मध्यप्रदेश के भीम बेटका में भी शिकार करते मानव के चित्र पाये गये जिन्हें विद्वान आदि मानव काल का बताते हैं। संचार का ये आदिम रूप था। मानव जब झुंडों में रहने के बजाये कबीलों में व्यवस्थित जीवन व्यतीत करने लगा तो उसका संचार भी पहले से व्यवस्थित हुआ। सभ्यता के विकास से काफी पहले ही मानव ने तस्वीरों और प्रतीकों के जरिये संचार करना सीख लिया था। लेकिन व्यवस्थित भाषा का जन्म मनुष्य की एक बड़ी उपलब्धि थी। इतिहासकारों के मुताबिक भाषा की उत्पत्ति लगभग 7000 ईसा पूर्व हुई। यही वह समय है जब सभ्यता का जन्म माना जाता है। मनुष्य केवल शिकार पर निर्भर करने के स्थान पर खेती करने लगा। घुमंतू जीवन छोड़ एक स्थान पर नगर बसाने लगा। सुमेर और हड़प्पा की सभ्यता इस काल के प्रमुख उदाहरण हैं। हड़प्पा संस्कृति में हम मूर्तियों और सिक्कों के रूप में अनेक प्रतीक पाते हैं जिससे पता चलता है कि ये नगरीय समाज एक समृद्ध भाषा विकसित कर चुका था। नए शोध कार्यों में प्रतीकों की भाषा (पिक्टोग्राफिक्स) के अनेक हिस्से मिले हैं जिन्हें अभी तक पूरी तरह पढ़ा नहीं जा सका है।

भारत में जनसंचार प्रणाली में वाचिकता को बहुत महत्व दिया जाता है। पुराने दस्तावेज बताते है कि वैदिक काल में श्रुतियां और वेद सभी कुछ वाचिक परंपरा में मौजूद थे। यज्ञों में मंत्रोच्चारण के जरिये ही देवताओं को खुश करने की कोशिश की जाती थी। सारा ज्ञान भी वाचिक परंपरा के माध्यम से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचता था। इसके बाद में वेदों को लिपिबद्ध किया गया। गुरु अपने शिष्यों को पूरा का पूरा वेद याद करवा देता था। शुरुआत में ऋचाओं को पत्तों पर लिखकर सहेजने की कोशिश की गयी। प्राचीन ग्रंथो के अनुसार बौद्ध और जैन काल में समृद्ध भाषा विकसित हो चुकी थी और उसको पत्थरों पर उकेर कर स्थाई बनाने की भी परंपरा थी। इतिहास में बताया गया है कि महात्मा बुद्ध ने आम लोगों द्वारा बोले जाने वाली भाषा में अपने प्रवचन दिये ताकि लोगों को उनकी बात समझ में आ सके। मंदिर संचार के प्रभावशाली केन्द्र होते थे। जहां मूर्तियों के अलावा धार्मिक कर्म-कांडों के जरिये भी सामाजिक संचार होता था। इस काल में राजा के आदेशों को जनता तक पहुंचाने का एक माध्यम ढोल-नगाड़ों से गांव-गांव में मुनादी भी शामिल था। तत्कालीन समय में रोमन समाज में पत्थरों पर खुदाई करके सूचना पट बनाये जाते थे। बाजारों में विशेष स्थानों पर इन पटों को लगाने का नियत स्थान होता था। यह एक प्रकार के पोस्टर होते थे जिसे नई सूचना आने पर बदल दिया जाता था। इस सब के बावजूद प्राचीन समाज में वाचिक परंपरा ही लंबे समय तक प्रमुख संचार माध्यम बनी रही।

मध्ययुगीन समाजों में कला-संस्कृति का एक नया और कुछ हद तक विक्सित रूप दिखाई देता है। इसमें लोक संस्कृति के रूप में विभिन्न विधाओं में नाटक, गीत, नृत्य इत्यादि विकसित होते हैं। ये सब एक तरफ सामाजिक रीति-रिवाजों के रूप में समाज में विद्यमान रहे वहीं ये साझा मनोरंजन और संचार के साधन भी बने रहे। इन सांस्कृतिक गतिविधियों में संचार के साथ-साथ धर्म, परंपराएं, मनोरंजन, सामाजिक मेलजोल सभी कुछ मिलेजुले रूप में मौजूद था। समाज का एक विशिष्ट हिस्सा इन सांस्कृतिक गतिविधियों के प्रचार-प्रसार व आयोजन करने में लग गया। लोक कलाओं की खूबी यह रही कि आम लोग भी इसमें उतनी ही तल्लीनता से सहभागी बनता, जितना कि कलाकार, क्योंकि इसमें कोई विशेष कठिनाई नहीं थी। दरअसल, लोक कला में आम लोग ही नए प्रयोग करते थे और उसे परिमार्जित करते थे। अधिकांश लोक गीतों के रचयिता

का नाम किसी को मालूम नहीं है। राजाओं की तरफ से भी इस प्रकार के सामाजिक आयोजनों के लिए मदद दी जाती थी। अधिकांश समाजों में कुछ परिवार इस कला के माध्यम से अपना जीवन यापन भी करते थे इसलिए वही इस कला विशेष को जिंदा रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

सभ्यता के साथ ही बदलते परिवेश में लोक कलाओं के समानांतर दरबारी कला भी विकसित होने लगी जो अधिक व्यवस्थित और शास्त्रीय थी। शास्त्रीय संगीत केवल समाज के संभ्रांत तबके के लोगों के लिए ही उपलब्ध था। राजाओं और नवाबों के विशेष आश्रय में तत्कालीन शास्त्रीय कलाकार अधिक गूढ़ता और बारीकी लिये संगीत और नृत्य की साधना करते थे। शास्त्रीय संगीत के जानकार कलाकारों ने अपने घराने बना लिये। जो पीढ़ी दर पीढ़ी इस कला को सहेज कर रखते हैं। देश में शास्त्रीय संगीत की समृद्ध परंपरा मौजूद है। इसके अलावा भारत के संदर्भ में मेले परंपरागत संचार के प्रमुख माध्यम रहे। मेलों का आयोजन अकसर बड़े मंदिरों के निकट किसी धार्मिक मौके पर आयोजित किये जाते हैं। मेले एक साथ धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक और आर्थिक गतिविधियों भरे होते हैं। मेले समाज के लिये मेलजोल के साथ -साथ मनोरंजन का माध्यम भी होते हैं। मेलों की परंपरा आज भी भारत में विद्यमान है। कुंभ मेले की विशालता इसका सशक्त उदाहरण है। पहले के समय में राजा मेलों का उपयोग अपने प्रभाव को बढ़ाने और जनता के बीच में अपने संदेश को फैलाने के लिए करते थे।

परंपरागत संचार माध्यम की भारतीय अवधारणा

वास्तव में परंपरागत संचार से आशय ऐसे संचार से है जो आधुनिक जनसंचार माध्यमों की बजाए परंपरागत माध्यमों से किया जाता हो। परंपरागत संचार सदियों से चला आ रहा है। समाज के सभी वर्ग परंपराओं में रचे बसे अनेक ऐसे माध्यमों के जरिये संचार करते हैं, जिनमें देसज और स्थानीय प्रतीकों-संकेतों को उपयोग में लाया जाता है। उदाहरण स्वरूप सभी प्रकार की लोक कथा, लोक नृत्य, लोक गीत, लोक नाटय विधाएं, कठपुतली कला और चित्रकलाएं इस श्रेणी में आती हैं। संचार की दृष्टि से परंपरागत संचार में अंतर व्यैक्तिक और समूह दोनों स्तरों पर संचार शामिल हैं

भारत की लोकविधाएं

भारत के ग्रामीण और उपनगरीय समाज में सदियों से लोक रंगमंच विभिन्न संस्कृतियों में अलग-अलग रूपों में मनोरंजन का साधन रहा है। भारत में लोक रंग मंच के अनेक स्वरूप मिलते हैं। यहां तक कि भारत के संदर्भ में यदि लोक रंगमंच की सभी विधाओं को ध्यान से देखा जाए तो अनेक तत्व भी इन विधाओं में मिलते-जुलते नजर आते हैं। लोक नाटकों में कहानी ज्यादातर पुराने मिथकों एवं किंवदंतियों से ली जाती थी। कलाकार कहानी कहने के लिए संवाद, संगीत तथा नृत्य तीनों कलाओं का इस्तेमाल करते थे। भारतीय संदर्भ में शास्त्रीय कलाओं और लोक कलाओं के बीच लगातार आदान-प्रदान होता रहा है। लोक रंगमंच में भी शास्त्रीय रंगमंच की तरह विदूषक या सूत्रधार का प्रयोग होता रहा है। सूत्रधार एक ऐसा पात्र है जो बीते हुए कल को वर्तमान के साथ जोड़ता है। सूत्रधार दर्शक और अभिनेता के बीच कड़ी का काम करता है। सूत्रधार विविध लोकमंच शैलियों में विविध नामों से जाना जाता है। यहाँ तक कि महाकवि कालिदास के नाटकों में भी सूत्रधार की महत्ता दिखती है।

भारत लोक कला और संगीत के लिहाज से एक समृद्ध देश है पर नए माध्यम रेडियो, टीवी और फिल्मों के आ जाने से लोगों का इनकी ओर रुझान कम हुआ है। मौजूदा समय में समस्या यह है कि इन लोककलाओं और गीतों को संरक्षित कैसे किया जाए। किसी काम के लिए केवल सरकारी मदद कोई सार्थक विकल्प नहीं हो सकता। फिल्मों में लोक गीतों का इस्तेमाल अक्सर होता आया है और इसकी एक लंबी फेहरिस्त है। 1931-33 से ही कई अनजान गीतकार लोक गीतों पर आधारित गाने फिल्मों के लिए लिख रहे थे जैसे ''सांची कहो मोसे बतियां, कहां रहे सारी रतियां'' (फरेबीजाल-1931) ''हे गंगा मैया तिहे पियरी चढाइबो'' जैसे गीत सिल्वर स्क्रीन पर आये। इसी परंपरा के अन्य कुछ लोकप्रिय गीतों में- ''पान खाय

सैयां हमारो'', (तीसरी कसम), ''मेरे अंगने में तुम्हारा क्या काम है'' (लावारिस), ''रंग बरसे भीगे चुनरवाली'' (सिलसिला) जैसे लोक परंपरा के गीत सामने आये। ''अँखियो से गोली मारे'', ''जल्दी जल्दी चलो रे कहरवा'', और भिखारी ठाकुर तथा शारदा सिन्हा के गाये पारंपरिक गीतों का प्रयोग हो ही रहा था कि बिलकुल नुक्कड़ छाप गीत सड़को से उठा कर फिल्मों में ठेले जाने लगे। लोकमानस में जिन गीतों को अश्लील कहा जाता था तथा सभ्य महफिल में उन्हें गाना बजाना निषिद्ध था उन्ही गीतों को फिल्मो ने आइटम सांग बनाकर परोस दिया और वे हर अवसर पर खुलेआम बजने लगे। इसी दौर में ''मुन्नी बदनाम'' का जादू अभी लोगों के सर से उतरा ही नहीं था कि ''शीला की जवानी'' ने लोगों को झूमा डाला अभी इस पर बहस चल ही रही थी कि शीला और मुन्नी में कौन ज्यादा प्रसिद्द हुआ है कि ''टिंकू जिया'' (यमला पागल दीवाना) ने लोगों के पैरों को थिरकाने पर मजबूर कर दिया पर इसी के साथ शुरू हो गयी नई बहस समाज के एक धड़े ने इसे सिरे से खारिज कर दिया और इस पर अश्लील होने का ठप्पा लगा दिया, ऐसा क्यों? फिल्मों में लोक संगीत इसके शुरुआती दौर से ही प्रयोग होते आ रहे हैं। उत्तर भारत में शादियों में गाये जाने वाली मंगल गीतों में गालियां गाई जाती हैं। इस बात का कोई भी बुरा नहीं मानता जबकि ये भी हमारी लोक संस्कृति का एक हिस्सा है, जिसमें गालियों को भी एक परंपरा के रूप में मान्यता दी गयी है। कालांतर में ऐसे कई लोक गीत, नौटंकियों, नाटक से होते हुए फिल्मों में पहुंचे। ''अरे जा रे हट नटखट न छेड़ मेरा घूंघट, पलट के दूंगी आज तोहे गारी रे, मुझे समझो न तुम भोली-भाली रे'', तो आखिर अश्लीलता का हवाला देकर इतने हो हल्ला क्यों मचाया जा रहा है। बालीवुड के पन्नों को पलटा जाए तो पुरानी यादों में हमें कई फिल्मों और गानों का पता चलेगा जिसको लेकर समाज के शुचितावादियों ने सवाल खड़े किये थे। फिल्मी दुनिया में अभिनेता राजकपूर एक बड़े नाम हैं जिन्होंने नारी देह और लोक गीतों का खूबसूरती से प्रयोग किया। इन पुरानी फिल्मों में सोहर, कव्वाली और गजल जैसी न जाने कितनी विधाओं के दर्शन हो जाएंगे। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इस बहु-सांस्कृतिक देश भारत में जहाँ भी जाएं फिल्मी गीतों ने नई संवेदना पैदा करने और विभिन्न लोक संस्कृतियों से अवगत कराने का बड़ा काम किया है।

इस बारे में अभिनय से जुड़े लोगों का अपना अलग तर्क होता है। वह यह है कि जब ऐसा हो रहा था तब समाज बाजारू नहीं था। फिल्मों में लोगों के साथ संवेदनाएं जुड़ी थी। कहानी की मांग के अनुसार ऐसे गाने प्रयोग किये जाते थे। अब तो लोकसंगीत के नामपर बजने वाले आइटम गीत तो दाल में छौंक की तरह परोसे जाते हैं। कहानी की मांग होती ही नहीं। बस दर्शकों में उत्तेजना भरने के लिए तो इन पर बवाल होना स्वभाविक भी है। वक्त के साथ गाने और समाज भी बदलाव आया है। हां लोक गीत और संगीत के नाम पर आज जो गीत इस्तेमाल हो रहे हैं उनमें गति ज्यादा है और एक नए तरह के फ्यूजन के लक्षण भी दिखते हैं। मैं हूँ न फिल्म में कव्वाली एक नए रूप में लौटी। वहीं, ''कजरारे कजरारे'' और नमक इश्क का जैसे गीत एक सोंधी खुशबू लिए दिखते हैं जिसका लुत्फ शहर में पली वो पीढ़ी उठा सकती है जिसने गांव सिर्फ फिल्मों में देखा है। वहीं गांव के लोग अपने गीतों को आधुनिक बनते हुए देख रहे हैं। हिन्दी सिनेमा में ऐसे हजारों गीत हैं जिसे लोकभाषा में जड़कर धुनों में पिरोया गया। याद करें- ''इन्हीं लोगों ने ले लीन्हा दुपट्टा मोरा'' (पाकीजा), ''चलत मुसाफिर मोह लिया रे पिंजरे वाली मुनिया'' (तीसरी कसम) या फिर ''चप्पा-चप्पा चरखा चले'' (माचिस) राजस्थान का ''मोरनी बागां में'' हो या पंजाब हिमाचल का ''गिद्दा बारी बरसी खडन गया सी'' जैसे लोक संगीत से आम भारतीय को परिचय कराने का श्रेय फिल्मों को ही जाता है।

यहाँ ध्यान देने वाली बात यह है कि एक तरफ हम अपनी लोक कलाओं, संगीत के खत्म होने के गम में दुखी हो जाते हैं या फिर सरकारी मदद की आस में रहते हैं। समय बदल रहा है। लोक कलाएं तभी जिन्दा रह सकती हैं जब उनमें प्रयोग होते रहें और उनकी पहुँच के दायरे में निरंतरता बनी रहे और इसका एक रास्ता नवीन जन-माध्यमों से होकर जाता है। फिर हर माध्यम की अपनी सीमाएं और विशिष्टता होती है। ये बात फिल्म माध्यम पर भी लागू होती है यहां दर्शकों का दोहरा चरित्र भी उजागर होता है। जहाँ उसे लोक संगीत के नष्ट होने की चिंता तो है पर अगर उनमें प्रयोग हों तो उसे बर्दाश्त नहीं है। पहले मनोरंजन का एक मात्र साधन लोक कलायें, संगीत थे पर अब उनमें हिस्सेदारी बटाने के लिए और भी माध्यम आ गए हैं जो ज्यादा प्रयोगधर्मी हैं। ऐसे में लोकसंगीत और कला पर सिर्फ आंसू बहा कर उन्हें बचाया नहीं जा सकता है। वैश्वीकरण के इस दौर में जहां दर्शक और उपभोक्ता के बीच की खाई समाप्त हो रही है ऐसे में परम्परागत लोक माध्यमों को नवीन जन माध्यमों का सहारा मिल जाए तो तस्वीर बदलते देर नहीं लगेगी।

मानव संचार, अवधारणा और विकास

मानव जीवन में जीवान्तता के लिए संचार का होना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य है। पृथ्वी पर संचार का उद्‌भव मानव सभ्यता के साथ माना जाता है। प्रारंभिक युग का मानव अपनी भाव-भंगिमाओं, व्यहारजन्य संकेतों और प्रतीक चिन्हों के माध्यम से संचार करता था, किन्तु आधुनिक युग में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में क्रांतिकारी अनुसंधान के कारण मानव संचार बुलन्दी पर पहुँच गया है। वर्तमान में रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, टेलीफोन, मोबाइल, फैक्स, इंटरनेट, ई-मेल, वेब पोर्टल्स, टेलीप्रिन्टर, टेलेक्स, इंटरकॉम, टेलीटैक्स, टेली-कान्फ्रेसिंग, केबल, सोशल नेटवर्किंग साइट्स, समाचार पत्र, पत्रिका इत्यादि मानव संचार के अत्याधुनिक और बहुचर्चित माध्यम है।

संचार

संचार शब्द वस्तुतः संचरण क्रिया से उपजा है जो किसी सूचना, बात विचार को प्रवाहित करने की प्रक्रियात्मक शैली को परिभाषित करता है। संचरण की इस प्रक्रिया को दुनिया की अलग अलग भाषाओं में अलग अलग ढंग से अंगीकार किया गया है। संचार शब्द का सामान्य अर्थ होता है- किसी सूचना या संदेश को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक पहुँचाना या सम्प्रेषित करना। संचार एक ऐसा प्रयास है जिसके माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के विचारों, भावनाओं एवं मनोवृत्तियों में सहभागी बनता है। संचार का आधार संवाद और सम्प्रेषण है। विभिन्न विधाओं के विशेषज्ञों ने संचार को परिभाषित करने का प्रयास किया है, लेकिन किसी एक परिभाषा पर सर्वसम्मति नहीं बन सकी है। फिर भी, कुछ प्रचलित परिभाषाएं इस प्रकार हैं :

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, ''विचारों, जानकारियों वगैरह का विनिमय, किसी और तक पहुँचाना या बाँटना, चाहे वह लिखित, मौखिक या सांकेतिक हो, संचार है।''

लुईस ए. एलेन के अनुसार, ''संचार उन सभी क्रियाओं का योग है जिनके द्वारा एक व्यक्ति दूसरे के साथ समझदारी स्थापित करना चाहता है। संचार अर्थों का एक पुल है। इसमें कहने, सुनने और समझने की एक व्यवस्थित तथा नियमित प्रक्रिया शामिल है।''

रेडफील्ड के अनुसार, ''संचार से आशय उस व्यापक क्षेत्र से है जिसके माध्यम से मनुष्य तथ्यों एवं अभिमतों का आदान -प्रदान करता है। टेलीफोन, तार, रेडियो अथवा इस प्रकार के अन्य तकनीकी साधन संचार नहीं है।''

शैनन एवं वीवर के अनुसार, ''व्यापक अर्थ में संचार के अंतर्गत् वे सभी प्रक्रियाएं शामिल हैं, जिसके द्वारा एक व्यक्ति दिमागी तौर पर दूसरे व्यक्ति को प्रभावित करता है। इसमें न वाचिक एवं लिखित भाषा का प्रयोग होता है, बल्कि मानव व्यवहार के अन्य माध्यम जैसे-संगीत, चित्रकला, नाटक इत्यादि शामिल है।''

क्रच एवं साथियों के अनुसार, ''किसी वस्तु के विषय में समान या सहभागी ज्ञान की प्राप्ति के लिए प्रतीकों का उपयोग ही संचार है। यद्यपि मनुष्यों में संचार का महत्वपूर्ण माध्यम भाषा ही है, फिर भी अन्य प्रतीकों का प्रयोग हो सकता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति अथवा समूह को कुछ सार्थक चिहों, संकेतों या प्रतीकों के माध्यम से ज्ञान, सूचना, जानकारी व मनोभावों का आदान-प्रदान करना ही संचार है।

संचार के प्रकार समाज में मानव कहीं वक्ता के रूप में संदेश सम्प्रेषित करता है, तो कहीं श्रोता के रूप में संदेश ग्रहण करता है। इस प्रक्रिया में शामिल लोगों की संख्या के आधार पर मुख्यतः चार प्रकार के होते हैं :

1. *अंतः वैयक्तिक संचार;* यह एक मनोवैज्ञानिक क्रिया तथा मानव का व्यक्तिगत चिंतन-मनन है। इसमें संचारक और प्रापक दोनों की भूमिका एक ही व्यक्ति को निभानी पड़ती है। अंतः वैयक्तिक संचार मानव की भावना, स्मरण, चिंतन या उलझन के रूप में हो सकती है। कुछ विद्वान स्वप्न को भी अंतः वैयक्तिक संचार मानते हैं। इसके अंतर्गत मानव अपनी केंद्रीय स्नायु-तंत्र तथा बाह्य स्नायु-तंत्र का प्रयोग करता है। केंद्रीय स्नायु-तंत्र में मस्तिष्क आता है, जबकि बाह्य स्नायु-तंत्र में शरीर के अन्य अंग। इस पर मनोविज्ञान और चिकित्सा विज्ञान में पर्याप्त अध्ययन हुए हैं। जिस व्यक्ति का अंतः वैयक्तिक संचार केंद्रित नहीं होता है, उसे मानव समाज में पागल कहा जाता है। मानव के मस्तिष्क का उसके अन्य अंगों से सीधा सम्बन्ध होता है। मस्तिष्क अन्य अंगों से न केवल संदेश ग्रहण करता है, बल्कि संदेश सम्प्रेषित भी करता है। जैसे- पैर में मच्छर के काटने का संदेश मस्तिष्क ग्रहण करता है तथा मच्छर को मारने या भगाने का संदेश हाथ को सम्प्रेषित करता है। अंतः वैयक्तिक संचार को स्वगत संचार के नाम से भी जाना जाता है।

2. *अंतर वैयक्तिक संचार;* अंतर वैयक्तिक संचार से तात्पर्य दो व्यक्तियों के बीच विचारों, भावनाओं और जानकारियों के आदान-प्रदान से है। यह आमने-सामने होता है। इसके लिए दोनों मानवों के बीच सीधा सम्पर्क का होना बेहद जरूरी है, इसलिए अंतर वैयक्तिक संचार की दो-तरफा संचार प्रक्रिया कहते हैं। यह कहीं भी स्वर, संकेत, शब्द, ध्वनि, संगीत, चित्र, नाटक आदि के रूप में हो सकता है। इसमें फीडबैक तुरंत और सबसे बेहतर मिलता है, क्योंकि संचारक जैसे ही किसी विषय पर अपनी बात कहना शुरू करता है, वैसे ही प्रापक से फीडबैक मिलने लगता है। अंतर वैयक्तिक संचार का उदाहरण है-मासूम बच्चा, जो बाल्यावस्था से जैसे-जैसे बाहर निकलता है, वैसे-वैसे समाज के सम्पर्क में आता है और अंतर वैयक्तिक संचार को अपनाने लगता है। माता-पिता के बुलाने पर उसका हंसना अंतर वैयक्तिक संचार का प्रारंभिक उदाहरण है। इसके बाद वह ज्यों-ज्यों किशोरावस्था की ओर बढ़ता है, त्यों-त्यों भाषा, परम्परा, अभिवादन आदि अंतरवैयक्तिक संचार प्रक्रिया से सीखने लगता है। पास-पड़ोस के लोगों से जुडने में भी अंतर वैयक्तिक संचार की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।

3. *समूह संचार;* यह अंतर वैयक्तिक संचार का विस्तार है, जिसमें मानव सम्बन्धों की जटिलता होती है। मानव अपने जीवन काल में किसी-न-किसी समूह का सदस्य अवश्य होता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नये समूहों का निर्माण भी करता है। समूहों से पृथक होकर मानव अलग-थलग पड़ जाता है। समूह में जहां मानव के व्यक्तित्व का विकास होता है, वहीं सामाजिक प्रतिष्ठा भी बनती है। समाजशास्त्री चार्ल्स एच. कूले के अनुसार- समाज में दो प्रकार के समूह होते हैं। पहला- प्राथमिक समूह 6 जिसके सदस्यों के बीच आत्मीयता, निकटता एवं टिकाऊ सम्बन्ध होते हैं। जैसे- परिवार, मित्र मंडली व सामाजिक संस्था इत्यादि 8 और दूसरा- द्वितीयक समूह 6 जिसका निर्माण संयोग या परिस्थितिवश अथवा स्थान विशेष के कारण कुछ समय के लिए होता है। जैसे- ट्रेन व बस के यात्री, क्रिकेट मैच के दर्शक, जो आपस में किसी विषय पर विचार-विमर्श करते हैं। सामाजिक कार्य व्यवहार के अनुसार समूह को हित समूह और दबाव समूह में बांटा गया है। जब कोई समूह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कार्य करता है, तो उसे हित समूह कहते हैं, लेकिन जब वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दूसरे समूहों या प्रशासन पर दबाव डालते लगता है, तो स्वतरू ही दबाव समूह में परिवर्तित हो जाता है। मानव समूह बनाकर विचार-विमर्श, संगोष्ठी, भाषण, सभा के माध्यम से विचारों, जानकारियों व अनुभवाओं का आदान-प्रदान करता है, तो उस प्रक्रिया को समूह संचार कहते हैं। इसमें फीडबैक तुरंत मिलता है, लेकिन अंतर-वैयक्तिक संचार की तरह नहीं। फिर भी, यह प्रभावी संचार है, क्योंकि इसमें व्यक्तित्व खुलकर सामने आता है तथा समूह के सदस्यों को अपनी बात कहने का पर्याप्त अवसर मिलता है। समूह संचार कई सामाजिक परिवेशों में पाया जाता है। जैसे- कक्षा, रंगमंच, कमेटी हॉल, बैठक इत्यादि।

4. *जनसंचार;* आधुनिक युग में जनसंचार काफी प्रचलित शब्द है। इसका निर्माण दो शब्दों 'जन और संचार' के योग से हुआ है। जन का अर्थ 'जनता अर्थात भीड़' होता है। ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी के अनुसार, जन का अर्थ पूर्ण रूप से व्यक्तिवादिता का अंत है। इस प्रकार, समूह संचार का वृहद रूप है- जनसंचार। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 19वीं सदी के तीसरे दशक के अंतिम दौर में संदेश सम्प्रेषण के लिए किया गया था। संचार क्रांति के क्षेत्र में अनुसंधान के कारण जैसे-जैसे समाचार पत्र, रेडियो, टेलीविजन, केबल, इंटरनेट, वेब पोर्टल्स इत्यादि का प्रयोग बढ़ता गया, वैसे-वैसे जनसंचार के क्षेत्र का विस्तार होता गया। इसमें फीडबैक देर से तथा बेहद कमजोर मिला है। कई बार नहीं भी मिलता है। आमतौर पर जनसंचार और जनमाध्यम को एक ही समझा जाता है, किन्तु दोनों अलग-अलग हैं। जनसंचार एक प्रक्रिया है, जबकि जनमाध्यम इसका साधन। जनसंचार माध्यमों के विकास के शुरुआती दौर में जनमाध्यम मानव को सूचना अवश्य देते थे, परंतु उसमें मानव की सहभागिता नहीं होती थी। इस समस्या को संचार विशेषज्ञ जल्दी समझ गये और समाधान के लिए लगातार प्रयासरत रहे। इंटरनेट के आविष्कार के बाद लोगों की सूचना के प्रति भागीदारी बढ़ी है। मनचाहा सूचना प्राप्त करना और दूसरों तक तीव्र गति से सम्प्रेषित करना संभव हो सका। संचार विशेषज्ञों ने जनसंचार को कई तरह से परिभाषित किया है :

लेक्सीकॉन यूनिवर्सल इन-साइक्लोपीडिया के अनुसार, ''कोई भी संचार, जो लोगों के महत्वपूर्ण रूप से व्यापक समूह तक पहुंचता हो, जनसंचार है।''

कार्नर के अनुसार, ''जनसंचार संदेशों के बड़े पैमाने पर उत्पादन तथा वृहद स्तर पर विषमवर्गीय जनसमूहों में द्रुतगामी वितरण करने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में जिन उपकरणों अथवा तकनीक का उपयोग किया जाता है उन्हें जनसंचार माध्यम कहते हैं।''

कुप्पूस्वामी के अनुसार, ''जनसंचार तकनीकी आधार पर विशाल अथवा व्यापक रूप से लोगों तक सूचना के संग्रह एवं प्रेषण पर आधारित प्रक्रिया है। आधुनिक समाज में जनसंचार का कार्य सूचना प्रेषण, विश्लेषण, ज्ञान एवं मूल्यों का प्रसार तथा मनोरंजन करना है।''

जोसेफ डिविटो के अनुसार, ''जनसंचार बहुत से व्यक्तियों में एक मशीन के माध्यम से सूचनाओं, विचारों और दृष्टिकोणों को रूपांतरित करने की प्रक्रिया है।''

जॉर्ज ए. मिलर के अनुसार, ''जनसंचार का अर्थ सूचना को एक स्थान से दूसरे स्थान पहुंचाना है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि जनसंचार यंत्र संचालित है, जिसमें संदेश को तीव्र गति से भेजने की क्षमता होती है। जनसंचार माध्यमों में टेलीविजन, रेडियो, समाचार-पत्र, पत्रिका, फिल्म, वीडियो, सीडी, इंटरनेट, वेब पोर्टल्स इत्यादि आते हैं, जो संदेश को प्रसारित एवं प्रकाशित करते हैं।

मानव संचार का विकास

विशेषज्ञों का मानना है कि जीवन में संचार उतना ही पुराना है, जितना की मानव सभ्यता। आदम युग में मानव के पास आवाज थी, लेकिन शब्द नहीं थे। तब वह अपने हाव-भाव और शारीरिक संकेतों के माध्यम से संचार करता था। तात्कालिक मानव को भी आज के मानव की तरह भूख लगती थी, लेकिन उसके पास भोजन के लिए आज की तरह अनाज नहीं थे। वह वृक्षों के फलों और जानवरों के कच्चे मांसों पर पूर्णतया निरभर था, जिसकी उपलब्धता के बारे में जानने के लिए आपस में शारीरिक संकेतों के माध्यम से संचार (वार्तालाप) करता था। पाषाण युग का मानव कच्चे मांस की उपलब्धता वाले इलाकों में पत्थरों पर जानवरों का प्रतीकात्मक चित्र बनाने लगा। कालांतर में मानव ने प्रतीक चित्रों के साथ अपनी आवाज को जोडना प्रारंभ किया, परिणाम स्वरूप अक्षर का आविष्कार हुआ। अक्षरों के समूह को शब्द और शब्दों के समूह को वाक्य कहा गया, जो वर्तमाान युग में भी संचार के साधन के रूप में प्रचलित है। इस तरह के संचार का सटीक उदाहरण है- नवजात शिशु, जो शब्दों से अनभिज्ञ होने के कारण हंसकर, रोकर, चीखकर तथा हाथ-पैर चलाकर अपनी भावनाओं को सम्प्रेषित करता है। इसके बाद जैसे-जैसे बड़ा होता है, वैसे-वैसे शब्दों को सीखने लगता है। इसके बाद तोतली बोली, टूटी-फूटी भाषा और फिर स्पष्ट शब्दों में वार्तालाप करने लगता है।

प्राचीन काल में मानव के पास शब्द तो थे, लेकिन वह पढ़ना-लिखना नहीं जानता था। ऐसी स्थिति में अपने गुरुओं और पूर्वजों के मुख से निकले संदेशों को किंवदन्तियों के सहारे आने वाली पीढ़ी तक सम्प्रेषित करने का कार्य होता था। कालांतर में भोजपत्रों पर संदेश लिखने और दूसरों तक पहुंचाने की प्रथा प्रारंभ हुई, जो भारत में काफी कारगर साबित हुई। इसी की बदौलत वेद-पुराण व आदि ग्रंथ लोगों तक पहुंचे। गुप्तकाल में शिलालेखों का निर्माण कराया गया, जिन पर धार्मिक व राजनीतिक सूचनाएं होती थी। ऐसे अनेक स्मारक आज भी मौजूद हैं।

जर्मनी के जॉन गुटेनवर्ग ने सन् 1445 में टाइपों का आविष्कार किया, जिससे संचार के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन आया। टाइपों की मदद से विचारों या सूचनाओं को मुद्रित कर अधिक से अधिक लोगों तक प्रसारित करने की सुविधा मिली। सन् 1550 में भारत का पहला प्रेस गोवा में पुर्तगालियों ने इसाई धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए लगाया। जेम्स आगस्टक हिकी ने सन् 1780 में भारत का पहला समाचार-पत्र बंगाल गजट प्रकाशित किया। 19वीं शताब्दी में टेलीफोन और टेलीग्राम के आविष्कार ने संचार की नई संभावनाओं को जन्म दिया। इसी दौर में रेडियो और टेलीविजन के रूप में मानव को संचार का जबरदस्त साधन मिला। बीसवीं शताब्दी में इलेक्ट्रानिक मीडिया का अत्यधिक विकास हुआ। 21वीं शताब्दी में इंटरनेट ने मानव संचार को सहज, सरल और व्यापक बना दिया।

मानव समाज में संचार के विकास का प्राचीन काल में जो सिलसिला प्रारंभ हुआ, वह वर्तमान में भी चल रहा है और भविष्य में भी चलता रहेगा। इसका अगला पड़ाव क्या होगा, अभी कुछ बता पाना थोड़ा मुश्किल है। प्राचीन काल में संचार के कुछ ऐसे तरीकों का सूत्रपात किया गया था, जिसकी प्रासंगिक वर्तमान में भी बरकरार है तथा आगे भी रहेंगी। वह है- यातायात संकेत, जिसे सड़क के किनारे देखा जा सकता है, जिन पर दाएं-बाएं मुड़ने, धीरे चलने, स्प्रीड ब्रेकर या तीव्र मोड़ होने या रुकने के संकेत होते हैं। इन संकेतों को चलती गाड़ी से देखकर समझना बेहद आसान है, जबकि पढ़कर समझना बेहद मुश्किल है। इन संकेतों के माध्यम से संदेशों का सम्प्रेषण आज भी वैसे ही होता है, जैसे शुरुआती दिनों होता था। मानव जीवन में जीवान्तता के लिए संचार का होना आवश्यक ही नहीं, बल्कि अनिवार्य भी है। पृथ्वी पर संचार का उद्‌भव मानव सभ्यता के साथ माना जाता है। प्रारंभिक युग का मानव अपनी भाव-भंगिमाओं, व्यहारजन्य संकेतों और प्रतीक चिन्हों के माध्यम से संचार करता था, किन्तु आधुनिक युग में सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में हुए क्रांतिकारी अनुसंधान के कारण मानव संचार बुलन्दी पर पहुँच गया है। वर्तमान में रेडियो, टेलीविजन, सिनेमा, टेलीफोन, मोबाइल, फैक्स, इंटरनेट, ई-मेल, वेब पोर्टल्स, टेलीप्रिन्टर, टेलेक्स, इंटरकॉम, टेलीटैक्स, टेली-कान्फ्रेंसिंग, केबल, सोशल नेटवर्किंग साइट्स, समाचार पत्र, पत्रिका इत्यादि मानव संचार के अत्याधुनिक और बहुचर्चित माध्यम हैं। मानव संचार को जानने ने पूर्व मानव और संचार को अलग-अलग समझना अनिवार्य है।

दरअसल मानव सभ्यता के विकास की इस यात्रा में इतने पड़ाव और स्थल आ चुके है कि सभी के कुछ न कुछ अंश हर नई जनसंचार प्रणाली में आ ही जाते हैं। इन रूपों और अवयवों को समेटते हुए हर बार एक नई विधा का जन्म हो जाता है। कथा, कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास, गीत से आगे चलते हुए गायन, वादन, नृत्य, रंगमंच और अब फिल्मों और टीवी धारावाहिकों के युग में प्रिंट और इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों की व्यापकता को किसी खास खांचे में बांध कर न तो रखा जा सकता है और न ही समझ जा सकता है। मानव जीवन के विभिन्न पक्षों का सरल स्वाभाविक अभिव्यक्ति नजीतन सरल और संप्रेषणीय ढंग से लोक विधाओं में होता है उतना अन्य माध्यमों से संभव नहीं है। इतिहास, देश, काल और सामाजिकता को खुद में अंगीकार कर के हर लोक विधा खुद में कई बार माध्यम भी बन जाती है। इनमें जितनी प्राचीनता विद्यमान होती है उससे भी अधिक लोक की उपस्थिति उसे वर्त्तमान से साक्षात्कार के रूप में स्थापित कर देती है।

अपने देश की कुछ लोकविधाओं के बारे में यहां चर्चा करना समीचीन लगता है :

रामलीला; भारत के लोक जीवन में रामलीला बहुत ही सशक्त लोक माध्यम के रूप में स्थापित रहा है। गांव-गांव में होने वाली रामलीलाओं में आम जान की सहभागिता के कारण इसका सरोकार बहुत ही व्यापक रहा है लेकिन अब समय के बदलाव के कारण इसमें काफी संकुचन आ चुका है। रामलीला तो आज पूरी दुनिया में किसी न किसी तरीके से प्रस्तुत किया जाता है। भारतीय समुदाय की वैदेशिक यात्राओं ने इसी रूप में उनके साथ यहां की कई लोक परम्पराओं को स्थापित किया है।

जोगी गीत; केवल भारत ही नहीं वरन समूचे भारतीय उपमहाद्वीप में जोगियों की यह ऐसी परंपरा रही है जिसने प्रबल जनसंचार माध्यम की भूमिका निभायी और खूब लोकप्रिय रही। वस्तुतः संत गोरक्षनाथ की शिष्य परंपरा में यह शुरू हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप के लगभग हरेक गांव तक इन जोगियों ने अपनी विशिष्ट शैली के जरिये एक सारंगी के साथ गायन की परंपरा विक्सित की और जनसंदेश वाहक बन कर उभरे। आज से बीस तीस साल पहले तक यह परंपरा गावों में दिखती रही है लेकिन नयी सभ्यता और बाजार के माध्यमों के विकास के साथ अब यह लुप्तप्राय सी हो गयी है।

एकतारा गायन; भारत के गांवों में एकतारा लिए, मांग जनम भर के उद्घोष के साथ भिक्षाटन करते संत प्रकृति के लोग घूमा करते थे। इनके गीतों में बंगाल, महाराष्ट्र, गुजरात और अन्य कई प्रदेशों के संतों के सन्देश हुआ करते थे जिसे ये बड़ी आसानी से लोगों तक पंहुचा दिया करते थे।

खजरी; यह परंपरा खास तौर पर संत कबीर की वाणी को जान मानस तक पहुंचाने में लगी थी। उत्तर भारत के ग्रामीण लोगों के बीच यह बहुत लोकप्रिय थी।

सोरठी ब्रिजाभार; यह पूर्वी उत्तरप्रदेश और पश्चिमी बिहार की अद्भुद कर्णप्रिय लोक विधा रही है जिसमें नायिका सोरठा और नायक ब्रिजभार की गाथा गायी जाती थी।

बिहुला; लोकनायिका बिहुला और बालालखंदर की कथा को गीत और नाटक के रूप में लोक प्रस्तुतियों में परोसने की विधा है। यह विधा अभी भी गावों में थोड़ी बहुत बची है जिसे ग्रामीण नाटक मंडलियों के माध्यम से देखा जा सकता है।

पवारा; पारम्परिक रूप में यह विधा घरों में शिशु के जन्म के अवसर पर देखने को मिलती थी, लेकिन अब यह लुप्तप्राय ही है। इसमें क्षत्रिय राजा घुघुलिया और उसके मामा की कथा को गाने की परंपरा है।

जात्रा; जात्रा पूर्वी भारत यानी बंगाल का प्रसिद्ध नाटक है। हालांकि उड़ीसा और बिहार के कुछ हिस्सों में जात्रा का प्रचलन है। इस नाटक में पात्र काफी अधिक संख्या में होते हैं और सामान्यत ये द्वारपाल अथवा जमादार और उसकी पत्नी या कंजर जाति से संबंधित चरित्रों की भूमिका में होते हैं। ये पात्र नाटक में हास्य परिस्थितियों के निर्माण में सहायक एवं माहिर होते हैं। जात्रा के नाटक ज्यादातर व्यंगात्मक होते हैं। जात्रा का संगीत भी काफी लोकलुभावन, सजीव एवं मस्ती भरा होता है। जात्रा में प्राय बुराई पर अच्छाई की जीत की कहानियां मंचित की जाती हैं। मंदिर का प्रांगण इनका मंच होता है। जात्रा के लिए आयताकार रंगशाला होती है। स्टेज थोड़ा ऊंचा होता है, पात्रों के आने-जाने के लिए एक ढलवां रास्ता भी स्टेज पर बना होता है।

तमाशा; महाराष्ट्र की ये लोकप्रिय नाटय कला अपनी कथा वस्तु में धार्मिक नहीं है। लेकिन इसमें अनेक बार जीवन का दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। तमाशा पूरी तरह एक मनोरंजक शैली है। इसमें महिला पात्र अपने पति या प्रेमी के गुणगान में गीत गाती है। कलाकार अपनी बात गीत, वार्तालाप और नृत्य के मिलेजुले रूप में करते हैं। तमाशा के बीच-बीच में लावणी और पोवड़ भी प्रस्तुत की जाती है। लावणी दरअसल महाराष्ट्र की ग्रामीण महिलाओं का नृत्य है। तेज लय पर गीत और नृत्य लावणी की विशेषता है। तड़क-भड़क वाली पोशाकों में लावणी कलाकार मादक और मनमोहक लगती है।

नौटंकी; उत्तर भारत की लोक नाट्य कला नौटंकी को खुले स्टेज पर मंचित किया जाता है। पौराणिक कहानियों पर आधारित नौटंकी की कथाएं एक सूत्रधार प्रस्तुत करता है। ढोलक तेज लय में नौटंकी कलाकार गाते भी हैं और नाचते भी हैं। इसमें लैला मजनू, लोकप्रिय राजाओं और डकैतों की कहानियों को भी बीच-बीच में सुनाया जाता है।

कठपुतली; ये भी एक भिन्न प्रकार की लोक कला है। बेजान होते हुए भी सर्वाधिक लोकप्रिय विधा है। पहले इसका प्रयोग सिर्फ मनोरंजन के लिए होता था लेकिन आज शिक्षा के क्षेत्र में इसकी असीम संभावनाएं देखी जा रही हैं। कठपुतली का लोक नाटकों में इस्तेमाल काफी प्राचीन समय से हो रहा है। इनकी विषय-वस्तु मुख्यतरू रामायण और महाभारत से संबंधित ही रहती थी। भारत के साथ-साथ अनेक पड़ोसी एशियाई देशों में भी कठपुतली नाटकों का मंचन किया जाता है। आजादी आंदोलन में भी इनकी भूमिका रही है।

यक्षगान; उतरी कर्नाटक के यक्षगान को बयालाट भी कहा जाता है। इसका मतलब है खुले मैदान का नाटक (बयालू) इसके अलावा यक्षगान को दोद्दात के नाम से भी जाना जाता है, यह नाटक हमेशा खुले में प्रदर्शित होता है। यह भागवत की विषय-वस्तु पर आधारित होता है। इस नाटक में एक व्याख्याकार तथा एक मसखरा (विदूषक) होता है। व्याख्याकार को भगवता कहा जाता है जिसका मुख्य काम तुकबंदियों व गायन के जरिये कहानी कहना होता है।

भवई; ये नाटक उतरी गुजरात में खेला जाता है। यह विशुद्ध धार्मिक नाटक है जो अम्बा देवी माता के स्थान के आस-पास या उसके सम्मुख ही प्रस्तुत किया जाता है। इसमें तीन मुख्य पात्र होते हैं- नायक, रंगलो और रंगली। नायक नाटक का सूत्रधार है या उसे प्रबंधक भी कह सकते हैं। नायक एक गायक, कथा वर्णनकर्ता अथवा वाच्य की भूमिका एक साथ निभाता है। रंगलो (विदूषक) मसखरा की भूमिका में होता है तथा रंगली का काम होता है रंगलों का उसकी बातों में साथ देना तथा ये नजर रखना कि कहीं वो अपनी पटरी से उतर तो नहीं रहा है या भटक तो नहीं रहा है। रंगलो अपने व्यंगात्मक अंदाज में अनेक सामाजिक और राजनैतिक बुराइयों का खुलासा कर लोगों को जागरूक बनाता है। भवई में स्वतंत्रता पूर्वक एक साथ कई विधाओं-संवाद, एकल या सामूहिक नृत्य, गीत, माइम, जादुई तरीके, दोहा, चौपाई और गरबा का प्रयोग कर लिया जाता है। केतन मेहता की एक फिल्म भी है भवनी भवई, जिसमें इस लोक नाटक को सिनेमाई भाषा में ज्यों का त्यों रूपांतरित किया गया है।

नुक्कड़ नाटक; नुक्कड़ नाटकों का जन्म अधिक पुराना नहीं है। दरअसल, बीसवीं सदी में अनेक जनसंगठनों ने लोक कलाओं की मदद लेकर नुक्कड़ नाटकों को लोकप्रिय बनाया। इन संस्थाओं में इप्टा का नाम प्रमुख है। नुक्कड़ नाटक मूल रूप से संस्थागत नाटकों के खिलाफ एक विद्रोह कहा जा सकता है। इप्टा नाटक को संभ्रांत लोगों के मनोरंजन का साधन की बजाए आम लोगों की समस्याओं के खिलाफ लड़ाई लड़ने के औजार के रूप में देखता था। इप्टा ने नुक्कड़ नाटक के जरिये गावों में आम लोगों को विभिन्न मसलों पर जागरूक बनाया है।

लोक गीत; भारतीय समाज में जीवन के हर मौके के लिए गीत मौजूद है। जन्म, विवाह से लेकर मृत्यु के भी गीत गाए जाते हैं। ये लोक गीत न केवल खुशियां और गम मनाने का साधन हैं बल्कि इनके जरिये भारतीय समाज अपनी संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहित करता है। विवाह के अनेक गीतों में युवा लड़के-लड़कियों को वैवाहिक जीवन के लिए अनेक सीख दी जाती है।

लोक कथा और लोक गाथा; कथा कहने और प्रवचन देने की भारत में लंबी परंपरा है। जो आज भी बड़े-बड़े गुरुओं के रूप में जारी है। आल्हा-उदल के किस्से हों या फिर भागवत कथा आज भी खुशी के मौकों पर लोग अपने घरों में कथा वाचन के लिए ज्ञानियों को बुलाते हैं और कई दिनों तक बैठकर कथा सुनते हैं। ये वाचिक परंपरा है।

कीर्तन; गांधी जी ने कीर्तन जैसे परंपरागत माध्यम का अंग्रेजों के खिलाफ बखूबी इस्तेमाल किया था। भक्ति आंदोलन में अधिकांश संतों ने भी आम लोगों को कीर्तन में लगाया था। इसके जरिये न केवल सामाजिक संगत होती थी बल्कि गीतों और भजनों की मदद से अनेक धार्मिक -सामाजिक संदेश प्रचारित किये जाते थे। आजादी आंदोलन में भी कीर्तन का खूब प्रयोग किया गया है।

लोक कला; सभी प्रकार की लोक चित्रकला इस श्रेणी में आती हैं। ग्रामीण समाज में महिलाएं घरों को लीपपोत कर सजाती हैं। बिहार की मधुबनी पेंटिंग इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं। वहां महिलाएं घरों की दीवारों पर ये चित्रकारी करती हैं। हरियाणा में गोबर से सांझी का निर्माण भी लोक कला का एक उदाहरण है। राजस्थानी महिलाएं अपने घरों के बाहर विशेष प्रकार की सजावट करती हैं। इन सबके अलावा भी ग्रामीण जीवन में लकड़ी, कपड़े, लोहे और मिट्टी के सामान में जुलाहे, कुम्हार, खाती, सुनार आदि सभी लोग सदियों से ना केवल कलात्मकता को बचाये हुए हैं बल्कि वे कला असली सृजक और उपासक हैं।

पारम्परिक संचार की विशिष्टता

पारम्परिक संचार की सभी विधाएं सामाजिक परंपराओं में इस तरह से गुंथी हुई हैं कि उनका होना स्वयं में कोई विशेष आयोजन न होकर एक सहज सामाजिक प्रक्रिया सा होता है। इसी कारण उसकी स्थिति समाज में सहज, स्वाभाविक विश्वसनीय और स्वीकार्य होती है। परंपरागत संचार में प्रयोग होने वाली भाषा, जिसमें सभी प्रतीक और चिन्ह भी शामिल हैं, इतनी सरल और ग्राह्य होती है कि आम लोगों को उन्हें समझने में आसानी होती है। भाषा की ये सरलता परंपरागत माध्यमों को आधुनिक माध्यमों की तुलना में अधिक प्रभावशाली बनती है। परंपरागत संचार की कथा वस्तु भी परंपराओं के रूप में समाज में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली आ रही होती है। जिसमें कहानी, किस्से, चुटकले, गीत इत्यादि लोगों के जीवन से ही जन्म लेते हैं और उनसे जुड़े होते हैं। इसकी मनोरंजक कथा वस्तु लोगों को अधिक प्रिय लगती है। उदाहरण के तौर पर रामलीला

में रामायण की कहानी को मंचित किया जाता है, जिससे सभी परिचित हैं। परंपरागत संचार में प्रयोग होने वाली सभी विधाओं की प्रस्तुति के लिए तैयारी अधिक नहीं करनी पड़ती। क्योंकि शास्त्रीय कलाओं की तरह लोक कलाएं अधिक नियमबद्ध या गूढ़ नहीं होती। बहुत कम खर्च और तैयारी के साथ ही लोक कलाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है। तैयारी में इस्तेमाल किये जाने वाला साजो-सामान भी आसानी से उपलब्ध हो जाता है। परंपरागत संचार सस्ता और सुलभ है। परंपरागत संचार बहुत ही लचीला है। परंपरागत संचार माध्यमों का उपयोग कहीं भी-कभी भी, किसी भी परिस्थिति में किया जा सकता है। जैसे कठपुतली कला और लोक संगीत कभी भी कम तैयारी में ग्रामीण परिवेश में भी आसानी से आयोजित किया जा सकता है। भारत में आज भी बड़ी तादाद में लोग अनपढ़ और गरीब हैं। ये लोग गांवों में रहते है और परंपराओं में जीते हैं। परंपरागत संचार इस पृष्ठभूमि में काफी प्रासंगिक और लाभकारी हैं, लेकिन नई सदी में गांवों में भी बहुत कुछ बदल चुका है। अब गांव में बिजली पहुंचने से लोग टीवी जैसे माध्यम को मनोरंजन के साधन के रूप में अपना चुके हैं। गांव के समीप सिनेमाघर स्थापित हो चुके है। अब लोग रात को जाग-जाग कर न तो आल्हा सुनते है और न ही नाच देखने आते हैं।

परंपरागत संचार की सीमाएं

1. परंपरागत संचार की सबसे बड़ी कमजोरी इसका परंपराओं में जकड़ा होना है। परंपराएं नूतन परिवर्तनों को निरूत्साहित करती हैं। जिस कारण परंपरागत माध्यम बदलते समय के मुताबिक अपनी प्रासंगिकता बरकरार नहीं रख पाते।
2. परंपरागत संचार की विषय वस्तु सदियों पुरानी है। पीढ़ी दर पीढ़ी वही किस्से-कहानियां दोहराई जाती हैं। नवीनता के अभाव के कारण नौजवान पीढ़ी उससे मुख मोड़ लेती है।
3. परंपरागत संचार माध्यमों का स्वरूप अत्यधिक स्थानीय होने के कारण ये संचार सीमित समुदाय में तो प्रभावी रहता है। लेकिन व्यापक लोगों तक पहुंचने में परंपरागत संचार माध्यम नाकाफी साबित होते हैं।
4. परंपरागत संचार की अधिकांश विधाएं समाज के एक विशिष्ट समुदाय के लिए रोजी-रोटी का एक जरिया हैं। इन लोगों की जीविका इन कलाओं पर निर्भर होती है। एक समय राजाओं और आम लोगों की सहायता से ये अपना गुजर-बसर कर लेते थे। लेकिन आधुनिक युग में मनोरंजन की अपार सुविधाएं उपलब्ध होने के कारण इन कला समुदायों को रोजी जुगाड़ कर पाना मुश्किल हो गया है। परंपरागत संचार माध्यम बदलते आर्थिक परिवेश में अलग-थलग पड़ गये हैं। इसलिए अनेक परंपरागत संचार के माध्यम तो मृत प्राय हो चुके हैं।

आधुनिक मीडिया का परंपरागत संचार पर प्रभाव

आधुनिक युग में फिल्में और टीवी धारावाहिक लोकप्रिय संस्कृति की सबसे बड़ी संवाहक बन गयी है। सभी प्रकार की कलाओं का संगम होने के कारण फिल्में समाज पर न केवल चौतरफा असर डालती हैं बल्कि ये असर गहरा और दूरगामी भी होता है। इसके अलावा टेलीविजन, रेडियो और समाचार पत्र भी सांस्कृतिक बदलाव के सशक्त माध्यम बन गये हैं। आरंभिक दिनों में लोकप्रिय मीडिया विशेषकर फिल्मों ने लोक कलाओं से धुनें, गीत, नृत्य और कहानियां उधार लेकर काम चलाया। सत्तर के दशक तक फिल्म जगत में बड़ी तादाद में गांव-देहात से कलाकार काम की तलाश में गये और उन्हें विभिन्न रूपों में काम भी मिला। स्वाभाविक रूप से ये कलाकार अपने साथ वो कस्बाई और देहाती सांस्कृतिक परिवेश और परंपराएं भी लेकर गये जो उनके काम में झलकीं। भोजपुरी, अवधी, पंजाबी, पहाड़ी, बुंदेली, राजस्थानी संस्कृति लिये ये कलाकार फिल्मों में लंबे समय से काम कर रहे हैं। सत्तर के दशक तक ग्रामीण परंपरागत परिवेश की कहानियों पर फिल्में भी बनती थीं लेकिन अस्सी के दशक में ये सांस्कृतिक प्रवाह लगभग रुक सा गया है। अब फिल्में मेट्रो और विदेशी संस्कृति को अपना विषय अधिक बनाती हैं। उल्टा अब लोककलाएं फिल्म संस्कृति से प्रभावित और प्रेरित हो रही हैं। देशभर में लोक कलाकार फिल्मी धुनों पर लोकगीत गाने लगे हैं। इलेक्ट्रानिक साजों का प्रयोग होने लगा है। लोक कलाओं में नव-निर्माण की प्रक्रिया मृतप्राय हो गयी है। वे फिल्म संस्कृति की भौंडी और घटिया नकल भर बन कर रह गयी हैं।

फिल्मी धुनें ही नहीं कलाकार पोशाक, नृत्य और भाव भंगिमाएं भी फिल्मों से उठा रहे हैं। दरअसल फिल्मों ने इतना प्रभाशाली माहौल बना दिया है कि वो एक स्टीरियो टाइप फैशन के रूप में हमारे सामने स्थापित हो गया है। जिससे लोक कलाओं का मर्म कहीं खो गया है। टेलीविजन पर प्रसारित सभी प्रकार के गीत, संगीत और नृत्य प्रतियोगिताएं दरअसल फिल्मी

प्रतियोगिताएं बन गयी हैं। लोकगीतों और नृत्यों का जो रूप फिल्मों में दिखाया जाता है वही नयी पीढ़ी के लिए सांस्कृतिक सच बन गया है। दूसरी तरफ आधुनिक माध्यमों ने लोक कलाओं की रीढ़ की हड्डी यानी आर्थिक आधार को तोड़ दिया है। अब आम लोगों में टेलीविजन प्रमुख मनोरंजन का साधन बन चुका है। स्वाभाविक रूप से लोक कलाकारों की जीवंत प्रस्तुतियां देखने और उसके लिये धन राशि देने की जहमत कोई नहीं उठाना चाहता। नतीजन लोक कलाकार कला के सहारे अपनी रोजी-रोटी नहीं चला पा रहे। आर्थिक तंगहाली झेल रहे अधिकांश लोक कलाकारों की युवा पीढ़ी अब इन कलाओं को सीखने में विशेष रूचि नहीं दिखा ही हैं। इससे कुछ कलाएं तो खत्म होने के कगार पर हैं।

विकास में परंपरागत संचार का योगदान

देश के विकास का अर्थ है बहुसंख्यक आबादी का चहुंमुखी विकास। देश की अधिसंख्य आबादी आज भी ग्रामीण है। परंपराओं और रीति रिवाजों में रचा-बसा देहाती समाज आज भी अपनी अलग दुनिया में जीता है। आधुनिक मीडिया अपने शानदार विस्तार के बावजूद इस परिवेश को भेद नहीं पाया है। छिटपुट ऊपरी प्रभाव के अलावा ग्रामीण सामाजिक तानाबान और मानसिकता परंपरागत ढर्रे से ही चल रही है। ऐसे माहौल में परंपरागत माध्यमों का महत्व अधिक बढ़ जाता है। प्रसिद्ध संचार विज्ञानी डेनियल लर्नर ने लंबे अध्ययन के बाद बताया था कि परंपरागत समाज बंद समाज होते हैं। नये विचारों को अक्सर ये परंपरागत समाज आशंका की निगाह से देखते हैं। नये प्रयोगों की बजाए ये समाज परंपराओं पर अधिक भरोसा करते हैं। इन्हें आधुनिक बनाने के लिए जन माध्यमों का इस्तेमाल उपयोगी हो सकता है। यूनेस्कों के प्रयासों से आयोजित संचार विज्ञानियों के एक सम्मेलन में पहली बार विकास में परंपरागत संचार माध्यमों की उपयोगिता के बारे में गंभीरता से चिंतन किया गया।

आजादी के आंदोलन में सेनानियों ने लोकगीतों और नाटकों के माध्यम से लोगों को जागरूक बनाया था। आजादी के बाद विकास के जितने भी कार्यक्रम चलाये, सरकार ने विकास योजनाओं और अभियानों के प्रचार-प्रसार के लिये जन माध्यमों का सहारा लिया। विकास के संदेशों को फैलाने के लिए पंरपरागत संचार माध्यमों की भी मदद ली गयी। सरकार ने दृश्य-श्रव्य प्रचार निदेशालय और संगीत नाटक अकादमी का गठन किया। जिसने हरित क्रांति के संदेश को कठपुतली, लोकगीतों, और नाटकों के जरिये दूरदराज में फैलाया। छोटी बचत कने के संदेश को लेकर यूनियन बैंक ऑफ इंडिया ने कठ-पुतली शो आयोजित किये जिसका गांवों में काफी असर हुआ और किसानों ने बैंक में बचत करना आरंभ किया। देशभर में साक्षरता मिशन परंपरागत माध्यमों के बेहतर इस्तेमाल का एक शानदार उदाहरण है। पढने-लिखने और स्कूल जाने के संदेशों को घर-घर तक ले जाने के लिए आम लोगों की जुबान में नारे, गीत, किस्से, कहानियां, सांग, रागणी बनायी गयी। नुक्कड़ नाटकों और नौटंकियों के जरिये ग्रामीणें के दिलों तक बात पहुंचाने की कोशिश की गयी।

वर्तमान में परंपरागत संचार की प्रासंगिकता

आधुनिक युग में भी परंपरागत संचार माध्यमों की प्रासंगिकता बरकरार है। ये तब तक बनी रहेगी जब तक परंपरागत देहाती समाज बचा रहता है। दुनियाभर में पॉपुलर मीडिया लोक-माध्यमों को पूरी तरह खत्म कहीं भी नहीं कर पाये हैं। क्योंकि दोनों की उपयोगिता अलग-अलग है। लोकप्रिय माध्यम अपनी सामग्री में राष्ट्रीय हैं वहीं लोक माध्यम स्थानीयता लिये हुए हैं। जिस प्रकार भारतीय समाज में मल्टीप्लैक्स और हाट बाजार दोनों एक साथ मौजूद रहेंगे उसी प्रकार दोनों का अस्तित्व भविष्य में भी बना रहेगा। बल्कि रोचक बात तो ये है कि दोनों माध्यम एक दूसरे को कई मायने में मजबूत कर रहे हैं। संचार विज्ञानी अब इस बात पर आम राय बना चुके हैं कि भारतीय ग्रामीण परिवेश में प्रभावी संचार करना है तो आधुनिक जन संचार माध्यमों और लोक माध्यमों के एक रचनात्मक मेल को अपनाना होगा। जैसे लोग कथा सुनने में रस लेते हैं तो रेडियो जैसे माध्यम से कथा सुनाई जाए। जनसंचार माध्यम संदेश को व्यापक विस्तार देते हैं वहीं लोक माध्यम नये तरीके से संचार करने की दिशा प्रदान करते हैं। बदलती जरूरतों के हिसाब से लोक माध्यमों को नए विषय तलाशने होंगे। सदियों पुराने किस्से कहानियों के स्थान पर आज की बात करनी होगी। बेहतर होगा पुरानी कथा वस्तु को नए संदर्भों में पेश किया जाये। जनसंचार माध्यम की क्षमता किसी भी संदेश को हजारों गुणा फैला देने की है। आधुनिक जनसंचार माध्यमों और लोक माध्यमों में आदान-प्रदान

स्वाभाविक और आवश्यक है लेकिन खतरा इस बात का है कि ये लेनदेन एकतरफा न बने। इस गैर-बराबरी के मेल में लोक कला कुचली जायेगी।

आधुनिक युग में परंपरागत माध्यमों के उपयोग पर एक नजर डालें तो हम पाते हैं कि नई तकनीक से मिलकर परंपरागत माध्यम और कलाएं निरंतर अपनी उपस्थिति महसूस करा रही हैं। लोक कथा और प्रवचनों के क्रम में आज भी मुरारी बापू, रमेशभाई ओजा, संत निरंकारी, डेरा सच्चा सौदा, कबीर पंथ के संत, रामानुज सम्प्रदाय के संतो, राधा स्वामी जैसे अनेक आध्यात्मिक गुरु लोक प्रतीकों का सहारा लेकर ठेठ परंपरागत अंदाज में पौराणिक कहानियां सुनाते हैं, जिन्हें आम लोग बड़ी तादाद में घंटों सुनते हैं। यही नहीं धार्मिक गुरु इन प्रवचनों के वीडियो टेप का प्रसारण टेलीविजन चौनलों पर करवाते हैं। भारतीय समाज में मेले आज भी अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए हैं बल्कि मेलों में लोगों की संख्या पहले से बढ़ी है। रामलीलाओं का आयोजन पहले से भव्य हुआ है। आधुनिक तकनीक की मदद से अब वो पहले से अधिक आकर्षक बन गयी है। अनेक कंपनियों ने लोक कलाकारों के गाये गीतों को ऑडियो टेप और सीडी के रूप में बाजार में उतार दिया है। आधुनिक फैशन में लोक प्रतीकों को अपना कर एक किस्म का एथनिक फ्यूजन बनाया जा रहा है।

इस बीच मीडिया के प्रतिस्पर्धात्मक बाजार में लोक संचार निरंतर सिकुड़ता जा रहा है। बाजार की शक्तियों के आगे लोक कलाकार कमजोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। ऐसा लगता है कि सदियों पुराने विषयों के सहारे लोक कलाएं अधिक दिनों तक अपनी प्रासंगिकता नहीं बना पायेगी। मौलिकता के अभाव और फिल्मों की घटिया नकल से आम लोगों का लोक कलाओं से मोहभंग होने लगा है। ऐसे में सरकारी मदद से लोक कलाओं को कुछ हद तक संरक्षित करने में मदद मिल सकती है। लेकिन बेहतर विकल्प ये होगा कि समाज के बदलते स्वाद और पसंद के मुताबिक लोक कलाओं को ढाला जाये और उन्हें आधुनिक युग के साथ कदम से कदम मिलाकर चलने में मदद की जाये। दरअसल सरकारी मदद की जब भी गुंजाइश बनती है तो उसमें ऐसी सेंधमारी होती है कि इसका वास्तविक लाभ उस समूह को नहीं मिल पाता जो इसका वास्तविक हकदार होता है। कजरी गाने वाला, आल्हा गाने वाला, बिरहा गाने वाला, फर्री नाचने वाला, नाच मंडली चलने वाला, पवारा गाने वाला या इस तरह की लोक विधाओ को जीने वाले किसी कलाकार को कभी भी वास्तविक मदद नहीं मिल पाती। सरकार से जारी होने वाली राशि हमेशा कुछ धंधेबाज संस्थाओ को मिलती है और मूल कलाकार वंचित ही रह जाता है।

हर हाल में संरक्षित करना ही होगा

सरकार को परंपरागत संचार माध्यमों के संरक्षण के लिए सक्रिय हस्तक्षेप करना चाहिए। इसके लिए ऐसे परिवारों की आर्थिक मदद की जानी चाहिए जो सदियों से परंपरागत कलाओं को सहेज कर जिन्दा रखे हुए हैं।

परंपरागत संचार को शैक्षणिक संस्थानों में पढ़ाया और सिखाया जाना चाहिए। इससे एक तरफ लोककलाकारों को काम मिलेगा और दूसरी तरफ युवा पीढ़ी को परंपरागत कलाओं को सीखने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकेगा।

सरकार को परंपरागत कलाओं को बचाने के लिए इनके विशेष आयोजन करने चाहिए और लोक कलाकारों को सुविधाएं मुहैया कर उनकी कलाओं को परिमार्जित करने में मदद करनी चाहिए। परंपरागत संचार और लोक माध्यमों के संरक्षण के लिए अधिकाधिक संग्रहालय बनाये जाने चाहिए। जहां न केवल दर्शकों के लिए लोक माध्यमों को देखने सुनने का मौका मिले, बल्कि लोक कलाकारों से भी मिलने का अवसर उपलब्ध हो सके। सरकार को लोक कलाओं का विधिवत दस्तावेजीकरण (डॉक्यूमेंटेशन) करना चाहिए ताकि लुप्त होती कलाओं के कम-से-कम अवशेष तो बचाये जा सके। लोक कलाकारों द्वारा बनाई गयी कला वस्तुओं को उचित बाजार मुहैया कराये जाने चाहिए। यहां इस विंदु पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाना चाहिए की जो व्यवस्था सरकारी स्तर पर बने उसमें वास्तविक कलाकारों को सीधा लाभ हो। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में बहुत सी लोक मंडली बची हुई है जिनको कभी- कभार कही अपने प्रदर्शन का अवसर मिल जाया करता है। पहले शादी-विवाह, मुंडन या अन्य घरेलू उत्सवों में इनको काम मिल जाता था पर अब इनका स्थान भी डीजे ने ले लिया है। ऐसे में लोक कलाकारों और परम्पराओं को संरक्षित करने के लिए बहुत ठोस प्रयास की जरूरत है। लोक कलाओं, विधाओं और परम्पराओं से अधिक सम्प्रेषण शक्ति किसी अन्य माध्यम में संभव नहीं है। इसलिए इनको तो हर दशा में संरक्षित करना ही होगा।

सन्दर्भ

भारत में लोकसंचार -शम्भूनाथ तिवारी
जनसंचार और लोककलाये -रमेश चंद्र शुक्ल
लोकमाध्यम -आदर्श
लोकगीत और हमारी परम्पराये -डॉ0 रंजन तिवारी
रचना उत्सव -अंक 12/ 2016
चौथी सत्ता
परंपरागत संचार : अस्तित्व के लिए संघर्षरत- डॉ0 देवव्रत सिंह
भारतीय लोक परंपरा - सृष्टिपर्व
hindinest-com
www-newswriters-in

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,128-132
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 जुलाई 2016

शैक्षणिक पुस्तकालय में पुस्तकालय स्वचालन एवं उपयोगिता

संजीव सराफ* एवं अरुण कुमार गुप्त**

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *शैक्षणिक पुस्तकालय में पुस्तकालय स्वचालन एवं उपयोगिता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखक *संजीव सराफ एवं अरुण कुमार गुप्त* घोषणा करते हैं कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेते हैं, क्योंकि हमने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देते हैं। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह हमारी मौलिक कृति है। हम शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देते हैं। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देते हैं।

आज के बदलते परिवेश में ग्रन्थालय स्वचालन आधुनिक ग्रन्थालयों की एक आधारभूत आवश्यकता है। जिसमें शैक्षिक ग्रन्थालयों की भूमिका अहम् मानी जाती है। यदि शैक्षिक ग्रन्थालयों पर ध्यान नही दिया गया तो ग्रन्थालयों की स्थिति दिन पर दिन बिगड़ती जायेगी। इसी बात को ध्यान में रखकर भारत सरकार सभी ग्रन्थालयों को कम्प्यूटरीकृत करने की योजना बना रही है। आज ग्रन्थालय किसी भी शैक्षिक संरचना का केन्द्र होता है। जहाँ विभिन्न विषयों का अध्यापन ज्ञान की झलक प्रदान करता है वहीं ग्रन्थालय ज्ञान के उस विस्तृत क्षेत्र का प्रसार करता है, जिसकी बौद्धिक उचाईयों को प्रदान करने की जरूरत होती है। ग्रन्थालय शिक्षण को निर्देशीय कार्य का पूरक होता है तथा शिक्षा के आदर्श को अग्रसारित करता है। गुणात्मक शिक्षा केवल ग्रन्थालयों के सहयोग से ही प्रदान की जा सकती है। ग्रन्थालयों के माध्यम से ही हम अनौपचारिक शिक्षा प्रदान करते हैं। यह अनौपचारिक शिक्षण संस्थानों से सम्बद्ध छात्रों को विशाल अध्ययन सामग्री का भंडार प्रदान करता है।

पुस्तकालय की विभिन्न दैनित्य क्रियाओं को कम्प्यूटर के माध्यम से स्वचालित रूप सम्पादित करने की व्यवस्था को पुस्तकालय स्वचालन कहते हैं। इसके अन्तर्गत पुस्तकालय के विभिन्न दैनित्य कार्यों जैसे पुस्तक अर्जन, पत्रिका नियंत्रण, सूचीकरण, परिसंचरण आदि को स्वचालित व्यवस्था के अंतरगत संगणको के माध्यम से सम्पादित किया जाता है, इस व्यवस्था में सभी संगणक नेटवर्किंग (LAN) के माध्यम से आपस में सम्बद्ध रहते है, इसी व्यवस्था को पुस्तकालय स्वचालन कहते हैं।

पुस्तकालय स्वचालन के द्वारा पुस्तकालय में कम से कम समय व श्रम का व्यय करते हुए अधिक से अधिक सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है जिससे डा0 एस0आर0 रंगनाथन के पंच सूत्रों में से चौथे सूत्र के अनुसार Save the time of reader का पूर्णतया पालन होता है। वर्तमान व्यवस्था में पुस्तकालय गुणवत्ता सेवा प्रदान करने के लिए इसका स्वचालीकरण करना परम आवश्यक है। इससे न केवल पुस्तकालयों के कार्यों को शीघ्र सम्पन्न किया जा सकता है बल्कि पाठकों को श्रेष्ठतम सुविधाएं उपलब्ध करायी जा सकेंगी।

* सहायक पुस्तकालयाध्यक्ष, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत
** शोध छात्र, पुस्तकालय और सूचना विज्ञान विभाग, भगवन्त विश्वविद्यालय अजमेर (राजस्थान) भारत। E-mail : arunkumarg402@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्वचालीकरण का तात्पर्य इसी प्रक्रिया में यंत्र के उपयोग से सम्बन्धित है। यंत्र के उपयोग से समय एवं श्रम की बचत होती है तथा गुणवत्ता भी प्राप्त की जा सकती है। पुस्तकालय स्वचालन का अर्थ पुस्तकालय एवं सूचना सेवाओं में कम्प्यूटर के अनुप्रयोग से है, जो कि सूचना प्रौद्योगिकी से प्रभावित होता है। पुस्तकालय स्वचालन पुस्तकालय के दैनिक कार्यों से आरम्भ होकर सूचना प्राप्ति, खोज तथा संसाधन सहभागिता व नेटवर्क से सम्बन्धित कार्यों के निष्पादन तक पहुँचाता है।

पुस्तकालय स्वचालन 1970 के दशक में पाश्चात्य देशों के कुछ महत्वपूर्ण विश्वविद्यालयों के समृद्ध पुस्तकालयों में प्रारम्भ किया गया। धन के अभाव के कारण भारत में इसका स्वरूप 80 व 90 के दशक में सामने आया। हमारे देश में पूर्व में पुस्तकालय स्वचालन के प्रमुख उदाहरण BAARC, DESIDOC आदि के विशिष्ट पुस्तकालयों में देखने को मिले। आज भारत के अधिकतर शैक्षणिक पुस्तकालय (मुख्यतः विश्वविद्यालय) स्वचालित है। स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के पुस्तकालयें को स्वचालन में बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है लेकिन आज बदलते युग में यह समस्या अब धीरे-धीरें समाप्ति की तरफ अग्रसर है।

शैक्षणिक पुस्तकालय स्वचालन के परिप्रेक्ष्य में अनेक विद्वानों ने पुस्तकालय स्वचालन की परिभाशाएं दी है जो इस प्रकार है :

बेली0पी0(2004) 1- विषयों को स्वतः ही स्वचालन करने व उसके वितरण को करने का काम किया। पुस्तकालय में क्रियाकलाप का स्वतः संचालन के लिए एक नक्शा पारित किया, प्रबन्ध तंत्र के कालेजों मे स्वतः संचालित करने के लिए एक नियम पारित किया जो पुस्तकालय कर्मचारियों को इसका प्रशिक्षण भी प्राप्त करने पर बल दिया। स्वचालन होने से कर्मचारियों पर कार्य का बल कम पड़ता है।

अकिनफ्लोरिन डब्ल्यू.ए. 2- ''पुस्तकालय के कार्यों का स्वचालन करने के लिए साफ्टवेयर का प्रयोग किया जाना चाहिए। इससे कार्य करने में आसानी होती है इससे कार्य शीघ्र हो जाता है।''

ओन्डारी ओकेमवान्ट 3- ''पुस्तकालय मे सूचनाओं का आदान-प्रदान इंटरनेट के माध्यम से होना चाहिए। पुस्तकालय में उपयोगकर्ताओं को स्वतन्त्र अधिकार होना चाहिए कि वह जब चाहे अपनी जरूरत के अनुसार सूचना के माध्यम से प्राप्त कर सके। ग्रन्थालय में स्वचालन पूर्ण रूप से करना चाहिए ताकि स्वचालन से उपयोगकर्ता को उसके उपयोग में किसी प्रकार के परेशानी का सामना न करना पड़े। ग्रन्थालय में हर जरूरत के सामग्री को स्वचालन के माध्यम से उपभोक्ता तक आसानी से जा सके।''

मटोरिया 4 - ''मटोरिया ने भारत के विभिन्न सार्वजनिक पुस्तकालयों के स्वचालन का राष्ट्रीय अध्ययन किया और नेशनल इन्फार्मेशन सेन्टर के पुस्तकालय साफ्टवेयर की विभिन्न सीमाओं एवं क्षमताओं का अध्ययन साफ्टवेयर के क्रियान्वयन एवं क्रिया विधियों के सन्दर्भ में क्रिया, एवं परिणाम के रूप में बताया कि पुस्तकालय के स्वचालन हेतु एक ऐसे कार्य कुशल स्वचालन साफ्टवेयर की आवश्यकता है जो सूचीकरण की सुविधा पूर्वक तरीके से क्रियान्वित कर सके।''

शोध प्रविधि

उक्त विषय पर अध्ययन हेतु वारणसी जनपद के समस्त स्नातकोत्तर महाविद्यालयों का सर्वेक्षण किया गया। उक्त सर्वेक्षण में आकड़ों के संकलन हेतु प्रश्नावली एवं साक्षात्कार को माध्यम बनाया गया है। प्रश्नावली का उपयोग समस्त विश्वविद्यालय पुस्तकालयों के उपयोगकर्ताओ से तथ्य संकलन हेतु एवं साक्षात्कार का माध्यम पुस्तकालयध्यक्षों एवं प्राचार्यो से सूचना संकलन हेतु किया गया।

पुस्तकालय के उपयोगकर्ताओं को तीन वर्गों मुख्यतः छात्र, शिक्षक एवं कर्मचारी में चिन्हित किया गया, जिसमें से क्रमशः 05 प्रतिशत, 15 प्रतिशत, एवं 80 प्रतिशत संख्या को Random sampling method के माध्यम से एक प्रतिदर्श तैयार किया गया। इस प्रतिदर्श से शोध हेतु प्रश्नावली अथवा साक्षात्कार नियमावली पर आधारित आकड़े संकलित किये गये। जिसे महा-विद्यालय में पुस्तकालयाध्यक्षों का पद रिक्त पाया गया। वहाँ शिक्षक प्रभारी का साक्षात्कार कर सूचना प्राप्त की गयी। प्राप्त आकड़ों का विश्लेषण विभिन्न सांख्यिकीय पद्धतियों के द्वारा किया गया ।

पुस्तकालय स्वचालन की आवश्यकता

पुस्तकालय में संग्रहित प्रलेख, संग्रह, पुनर्प्राप्ति तथा सम्प्रेषण के लिए व्यवस्थित किये जाते हैं तथा पाठकों तक इन्हें पहुँचाना ही पुस्तकालय का मुख्य उद्देश्य है। आधुनिक समय मे सूचना प्रौद्योगिकी के निरंतर बढ़ते उपयोग ने पुस्तकालयों को भी

बहुत प्रभावित किया है, वर्तमान समय में प्रलेख के संग्रह के थान पर उसमें संग्रहित सूचना उपयोगकर्ताओं के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो गयी है।

आधुनिक युग मे सूचना प्रौद्योगिकी मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर रही है। सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से सूचना प्राप्ति, सूचना प्रसंस्करण, सूचनाओं का संग्रहण, सूचनाओं का सम्प्रेषण एवं सूचनाओं की पुर्नप्राप्ति सम्भव है। सूचना प्रौद्योगिकी में विभिन्न आधुनिक तकनीकी में जैसे कम्प्यूटर एवं दूरसंचार सम्प्रेषण अदि के रूप में सम्मिलित है। कम्प्यूटर के माध्यम से जहाँ हम कम से कम समय में सूचनाओं का संग्रहण, विश्लेषण, प्रशंस्करण कर सकते हैं वही अत्याधुनिक दूरसंचार प्रणाली के माध्यम से संग्रहित सूचना, संसाधन, को एक दूसरे के पास आसानी से संचालित कर सकते है इन्हीं कारणों से आज के प्रगतिशील इलेक्ट्रानिक युग में सूचना एक सम्पूर्ण संसाधन एवं शक्ति के रूप में समाज के सामने आयी।

निम्नलिखित कारणों से पुस्तकालय स्वचालन की आवश्यकताओं को समझा जा सकता है; 1. पुस्तकालयों में प्रलेखों की संख्या मे निरंतर वृद्धि, 2. मुद्रित, अमुद्रित, रेखीय, श्रव्य, दृश्य व इलेक्ट्रानिक प्रलेखों का संग्रह, 3. पाठकों की विविध अवधारणाएं एवं पुस्तकालय की सीमाएं, 4. पुस्तकालयाध्यक्ष के समक्ष सूचना प्रौद्योगिकी से उत्पन्न चुनौतियां, 5. पुनरावर्तक दैनित्य कार्यों की अधिकता, 6. सूचनाओं का व्यवस्थापन एवं पुनर्प्राप्ति, 7. राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय व विशिष्ट डेटा बेसों में उपलब्ध सूचना की खोज, 8. नेटवर्क, संसाधन सहभागिता व इंटर नेट का प्रयोग, 9. सूचना सम्प्रेषण तकनीको का व्यापक प्रभाव, 10. परम्परागत पद्धतियों के क्रियान्वयान की सीमाएं, 11. पुस्तकालय बजट एवं कर्मचारियों की कमी।

पुस्तकालय स्वचालन के लिए आधारभूत आवश्यकतायें

वर्तमान अध्ययन में पुस्तकालय स्वचालन हेतु निम्नलिखित आवश्यकताओं के अंतर्गत क्षेत्र का विश्लेषण किया गया; • उपयुक्त संग्रह, • वित्तीय सहायता, • कम्प्यूटर हार्डवेयर, • पुस्तकालय स्वचालन साफ्टवेयर, • प्रशिक्षित कर्मचारी, • उपयोगकर्ता प्रशिक्षण, • अनुरक्षण एवं विकास।

वाराणसी जनपद के स्नातकोत्तर कालेजों की स्थिति

वाराणसी जपनद में 16 स्नातकोत्तर महाविद्यालय है जिसमें 11 स्नातकोत्तर महाविद्यालय; आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बसंता कालेज राजघाट, महिला महाविद्यालय बी0एच0यू0, बसंत कन्या महाविद्यालय कमच्छा, डी0ए0बी0 पीजी कालेज अवसानगंज, हरिश्चन्द्र पीजी कालेज, डा0 राममनोहर लोहिया स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहिया भैरव तालाब, महाराजा बलवंत सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय गंगापुर, जगतपुर पीजी कालेज जगतपुर, कालिका धाम स्नातकोत्तर महाविद्यालय सेवापुरी, बलदेव सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय बड़ागांव, शासन द्वारा वित्तपोषित है एवं 5 स्नातकोत्तर महाविद्यालयो में से 2 स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय बुलानाला एवं उदयप्रताप कालेजद भोजूबीर स्वायत्तशासी है। 3 स्नातकोत्तर कालेज सुधाकर महिला महाविद्यालय, धीरेन्द्र महिला महाविद्यालय सुन्दरपुर, एवं डा0 घनश्याम सिंह स्नातकोत्तर महाविद्यालय सोयेपुर स्वत्तिपोषित है। वाराणसी जनपद के 7 स्नातकोत्तर महाविद्यालयों; आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय चेतगंत, बसंता कालेज राजघाट, महिला महाविद्यालय बी0एच0यू0, सुधाकर स्नातकोत्तर महाविद्यालय खजुरी, अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय बुलानाला, बसंत कन्या महाविद्यालय कमच्छा, धीरेन्द्र महिला महाविद्यालय सुन्दरपुर में केवल महिलाओं को शिक्षा दी जाती है।

वाराणसी जनपद में 5 स्नातकोत्तर महाविद्यालय; आर्य महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय चेतगंज, बसंता कालेज राजघाट, महिला महाविद्यालय बी0एच0यू0, बसंत कन्या महाविद्यालय कमच्छा एवं डी0ए0बी0 पीजी0 कालेज अवसानगंज, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से संचालित होते है इनके अलावा बाकी सभी स्नातकोत्तर महाविद्यालय कालेज महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी से संचालित होते हैं।

अध्ययन हेतु स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में पुस्तकालय की स्थिति का पता लगाने के लिए किये गये सर्वेक्षण में जैसा कि पूर्व में कहा गया है, कुछ स्नातकोत्तर महाविद्यालय वित्तपोषित थे एवं कुछ स्नातकोत्तर महाविद्यालय स्व-वित्तपोषित थे। स्व-वित्तपोषित महाविद्यालयों की वित्तीय स्थिति वित्तपोषित महाविद्यालयों से दयनीय पायी गयी। वही स्वायत्तशासी कालेजों की स्थिति

बेहतर थी। वे सभी स्नातकोत्तर महाविद्यालय जो काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से संचालित हो रहे थे, वित्तीय स्थिति उत्तम पायी गयी। स्व-वित्तपोषित महाविद्यालयों की स्थिति बाहर से तो चुस्त दुरूस्त नजर आयी लेकिन अंदर से उतनी ही व्यवस्थाविहीन रही। सभी वित्तपोषित स्नातकोत्तर महाविद्यालयों के प्रशासन में कर्मठ एवं दूरदर्षिता की भावना का संचार पाया गया। उक्त महाविद्यालयों के पुस्तकालयों की स्थिति भी गुणात्मक पायी गयी। सभी वित्तपोषित महाविद्यालयों में अध्ययन एवं अध्यापन से सम्बद्ध सभी प्राकार की पुस्तकें पत्र-पत्रिकाएं एवं समाचार पत्र प्रचुरता से उपलब्ध पाये गये; लेकिन स्व-वित्तपोषित कालेजों में प्रबन्धकीय व्यवस्था होने के कारण महाविद्यालयों की व्यवस्था अंदर से खोखली प्रतीत हुई। प्रबन्धकीय महाविद्यालयों प्रबन्ध व्यवस्था के दुष्परिणाम कर्मचारियों की कार्य प्रणाली, महाविद्यालयी व्यवस्था एवं कर्मचारियों के व्यक्तित्व में दृष्टिगोचर हुए।

विभिन्न स्व-वित्तपोषित/ प्रबन्धकीय महाविद्यालयों में वेतन व्यवस्था मानकों के अनुरूप नही पायी गयी। वैसे तो सैद्धान्तिक तौर पर वेतन भारत सरकार के पाचवें या छठवे वेतन आयोग के सिफारिशों के अनुरूप प्रदान किया जाना चाहिए, किन्तु वास्तविकता में उक्त महाविद्यालय के कर्मचारियों को वेतन 1000 से प्रारम्भ करके 6000 या 8000 तक ही दिया जाता है यह वेतन वर्ष में मात्र 9 से 10 माह तक ही देय होता है प्रबन्ध तंत्र अपने महाविद्यालय के पुस्तकालय की स्थिति पर अच्छी प्रकार से ध्यान नही देता अतएव ऐसे पुस्तकालयों की स्थिति अत्संत दयनीय पायी गयी। जब कभी ऐसे महाविद्यालयों में पुस्तकालय से सम्बन्धित किसी प्रकार जांच-पड़ताल होनी होती है तो उस समय कुछ विषय-वार पुस्तकों को मंगा दिया जाता है एवं उन्हीं पुस्तकों को पुस्तकों में संयोजि कर अपना काम चलाने का प्रयास किया जाता है। ऐसे स्व-वित्तपोषित/ प्रबन्धकीय महाविद्यालयों के पुस्तकालय से छात्र-छात्रओं को कभी भी अपने विषय से सम्बन्धि सामग्री या पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पाती। स्व-वित्तपोषित/ प्रबन्धकीय महाविद्यालय के प्राचार्य अपने कर्तव्य के प्रति कर्मठ तो है लेकिन अपने अनुसार महाविद्यालय की व्यवस्था को नहीं चला सकते और अपनी इच्छा के अनुसार महाविद्यालय को चुस्त दुरूस्त बनाये रखने के लिए कोई सख्त नियम नहीं बना सकते।

वाराणसी जनपद के स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में पुस्तकालयों की स्थिति

जनपद के समस्त महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष का पद सृजित पाया गया। कुछ वित्तपोषित महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष पद रिक्त थे। जिस वित्तपोषित महाविद्यालय में पुस्तकालयाध्यक्ष की नियुक्ति नही की गयी तो उनकी जगह पर पुस्तकालय के सहयोगी कर्मचारी को कार्य प्रभार दिया गया था। ऐसे पुस्तकालयाध्यक्ष/ सहयोगी कर्मचारी पुस्तकालय के कार्यों में कुशल व प्रशिक्षित नहीं पाये गये। स्व-वित्तपोषित महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष का पद होता है लेकिन स्व-वित्तपोषित/ प्रबन्धकीय महाविद्यालयों में पुस्तकालयाध्यक्ष पद की गरिमा की जानकारी को अभाव पाया गया। प्रबन्ध तंत्र का दृष्टिकोण पुस्तकाल-याध्यक्ष के लिए मात्र एक क्लर्क तक ही सीमित पाया गया और उसी के अनुसार महाविद्यालय पुस्तकालय के कर्मचारियों को UGC वित्त आयोग के मानक के अनुरूप वेतन नहीं दिया जाता है। महाविद्यालयों में गैर-प्रशिक्षित कर्मचारी ही पुस्तकालय के कार्यों का सम्पादन करते हैं। यहाँ तक गरिमामयी पद पुस्तकालयाध्यक्ष पद भी बिना प्रशिक्षण के कर्मचारी नियुक्त कर दिये जाते है कुछ स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में जहाँ प्रबन्धक जागरूक थे अपने कालेज के प्रति सचेत रहते हुए महाविद्यालयों में कुशल एवं प्रशिक्षित कर्मचारियों के सहयोग से कार्यों का सम्पादन करते हैं। कुछ स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों में ऐसे पुस्तकालयाध्यक्ष पाये गये जो कि पुस्तकालय के विषय में पूर्ण रूप से कुशल एवं प्रशिक्षित थे एवं पुस्तकालय को सही ढंग से संचालित कर रहे हैं।

वाराणसी के स्नातकोत्तर महाविद्यालयों में पुस्तकालय स्वचालन की स्थिति

वाराणसी के विभिन्न स्नाताकोत्तर महाविद्यालयों में किये गये सर्वेक्षण से प्राप्त आकड़ों के आकलन एवं संकलन के विश्लेषण के पश्चात पुस्तकालयों में स्वचालन से सम्बन्धित निम्न तथ्य परिलक्षित हुए :

- महाविद्यालयों में पुस्तकालय स्वचालन हेतु पैतृक अथवा शासकीय संस्थाओं के वित्तीय सहयोग एवं मार्गदर्शन में पूर्णता का अभाव पाया गया।

- महाविद्यालयों का प्रबन्ध तंत्र प्रशासकीय व्यवस्थाओं पर हावी होने के कारण उक्त व्यवस्था में प्राचार्यों अथवा पुस्तकालयाध्यक्षों की स्वतंत्र सोच, विकासशील प्रयास को संकुचित एवं सीमित हो गये हैं।
- अशासकीय एवं स्व-वित्तपोषित महाविद्यालयों में पुस्ताकालय कर्मियों (मुख्यतः पुस्तकालयाध्यक्षों) के वेतन एवं भत्तों का निर्धारण UGC मापदण्डों के अनुसार नहीं किया गया। जिससे उक्त लोगों मे लगन एवं कार्यकुशलता, नेतृत्व एवं दूरदर्शिता का अभाव पाया गया। डा0 एस0आर0 रंगनाथन द्वारा प्रदत्त 'कर्मचारी सूत्र' या UGC मापदण्डों के अनुरूप पुस्तकालय कर्मियों की संख्या नही पायी गयी। जिसका प्रभाव विभिन्न पुस्तकालयों की कार्य प्रणाली एवं सेवाओं में दृष्टिगोचर होता है ।
- महाविद्यालय के शैक्षणिक कार्यक्रमों एवं पुस्तकालय में उपलब्ध सुविधाओं में कहीं कोई तालमेल नहीं पाया गया।
- अधिकतर महाविद्यालयों में न तो पुस्तकालय स्वचालन किया गया है और न ही भविष्य में इस तरह की सम्भावना दृष्टिगोचर हुईं।
- पुस्तकालयों में मुख्यतः परम्परागत अध्ययन श्रोत ही सूचना के संग्रहण एवं पुनर्प्राप्ति के मुख्य आधार हैं। गैर एवं अद्यतन सूचना श्रोत जैसे E-Journal, E- Book, CD- Rom, Data Bases का सर्वथा अभाव दृष्टिगोचर हुआ।
- पुस्तकालय स्वचालन हेतु आवश्यक स्वचालन साफ्टवेयर के क्रय हेतु आवश्यक वित्त के अभाव को पुस्तकालय स्वचालन के मार्ग की प्रमुख बाधा के रूप में दर्शाया गया है किन्तु वर्तमान में उपलब्ध विभिन्न Open Source Softwares के सन्दर्भ में अनभिज्ञता एवं अनिच्क्षा स्पष्ट देखी गयी।
- कुछ पुस्तकालयों में जहाँ पुस्तकालय स्वचालन साफ्टवेयर का क्रय किया गया है, वहाँ एक जागरूक क्रेता (उपभोक्ता) का परिचय देते हुए क्रय से सम्बद्ध विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं जैसे प्रशिक्षण, छूट, नवीन संस्करण एवं संशोधित संस्करण की मुफ्त उपलब्धता आदि का आवश्यक उपयोग प्राप्त करने हेतु दृढ़ इच्छा शक्ति का अभाव देखा गया।
- कुछ महाविद्यालयों में जहाँ उपयुक्त संख्या में कम्प्यूटर पाये गये वहाँ कम्प्यूटर नेटवर्किंग (LAN) का अभाव देखा गया एवं नेटवर्क पर आधारित सेवाओं जैसे इंटरनेट प्रोसेसिंग, ई-मेल आदि का अनुपलब्धता पायी गयी।

पुस्तकालय संचालन आधुनिक पुस्तकालयों की एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। पुस्तकालयों से प्रदान की जा रही पुस्तकालय एवं सूचना सेवाओं में गुणवत्ता, गतिशीलता, विश्वसनीयता, पारदर्शिता, परिशुद्धता की प्राप्ति हेतु पुस्तकालय स्वचालन अत्यंत महत्वपूर्ण है। वर्तमान में परिसंचरण, पुनर्प्राप्ति, खोज प्रतिवेदन तथा धारावाहिकों के पुनर्नवीनीकरण सम्बन्धी कार्यों को परम्परागत ढंग से करने पर अधिक मानव संसाधन की आवश्यकता पड़ती है तथा कार्य करते समय मानवीय त्रुटियों की अधिक सम्भावना रहती है। सूचना प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रचार प्रसार ने उपभोक्ताओं की अपेक्षा को बढ़ा दिया है जिससे ग्रन्थालय सेवाओं में कम्प्यूटर का प्रयोग अपरिहार्य हो गया है। यह अधिक ध्यान रखने योग्य बात है कि पुस्तकालय स्वचालन को एक दीर्घ कालीन नियोजन एवं सुविकसित रणनीति के आधार पर ही क्रियान्वित किया जाना चाहिये।

सन्दर्भ सूची

AKINFALARIN ,W.A. Automation in the Adeyem collage of education library, Onda (U.K.)

BAILY, P (2004); Managing Information, International & Intellectual & letters developing Moment in library Automation.

MOTORIA, R.K. UPADHYAY, P.K. MANI M (2007); Automation and Networking. Public Library in India using E-Library Software For national information center Program . 41(1)

ONDARI, OKEMWANT (1999); Managing a Library automation Project : The Mai University Experience Program 2-(4).

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,133-139
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 10 सितम्बर 2016

आसावरी थाट के अप्रचलित राग और बंदिशें

डॉ. रूपाली जैन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आसावरी थाट के अप्रचलित राग और बंदिशें* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रूपाली जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

भारत के आदिम निवासियों का बनाया हुआ यह राग कई शताब्दियों तक 'सावेरी' नाम से चलता रहा। 17 शतक से उत्तरी भारत में सावेरी का जो प्रकार प्रचार में था, उसका नामकरण भिन्न होने लगा। आर्य तथा अनार्य की चेतना तो अवचेतन में थी ही, इससे आर्यो से अपनाए हुए, सावेरी का नाम अ-सावेरी, कालांतर में आसावरी पड़ गया।

आसावरी थाट का निर्माण पं. भातखंडेजी की सरलता की एक चेष्टा है। आधुनिक युग में भी आसावरी को बहुत से गायक भैरवी थाट में गाते हैं। विशेष राग आसावरी अपने थाट में राग जौनपुरी से इतना निकट हैं कि अधिकतर इस राग को भैरवी थाट में गाना या बजाना पसन्द करते हैं या फिर जौनपुरी की ही अवतारणा करते हैं। जौनपुरी को आश्रयराग बनाने में व्यर्थ जटिलता की पुष्टि होती। इस प्रकार आधुनिक आसावरी थाट की महत्ता सिद्ध हो सकती हैं।[1]

आसावरी ठाठ का आधार इसी प्राचीन राग आसावरी पर हैं। आसावरी थाट का आश्रय राग आसावरी हैं, इसे दक्षिण में 'नटभैरवी' कहते हैं। आज कल इसके दो रूप प्रचलित हैं; 1. कोमल ऋषभ आसावरी एवं 2. शुद्ध ऋषभ आसावरी।

अप्रचलित राग

'अप्रचलित राग' से तात्पर्य'' जो प्रचलन में नहीं है।'' हिन्दुस्तानी रागों के प्रचलित एवं अप्रचलित इस प्रकार के दो भेद रहते हैं। अप्रचलित रागों का दूसरा नाम अप्रसिद्ध राग है। अप्रचलित राग प्रायः मिश्र राग होते हैं और वे प्रचार में कम प्रमाण में गाये जाते हैं। रागों के प्रचार में अधिक होने का मुख्य कारण यह हैं कि इन रागों के पूर्वाग और उत्तरांग संवाद रूप में रहते हैं। ऐसे रागो में विकृत अवस्थाओं की भरमार नहीं होती है। हर एक थाट में कुछ प्रचलित और कुछ अप्रचलित राग होना संभव हैं। प्रचलित रागों का विस्तार सहजता से होता हैं और अधिक परिचय होने के कारण सामान्य रसिकों के बस में वे रहते

* अतिथि प्रवक्ता, शासकीय गृहविज्ञान महाविद्यालय होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

हैं। इसके विपरित अप्रचलित या मिश्र रागों में विकृत स्वरों का आधिक्य रहने से उनका विस्तार करते समय गायकों को अधिक ध्यान देना पड़ता हैं। मिश्रण होने के कारण सामान्य श्रोताओं को आसानी से ऐसे रागों का रसास्वादन नहीं हो पाता। ऐसे राग विद्वान और गिने चुने खास अभ्यासी रसिकों को ही आनंद देते हैं। महफिल मे सामान्य श्रोताओं की संख्या अधिक होने के कारण और विस्तारक्षम होने की वजह से कलाकार प्रचलित राग ही अधिक प्रमाण में पेश करते हैं। इसका अर्थ यह नहीं हैं की वे अप्रसिद्ध राग जानते ही नही उन्होंने अप्रसिद्ध रागों का अध्ययन नहीं किया होता हैं और प्रसंगवशात उन्हें गाया बजाया भी जाता हैं पूर्व सूरी कलाकार प्रायः अप्रसिद्ध राग आम महफिलों में पेश नहीं करते हैं। लेकिन आज का जमाना अप्रसिद्ध या मिश्र रागों को पेश करने का आया हैं। हर एक घराने मे अप्रसिद्ध रागों का अपना खजाना रहता हैं।[2]

अलग - अलग समय में अलग-अलग राग प्रचलित एवं अप्रचलित रहते हैं। वर्तमान मे जो राग प्रचलित हैं, वह पूर्व काल में हो सकता हैं कि अप्रचलित रहे हो एवं वर्तमान में जो राग प्रचलित हैं वह हो सकता हैं की पूर्वकाल में प्रचलित रहे हो।

इसी प्रकार अप्रचलित रागों का गायन वादन होता हैं। थाट के कुछ अप्रचलित राग जो निम्नानुसार हैं का वर्णन किया गया हैं; जैसे- चापघंटारव, शोभावरी, अहीरी तोडी, कौशिक रंजनी आदि।

बहुधा ऐसे होता भी है कि यदि आप किसी संगीतज्ञ के समक्ष ऐसे किसी राग की चर्चा करे तो वह एकदम कह उठता हैं अरे यह तो प्रचलन में नहीं हैं, इसे कोई गाता वाता नहीं हैं।

राग-चापघंटारव : बरजित कर गंधार सुर, सम सम्वाद बखान। मधनि कोमल मानकर, घंटारव पहचान।।

इस राग में भक्ति रस के गीत आंनददायक होते हैं। प्रचार में यह राग बहुत कम हैं। इस राग की गति मध्य और तार सप्तको में हैं। इस राग की जाति षाडव हैं। इसका वादी स्वर षड़ज एवं संवादी स्वर मध्यम हैं। इसमें धैवत व निषाद कोमल हैं एवं गंधार वर्ज्य स्वर हैं। इसका गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर हैं। *आरोह* : सा रे म प ध नि सां। *अवरोह* : सां नि ध प म रे सा। *पकड़* : नि सा रे म, प ध, प म रे सा।

दादरा-ताल दादरा;

स्थायी : ब्रज के बिहारी नंद दुलारे, मधुर मुरलि तान सुनाये।।

अंतरा : नाचत राधा पायल बाजे, झांझर झनन झनन झनके।।[3]

स्थायी

X			0		
सां	नि	ध	प	म	प
ब्र	ज	के	बि	हा	री
सा	रे	म	प	म	प
नं	ऽ	द	दु	ला	रे
सा	रे	म	प	प	प
म	धु	र	मु	र	ली
ध	नि	सां	नि	ध	म
ता	ऽ	न	सु	ना	ये

अंतरा

X			0		
प	म	रे	नि	ध	प
ना	च	त	रा	ऽ	धा
सां	सां	सां	ध	रें	सां
पा	य	ल	बा	ऽ	जे
सां	रें	सां	नि	ध	प

झां	झ	र	झ	न	न
म	प	ध	रे	प	म
झ	न	न	झ	न	के

1. स्थायी का प्रथम आवर्तन तार षडज से प्रारम्भ होकर भैरवी के अवरोह की तरह लगता है।
2. द्वितीय एवं तृतीय आवर्तन में सारंग अंग का भास होता है।
3. अंतरे के प्रथम आवर्तन में 'नि ध प' आसावरी, जौनपुरी में लगने वाली स्वर संगति है।
4. तृतीय आवर्तन में 'नि ध प' स्वर संगति की पुनरावृत्ति हुई है।
5. यह रचना दादरा ताल में निबद्ध हैं, जिसे दादरा कहते हैं।
6. बंदिश को देखते हुए लगता है कि प्राचीन संगीत में भगवान कृष्ण की रासलीला के लिए इस राग को गायन तथा वादन में उपयोग में लाया जाता होगा। बंदिश के बोल तथा सारंग का अंग तथा दादरा ताल इस बात की पुष्टि करता है और राग का नाम 'चापघंटारव' गायन के साथ नृत्य की पूर्णता तथा समय दर्शाता है।

राग - शोभावरी; धैवत मृदु, मृदु मध्यम, औडव ग नि बिन गाय। रि ध संवादी वादि तें 'शोभावरी' कहाय।।

यह आसावरी मेल का अत्यंत रंजक दक्षिणात्य प्रकार हैं। इसमें आसावरी के ही स्वर लगते किंतु गंधार, निषाद बिलकुल वर्ज्य हैं। म रे संगति से पूर्वांग में सारंग का भास बहुत रक्तिदायक होता हैं। इसका वादी स्वर धैवत तथा संवादी स्वर ऋषभ हैं। गायन समय प्रातःकाल हैं।

राग का मुख्यांग; रेमपसां, ध़ऽप, मपध़, मप रे, सा।

राग शोभावरी - मध्यलय त्रिताल; ''अब ना जगावो प्रीतम प्यारे, रैन अंधेरी जगी जगाई। भई भोर मोहे सोवन देरे, अंखियॉ न मोरी लागत पल छिन अब न सतावो नंद दुलारे।।''[4]

इस राग में तार षडज से वादी स्वर कोमल धैवत पर लायी गयी मींड तथा मध्यम, पंचम और धैवत का प्रयोग प्रातःकाल के समय को प्रतीत करता है। तथा सारंग अंग से लिया गया ऋषभ किसी तंद्रा से जागने के आभास को प्रतीत करता हैं।

3 रें मं रें सां अ ब न स 3	X ध़ ध़ प प ता ऽ वो ऽ X	2 म प (मप) (धप) नं ऽ (दऽ) (दुऽ) 2	0 म रे – – सा ला ऽ ऽ रे 0

राग - आभेरी तोड़ी; राग आभेरी तोड़ी में तोड़ी रागांग वाचक स्वर समूह के प्रयोग होने के बाद भी आसावरी के स्वरों का अधिक प्रयोग हैं। इस हेतु आभेरी तोड़ी को आसावरी थाट के अन्तर्गत रखा गया है इसमें रिषभ, गंधार और धैवत शुद्ध और कोमल दोनों प्रकार से लगते हैं। निषाद कोमल लगता हैं। बाकि अन्य स्वर शुद्ध हैं। इसका वादी स्वर धैवत और संवादी स्वर गंधार हैं। जाति वक्र संपूर्ण, उत्तरांग प्रधान एवं गायन समय दिन का द्वितीय प्रहर है।

इसमें षड़ज, कोमल, गंधार, पंचम, कोमल, धैवत, न्यास बहुत्व के एवं दोनों ऋषभ एवं शुद्ध धैवत तथा निषाद अनाभ्यास अल्पत्व के स्वर हैं। *आरोह :* सा रे ग म प ध़ प, ध़ नि़ सां। *अवरोह :* सां नि़ ध़ प म ग़ रे़ ग़ रे़ सां। *पकड :* रे म प ध़ म प ग़ रे़ ग, रे सा, रे ग म ग म प ध नि़ सां रें नि़ ध़ प, म प म ग़, रे़ ग़, ग रे़ रे़ सा।

राग - आभेरी तोड़ी (मध्यलय);

स्थायी : गुनि जन गाइये बजाइये, सरस सुर तान आलाप अलंकार बरन - बरन साधिये।

अंतरा : सात सात गुन लेहु करोरन सात तिगुन मूर्च्छना संवारन, तीन ग्राम गति धुरन -मुरन जानिये।।[5]

स्थायी

– ध़ (पम) प ऽ गु (निऽ) ज 3	ग़ – – (रेसा) न ऽ ऽ (गाऽ) X	रे नि़ सा रे ऽ इ ये ब 2	ग म ग म जा ऽ इ ये 0
प ध़ (पम) प ऽ स (रऽ) स 3	ध़ सां – म सु र ऽ ता X	– म प नि़ ऽ न आ ऽ 2	(ग़) – रे रे ला ऽ प ल 0
ग़ रे़ – सा ऽ का ऽ र 3	रे नि़ सा रे ब र न ब X	ग म प ध र न सा ऽ 2	नि़ (सां) – ध़ धि ये ऽ ऽ 0
प, ध़ (पम) प ऽ, गु निऽ ज			

अंतरा

म – प ध सा ऽ त सा	– ध प ध ऽ त गु न	सां – सां सां ले ऽ हु क	रें नि सां सां रो ऽ र न
3	x	2	0
ध – ध ध स ऽ त ति	सां सां सां – गु न मू ऽ	रें नि सां रें ध र न मु	ध – प प वा ऽ र न
3	x	2	0
(पध) (निसां) सां म तीऽ ऽऽ न ग्रा	– म प नि ऽ म ग ति	रे रे ग रे धु र न मु	सा सा (रेग) मप र न (जाऽ) (ऽऽ)
3	x		0
म (पध) (निसां) ध नि (येऽ) (ऽऽ) ऽ	प, ध (पम) प ऽ, गु (निऽ) ज		
3			

आभेरी तोडी में चार रागों का समावेश हैं; 1. आसावरी, 2. गौड, 3. खमाज, 4. तोडी।

1. स्थायी के प्रथम आवर्तन में आसावरी के स्वरों से प्रारंभ किया गया है, आधी लाईन के बाद ''सारे ग म ग म'' गौड के स्वर समूह में लिया गया है।
2. द्वितीय आवर्तन में आसावरी के स्वरों के प्रारंभ के बाद अंत में (ग) - रे रे ग रे तोडी अंग का स्वर समूह लिया गया हैं।
3. तृतीय आवर्तन में तोडी अंग ग रे सा के बाद 'सा रे ग म प ध नि सां'' स्वर खमाज के अंग हैं।
4. अंतरे के प्रथम आवर्तन में आसावरी राग के ही स्वर प्रयुक्त हुए हैं।
5. द्वितीय आवर्तन में भी आसावरी के स्वर लिए गए हैं।
6. तृतीय आवर्तन में प ध नि सां स्वर खमाज अंग के है एवं रे रे ग रे स्वर तोडी अंग के हैं।
7. तृतीय आवर्तन के अंत में खमाज अंग के रे ग म प ध नि सां लिया गया है।

राग - कौशिक रंजनी; आसावरी थाट जन्य इस राग का वादी स्वर षडज और संवादी स्वर मध्यम है। इस राग में पंचम वर्ज्य हैं एवं आरोह में ऋषभ वर्ज्य हैं। इस राग की जाति षाडव हैं। इस राग में गंधार धैवत कोमल हैं अन्य स्वर शुद्ध हैं। इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर हैं। *आरोह :* सा ग म ध नि सां। *अवरोह :* सां नि ध म ग रे सा।

स्थायी [6]

			सां ए	– (सरिं) ऽ ऽऽ	रें सां मि त
				3	4
नि		नि			

ध — वा ऽ X	म ग कि त 0	म ध जा ऽ 2	नि सां य र 0	सां (—ध) है (ऽभौ) 3	— म ऽ र 4
म — मे ऽ X	(मग) (रेग) (हाऽ) (ऽऽ) 0	म (—ग) ऽ ऽऽ 2	रे सा ध न 0	सा ध में लें 3	— नि ऽ त 4
म सा ग फू ऽ X	ध नि म ध ल न 0	(सांनि) (सांरें) (कऽ) (ऽऽ) 2	रें सां ह र 0	नि (सांरे) वा (ऽऽ) 3	रें सां मि त 4

अंतरा

					नि ध दि न
रे (गम) (गग) (मंऽ) (ऽऽ) X	म ध ग ल 0	नि (धनि) सां (आऽ) ऽ 2	नि सां ज आ 0	— सां ऽ ये 3	नि नि गु न 4
नि सां (सांसां) (रेंरें) (साऽ) (ऽऽ) X	(गं) (रेंसां) ऽ (गर) 0	नि सां घ र 2	नि ध — आ ऽ 0	नि (धनि) सां (येऽ) ऽ 3	नि ध र ह 4
म — मा ऽ X	(मग) (रेग) (लाऽ) (ऽऽ) 0	ग म रे ऽ डा 2	— सा ऽ रू 0	— सा ऽ मैं 3	नि ध नि गु नि 4
म सा ग दा ऽ X	ध नि म ध स न 0	(सांनि) (सारें) (केऽ) (ऽऽ) 2	रें सां ग र 0	नि (सारें) वा (ऽऽ) 3	रें सां मि त 4

कौशिक रंजनी

1. स्थायी के प्रथम आवर्तन में 'ग़मध़निसां' स्वर संगति चन्द्रकौंस का भास होता हैं।
2. द्वितीय आवर्तन में 'मग़रेग़मग़रेसा' रागेश्री राग का भास होता हैं।
3. अंतरे के प्रथम आवर्तन ग़मध़निसां राग चन्द्रकौस की तरह है।
4. द्वितीय आवर्तन में वादी स्वर से प्रांरभ होकर वादी की प्रधानता दिखाती है।
5. तृतीय आवर्तन में ग़मरेसा कान्हडा अंग है।
6. यह रचना एकताल में निबद्ध है।

भारतीय संगीत में राग गायन परंपरा अति विशिष्ठ परंपरा हैं। किसी राग में 5 स्वर, किसी राग में 6 स्वर एवं किसी राग में 7 स्वर के उपयोग के साथ उसकों अलग-अलग स्वर संगतियों से प्रस्तुत करके गायन प्रस्तुति हेतु तैयार किया जाता हैं। आसावरी थाट के प्रचलित रागों की बंदिशें अपने सांगीतिक स्वरूप के लिए शास्त्रोक्त रूप में प्रसिद्ध है किंतु इस थाट में कुछ अप्रचलित राग भी हैं जो कि पुर्व में प्रचलित हुआ करते थे, संभवतः अपने क्लिष्ट स्वरूप और स्वर लगाव की विविधता की वजह से यह अप्रचलित हुए हों, इन रागों में मिश्र जाति की अधिकता हैं। कई राग अपनें थाट के ही अथवा थाट के बाहर का मिश्रण लेकर बनाए गये हैं मुझें उम्मीद हैं कि आने वाले समय में, यदि विद्वतजन एवं गुणीजन गुरूशिष्य परंपरा द्वारा विशेष तालीम के साथ सीना-ब-सीना होकर अपनी कृपा करेंगे, तो हम इन अप्रचलित रागों को प्रचलित स्वरूप में पुनः लाकर स्वयं को गौरवान्वित कर सकेगें।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[1]संगीत (आसावरी थाट अंक), पृष्ठ संख्या 13
[2]संगीत (अप्रचलित राग, ताल, अंक), पृष्ठ संख्या 43
[3]संगीत (आसावरी थाट अंक), पृष्ठ संख्या 4
[4]अप्रकाशित राग, भाग -1, जय देव पत्की पृष्ठ संख्या 98
[5]अभिनव गीतांजली, भाग -4, पं. रामाश्रय झा, पृष्ठ संख्या 153, 154, 155,
[6]राग सरिता -सी. आर. व्यास, पृष्ठ संख्या 85

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,140-143
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 21 सितम्बर 2016

भारतीय वित्तीय बाजार

मनोज कुमार साहु*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारतीय वित्तीय बाजार* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार साहु* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

अद्यतन व्यवस्था में वित की प्रभावशाली भूमिका है। आधुनिक राजव्यवस्था आर्थिक सुव्यवस्था पर निर्भर करती है। आर्थिक व्यवस्था के लिए वित्त एक आवश्यक वस्तु है जिसकी आवश्यकता सभी व्यक्ति, व्यवसाय एवं सरकार को पड़ती है।

वित्तीय बाजार

वित्तीय बाजार में वित्तीय प्रणाली में संलग्न सभी मेकेनिज्म को सम्मिलित किया जाता है। आर्थिक व्यवस्था के लिए पूंजी निर्माण महत्वपूर्ण तथ्य है। पूंजी निर्माण का कार्य वित्तीय बाजार या वित्तीय प्रणाली के द्वारा होता है। पूंजी निर्माण की प्रक्रिया में बचतें, वित्त तथा विनियोग शामिल होते हैं।

एक प्रगतिशील अर्थव्यवस्था के लिए विकसित वित्तीय पद्धति आवश्यक होता है। इसके लिए वित्तीय संगठनों का विकास करना आवश्यक हो जाता है। वित्तीय क्षेत्र के प्रमुख घटकों में वित्तीय संस्थान जैसे UTI, LIC बैंक होते हैं। द्वितीय घटक में विकसित मुद्रा बाजार तथा पूँजी बाजर जो पूँजी को हस्तांतरण की सुविधा देते हैं। तीसरा घटक वित्तीय प्रतिभूतियाँ जिनका क्रय विक्रय वित्तीय बाजारों में होता है।

भारतीय वित्तीय बाजार का विकास

भारतीय वित्तीय बाजार के विकास क्रम को 2 प्रकार से देखा जा सकता है। 1991 के भारतीय अर्थव्यवस्था में उदारीकरण के पूर्वकाल में भारतीय वित्तीय बाजार में प्रगति संतोषजनक ही रही। स्वतंत्रता के पूर्व भारतीय वित बाजार में परंपरागत प्रभाव पड़ा। उस समय संकुचित बाजार वित्तीय संस्थानों की कमी, निम्न उद्यमशीलता भारतीय वित बाजार को प्रभावी ढंग से प्रगति करने में संभव नहीं हो पायी। अंग्रेजों के द्वारा अपने हितों का संरक्षण उद्योगों एवं वित बाजारों की प्रगति के लिए बाधक रहा।

* सहायक प्राध्यापक [वाणिज्य], शासकीय महात्मा गाँधी महाविद्यालय [खरसिया] रायगढ़ (छ.ग.) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

स्वतंत्रता पश्चात् नियोजन काल

देश ने समाजवादी कल्याणकारी राज्य के लिए नियोजन को अपनाया गया। देश में मिश्रित पूँजीवादी व्यवस्था को विकास के लिए अपनाया गया। जिसके कारण सरकारी व निजी क्षेत्र दोनों को विकास के लिए साधन बनाया गया। इस काल में भारतीय वित्तीय संस्थानों का गठन किया गया। कई संस्थानों का स्वामित्व सरकारी नियंत्रण में 20 वीं सदी के 5 वें व 6 वें दशकों में किया गया। भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक, भारतीय जीवन बीमा निगम इत्यादि संगठनों को सरकारी नियंत्रण में लाया गया। 1969 व 1980 में प्रमुख 20 बैंकों का राष्ट्रीयकरण किया गया तथा विकास बैंकों के क्षेत्र में भी IFCI, IDBI, UTI, ICICI जैसे वित्तीय संस्थानों का गठन किया गया। प्रतिभूति बाजार में निवेशकों के लिए उनके हित संरक्षण के लिए कम्पनी अधि. 1956, प्रतिभूति अनुबंध अधिनियम 1956ए MRTP एक्ट तथा फेमा अधिनियम लाये गये।

इस काल में विकास बैंकों ने उद्योगों व परियोजनाओं के लिए आय प्रदान करने का कार्य किया। ये संस्थान सरकारी संरक्षण में साधनों के वितरक को भूमिका में ही नजर आये। पूंजी बाजार के विकास के लिए विशिष्ट संस्थाऐं अभिगोपन जैसे क्षेत्रों का विकास ही नहीं हो पाया। साथ ही सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों को अधिक ध्यान देने से लघु उद्योगों को आवश्यक वित्तीय साधन नहीं उपलब्ध नहीं हो पाया।

1991 का आर्थिक उदारीकरण के पश्चात् काल

1991 में प्रधानमंत्री श्री नरसिम्हा राव जी के द्वारा भारत में आर्थिक उदारीकरण लाया गया। इसके सूत्रधार तत्कालीन वित्तमंत्री श्री मनमोहन सिंह जी थे। देश में आर्थिक सुधार अपनाए गए। देश में लाइसेंस राज की समाप्ति, सरकारी क्षेत्रों को कम संरक्षण देने तथा कई क्षेत्र निजी उद्यमों के लिए खोले जाने की प्रक्रिया शुरू हुई। नई औद्योगिक नीति तथा आर्थिक नीति के अनुपालन के फलस्वरूप वित्तीय क्षेत्र में भी स्वतंत्र विकास की व्यवस्था शुरू हो गई। अर्थव्यवस्था के उदारीकरण के अवलम्बन से अर्थव्यवस्था के स्थायित्व, विनिवेश, कर सुधार का प्रभाव वित्तीय क्षेत्र में व्यापक रूप से पड़ा। इससे वित्तीय बाजार अधिक सक्षम बनने की ओर अग्रसर हुआ।

वित्तीय बाजार का वर्गीकरण

सामान्य बाजारों में वस्तुओं के क्रय विक्रय की तरह वित्तीय बाजारों में प्रतिभूतियों का क्रय विक्रय किया जाता है। भारत में स्टॉक मार्केट इन कार्यों के लिये बनाये गये हैं। वित्तीय प्रपत्रों का लेन देन सुगठित बाजार के रूप में स्टॉक मार्केट उपलब्ध कराता है।

वित्तीय बाजार प्रमुखतः 2 प्रकार से मुद्रा बाजार एवं पूंजी बाजर में बंटे होते हैं। मुद्रा बाजार अल्पकालीन वित्तीय प्रतिभूतियों के क्रय विक्रय से संबंधित होता है। मुद्रा बाजार में कॉल मनी तथा सरकारी प्रतिभूतियों का व्यवहार शामिल है।

- पूँजी बाजार में दीर्घकालीन प्रतिभूतियां का क्रय विक्रय किया जाता है। पूंजी बाजार में कम्पनियों के अंशों, ऋणपत्रों जो दीर्घकालीन निवेश के लिए प्रपत्र होते हैं इसका व्यवहार किया जाता है। इसके अतिरिक्त प्राथमिक एवं द्वितीयक बाजार भी होते हैं।

भारत में मुद्रा बाजार

भारत में मुद्रा बाजार का नियामक भारतीय रिजर्व बैंक है। भारतीय मुद्रा बाजार के निर्माण, संचालन तथा विकास का कार्य भी उसी के हाथों में है। मुद्रा बाजार उद्योगों तथा व्यापार के लिए अल्पकालीन मुद्रा की पूर्ति का साधन होता है।

भारत में मुद्रा बाजार के 2 रूप मिलते हैं :

1. *असंगठित मुद्रा बाजार;* इसमें साहूकार तथा देशी बैंकर शामिल होते हैं। भारतीय ग्रामीण अर्थव्यवस्था में अल्पकालीन ऋणों की पूर्ति का अधिकांश भाग असंगठित मुद्रा बाजर के द्वारा ही होता आया है। यहां ब्याज दर अधिक लिया जाता है। इन पर रिजर्व बैंक का कोई नियंत्रण

नहीं होता। इसके अतिरिक्त इस क्षेत्र में वित्त कम्पनियाँ व चिटफंड भी आती है। ये प्राप्तियां या अंशदान के रूप में वित्त संग्रह कर ऊँची ब्याज दर पर ऋण देती हैं।

2. *संगठित मुद्रा बाजार;* संगठित मुद्रा बाजर में भारतीय रिजर्व बैंक तथा व्यापारिक बैंक, वित्तीय संस्थान सम्मिलित होते हैं। यह मेट्रो शहरों में मुख्यतः प्राप्त होता है। भारत का मुम्बई प्रमुख मुद्रा बाजार का स्थल है। संगठित मुद्रा बाजारों में कॉल मनी बाजार पाया जाता है। कॉल मनी मार्केट में एक दिन से 14 दिन तक का लेन देन होता है। इसमें बैंक अधिक शामिल होते हैं। मुद्रा बाजार का बृहद रूप ट्रेजरी बिल बाजार है। केन्द्रीय सरकार अपनी अल्पकालीन वित्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भारतीय रिजर्व बैंक के माध्यम से ट्रेजरी बिल जारी किया करती है। ट्रेजरी बिल 14,28,91 या 364 दिवसीय हो सकते हैं। इसमें प्रमुख पक्षकार भारतीय रिजर्व बैंक, भारतीय स्टेट बैंक तथा अन्य व्यापारिक बैंक होते हैं। कमर्सियल बिल मार्केट में एक व्यावसायिक संस्था द्वारा दूसरे व्यावसायिक संस्था पर बिल लिखे जाते हैं। इसके अतिरिक्त जमा पत्र बाजार में बैंक द्वारा अपने पास जमा राशि के लिए जमा पत्र जारी किये जाते है जो विनिमय साध्य होते हैं। अन्य बाजार में कमर्सियल पेपर मार्केट, मुद्रा बाजार म्युचुअल फंड आदि शामिल हैं।

भारतीय मुद्रा बाजार का महत्व व कमियाँ

भारतीय मुद्रा बाजार भारतीय उद्योगों व व्यापार की कार्यशील पूँजी की व्यवस्था करने का प्रमुख साधन हैं। इसके अतिरिक्त सरकार की अल्पकालीन वित प्रबंधन का एक व्यावहारिक साधन है। अर्थव्यवस्था के विकास के लिए वित्तीय व्यवस्था का सक्रिय पक्ष के रूप में मुद्रा बाजार प्रभावी भूमिका निभाता है।

फिर भी भारतीय मुद्रा बाजार पश्चिमी देशों के मुद्रा बाजार से कम विकसित है। भारतीय मुद्रा बाजार में समन्वय की कमी, देशी बैंकर्स व साहूकारों पर रिजर्व बैंक का नियंत्रण न होना, विवेकपूर्ण ब्याज दर ढाँचे का अभाव होना, सीमित विदेशी कोष, सीमित द्वितीयक बाजार के कारण कम विकसित रूप प्रदर्शित होता है।

भारतीय पूंजी बाजार

पूंजी बाजार दीर्घकालीन वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। पूंजी बाजार में ऋणी तथा ऋणदाता को एक दूसरे के समीप लाने का एक तंत्र पाया जाता है। इसमें प्राथमिक बाजार, द्वितीयक बाजार, स्टॉक मार्केट इत्यादि शामिल होते हैं।

भारत में पूंजी बाजार का वर्गीकरण निम्न रूपों में पाया जाता है :

1. *सरकारी प्रतिभूति बाजार;* इसमें केन्द्र व राज्य सरकारों के द्वारा निर्गमित प्रतिभूतियां, जिन्हें गिल्ट एज प्रतिभूतियाँ कहते हैं, शामिल होते हैं। इनका निर्गमन ऋण प्राप्ति के लिए सरकारें करती हैं।
2. *निगम प्रतिभूति बाजार;* यहाँ ब्यावसायिक कम्पनियाँ अपने दीर्घकालीन वित आवश्यकताओं की पूर्ति, अंशों, ऋणपत्रों और बांड्स निर्गमन करके करती हैं। यह बाजार 2 रूपों में पाया जाता है :

(1) प्रथम निर्गमन बाजार : इन्हें IPO भी कहा जाता है। जब कम्पनियाँ अपनी प्रतिभूतियों का प्रथम बार निर्गमन करती है। इसे प्राथमिक बाजार भी कहा जाता है।

(2) स्कंध विपणन : स्टॉक मार्केट (स्कंध विपणि) में पहले से निर्गमित प्रतिभूतियों का पुनः खरीदा व बेचा जाता है। यह द्वितीयक बाजार होता है। यहाँ ब्रोकर्स के माध्यम से सौदे किये जाते हैं।

भारतीय पूंजी बाजार का विकास

उदारीकरण के पश्चात् भारत में पूंजी बाजार अधिक विकसित हुआ है। पूंजी बाजार का आकार बड़ा है। इसके लिये निवेशकों में विभिन्न वित्तीय संस्थानों द्वारा प्रचलित निवेश अवसरों से जागरूकता बढ़ना है। इसके अतिरिक्त म्यूचुअल फंड्स में निवेश अवसरों से सामान्य जनता भी फंड मैनेजर्स के द्वारा निवेश करने का अवसर प्राप्त कर रही है। भारतीय पूंजी बाजार का नियमन एवं नियंत्रण करने के लिए 1988 में SEBI का गठन हुआ, 1992 में यह वैधानिक रूप से गठित हुई। इससे पूंजी बाजार में निवेशकों की रूचि बढ़ी है। भारत में 24 स्कंध विपणियों की स्थापना, अभिगोपन सेवा प्रदान करने वाली वित्तीय संस्थाओं की स्थापना तथा IFCI, LIC, UTI, IDBI जैसे वित्तीय संस्थानों द्वारा पूंजी बाजारों को सक्रिय बनाने में योगदानों से भारतीय पूंजी बाजार प्रगति पथ पर बढ़ा है।

भारतीय पूंजी बाजार में SEBI के द्वारा प्रभावशाली नियंत्रणकर्ता व नियमनकर्ता की भूमिका निभाई जा रही है। परंतु फिर भी हर्षद मेहता जैसे शेयर दलालों के द्वारा प्रतिभूति घोटाला जैसे प्रकरणों ने भारतीय पूंजी बाजार में हलचल मचाई। जिससे निवेशकों का विश्वास डगमगाया। SEBI अब और अधिक कारगर तरीके से पूंजी बाजार का नियमन करने में लगी है।

भारतीय पूंजी बाजार से औद्योगिक विकास के लिए पूँजी प्राप्त होती है। इससे औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन प्राप्त होता है। हमारे भारत जैसे विकासशील देशों में जहाँ धीमी पूँजी निर्माण की समस्या है। धीमी पूँजी निर्माण बडी परियोजना को लम्बित रख देती है। पूँजी बाजार के द्वारा बचत एकत्र कर पूंजी के रूप में उद्योगों के विकास व देश के विकास में महती भूमिका निभाने का अवसर प्राप्त होता है।

संदर्भ

प्रतियोगिता दर्पण विशेषांक
वित्तीय बाजारों की कार्यप्रणाली -डा0 वी0पी0 अग्रवाल
financial market operations; alok goyal and Mridula goyal
फाइनेंसियल मार्केट ऑपरेसन्स- पी0के0 अग्रवाल एवं उपेन्द्र कुमार

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,144-148
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 सितम्बर 2016

प्राचीन भारतीय चिंतन एवं मूल्यों के द्वारा वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक पुनरूत्थान

श्रुति विग*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *प्राचीन भारतीय चिंतन एवं मूल्यों के द्वारा वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक पुनरूत्थान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *श्रुति विग* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

वर्तमान समय में हमारे मूल्यों एवं आदर्शों का ह्रास हो चुका है। वर्तमान समाज में अनेकों कुरीतियों ने पैर पसारे हुए है। हम जानते हैं कि जैसा समाज होता है वैसी शिक्षा और जैसी शिक्षा वैसा समाज। दोनों एक दूसरे की आवश्यकता के अनुसार अपने विभिन्न पक्षों में सुधार या बदलाव लाते हैं। वर्तमान समय में पुनः समाज तथा शैक्षिक पक्षों के पुनरूत्थान की आवश्यकता है। यह बदलाव और पुनरूत्थान अपने प्राचीन मूल्यों एवं विचारधाराओं को फिर से आत्मसात करके, उन्हें प्रयोग में लाकर किया जाना चाहिए। समाज, शिक्षा, चरित्र, नारी की स्थिति आदि का पुनरूत्थान करने के लिए प्राचीन विचारधाराओं, मूल्यों, शैक्षिक उद्देश्यों, सिद्धान्तों एवं नीतियों का उपयोग करना होगा।

प्राचीन भारतीय दर्शन व मूल्य

विश्व में शिक्षा का आरंभ सर्वप्रथम भारतवर्ष में हुआ। वेद एवं उपनिषद् विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ माने जाते हैं। गुरूकुल शिक्षा जो की प्राचीनतम शिक्षा प्रणाली थी वह भी वेदों पर आधारित थी। जिसका शैक्षिक उद्देश्य छात्रों में आत्मानुभूति का विकास करना, ईश्वरीय गुणों को प्राप्त करना, व्यक्तित्व का विकास करना था जिससे समाज राज्य तथा राष्ट्र का विकास हो सके। वैदिक दर्शन के अनुसार मनुष्य आध्यात्मिकता की प्राप्ती तभी कर सकता है जब उसके शरीर, मन और आत्मा का विकास किया जाए। वैदिक दर्शन उपरोक्त उद्देश्यों के अतिरिक्त स्वास्थ्य संरक्षण तथा सर्वर्द्धन, संस्कृति का संरक्षण एवं विकास, नैतिक व चारित्रिक विकास, कला एवं कौशलों की शिक्षा पर बल देता था। गुरू एवं छात्रों का संबंध भी पिता-पुत्र की भांति था।[1]

* अतिथि प्रवक्ता, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

वेदों के उपरांत चारवाक, जैन और बौद्ध दर्शन ने वेदों के दार्शनिक चिंतन का विरोध किया और तत्कालीन समाज में अपने विचारों, चिंतन एवं मूल्यों की छाप छोड़ी। शिक्षा के क्षेत्र में चारवाक दर्शन का विशेष योगदान नहीं रहा। जैन दर्शन ने नैतिक एवं आदर्श चरित्र, अहिंसा, आदि पक्षों का समर्थन किया और शिक्षा में कला एवं कौशलों के विकास तथा स्वतंत्रता पर बल दिया जिसके फल स्वरूप समाज तथा शिक्षा का उत्थान हुआ। जैनाचार्य मानव मनोविज्ञान से भी परिचित थे। उन्होंने शिक्षा के किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या के निर्माण के लिए पाँच सिद्धांतों का प्रतिपादन किया। छात्रों की परिपक्वता का सिद्धांत, छात्रों की क्षमता का सिद्धांत, छात्रों की आयु, क्रमागतता एवं उपयोगिता का सिद्धांत। शिक्षक एवं शिक्षार्थी दोनो के संयमी होने की बात भी जैन धर्म में कही गयी थी।[1] बौद्ध दर्शन चार आर्य सत्यों एवं आष्टांगिक मार्ग का अनुसरण करने पर बल देता था जिससे निर्वाण की प्राप्ति की जा सकती है। बौद्ध दर्शन मनुष्य-मनुष्य में भेद नहीं करता था। बौद्ध विचार धारा में सर्व-शिक्षा, कौशलों के विकास, स्त्री-शिक्षा, निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, उच्च शिक्षा के लिए विश्वविद्यालयों की स्थापना, अनुशासन, समूह शिक्षण आदि पर बल दिया गया। बौद्ध चिंतन के अनुसार संसार में दुःख है और हमारी तृष्णा उस दुःख का कारण है। सभी को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। यदि हम दुःखों से मुक्ति चाहते हैं तो हमें अपने कर्म सुधारने होंगे।

गीता में स्वधर्म एवं निष्काम भाव से कर्म करने की बात कही गयी है। अपने कर्म को बिना किसी पुरस्कार की कामना के करना चाहिए। वह कार्य कितना ही निम्न स्तर का भले ही क्यों न हो परंतु वह उच्च है सर्वोत्तम है यदि वह निष्काम भाव से किया गया है। गीता के अनुसार सच्ची शिक्षा वह है जो मनुष्य को हर जीव में ईश्वर की सत्ता को देखने योग्य बनाती है। गीता शिष्य को गुरू में श्रद्धा रखने, उसके द्वारा कुछ सीखने की प्रबल इच्छा रखने और गुरू को उसकी जिज्ञासा शांत करने का दायित्व देती है।[2]

इसी प्रकार भारत के अनेकों दार्शनिकों एवं शैक्षिक चिंतनकर्ताओं ने अपने-अपने विचारों एवं सिद्धातों से समाज तथा शिक्षा के स्वरूप को सुगठित एवं लाभकारी बनाने का प्रयत्न किया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अंग्रेजी शासनकाल के पुनर्जागरण काल में जन शिक्षा और स्त्री शिक्षा का बिगुल बजाया। रविन्द्र नाथ टैगोर के विश्वबोध दर्शन तथा शांति निकेतन के योगदान को हम कैसे भूल सकते हैं। भारतीय पाठ्यक्रम में देश-विदेश की भाषा, साहित्य, धर्म, दर्शन, विज्ञान एवं तकनीकी और भौतिक ज्ञान को स्थान देने का श्रेय टैगोर को ही जाता है। वे प्रकृतिवादी शिक्षा के समर्थक थे। टैगोर, अरविन्दो घोष, गाँधी जी, और स्वामी विवेकानन्द ने योग शिक्षा के महत्व पर बल दिया। गाँधी जी के दार्शनिक चिंतन को सर्वोदय दर्शन (सभी का उदय) नाम दिया गया। गाँधी जी का मत था कि शिक्षा द्वारा शरीर, मन और आत्मा का विकास तथा नैतिक एवं चारित्रिक विकास होना चाहिए। साथ ही शिक्षा मनुष्य को जीविकोपार्जन करने योग्य बनाए इसलिए उन्होंने बेसिक शिक्षा की रूपरेखा तैयार की। गाँधी जी ने जन शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा का भी समर्थन किया। श्री अरविन्दो घोष ने खेल-कूद, व्यायाम के साथ भजन, कीर्तन, ध्यान, योग आदि क्रियाओं को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया।

वर्तमान शैक्षिक तथा सामाजिक स्थिति का आंकलन

भारतीय दार्शनिक विचारधाराओं के इतिहास के दृष्टिपात करने से यह तो ज्ञात होता ही है कि हमारा इतिहास साहित्य, धर्म, आदर्श कितने समृद्ध और प्राचीन रहे हैं और इसी कारण यह एक सुगठित शैक्षिक नीति या प्राणाली प्रतिपादित करने में भी सक्षम रहा है। भारतवर्ष शिक्षण संस्थानों, शिक्षण विधि, पाठ्यक्रम, उच्च शिक्षा, विश्वविद्यालयों की स्थापना आदि सभी क्षेत्रों में विश्व में अग्रणी ही रहा है। हमारे दार्शनिकों, वेदों, ग्रंथों की महत्ता पूरे विश्व ने स्वीकारी। परंतु क्या आज भी हम गर्व से कह सकते हैं कि हम वर्तमान समय में भी विश्व में सबसे आगे है या साथ ही है?

यह प्रश्न मुझे एक शिक्षक के तौर पर चिंतित करता है कि हम अपने इतिहास, विचारधाराओं, साहित्य एवं मूल्यों पर जो इतना गर्व करते थे क्या वर्तमान के समाज, शैक्षिक स्तर, संस्थानों, मूल्यों आदि पर भी हम गर्व कर सकते हैं। वैश्वीकरण, विज्ञान एवं तकनीकी, शहरीकरण, अविष्कारों के कारण हमने बहुत उन्नति की है। हमारा राष्ट्र अब सिर्फ कृषि प्रधान देश नहीं रहा। हमारे कुछ नागरिक विश्व के महानतम् संस्थाओं में उच्च पदों पर कार्यरत हैं। हमने स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यापार, जैसे कई पक्षों में प्रगति की है पर फिर भी हमारा वर्तमान समाज, शिक्षा, मूल्य गर्व करने या विश्व की श्रेष्ठ होने की सूची में नहीं है।

समाज; हमारे समाज में मूल्यों एवं आदर्शों का ह्रास हो चुका है। वृद्धजन वृद्धाश्रम में रहते हैं, बच्चे क्रेच में। युवा पीढ़ी नशे में, नशा तकनीक का, पैसों का, दिखावे का। समाज में हर वस्तु बिकाऊ है। बाजारवाद का बोलबाला है। बड़ों का आदर सम्मान आदि बातों का अस्तित्व समाप्त हो चुका है। समाज में चहुँ ओर गरीबी, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, लूटमार, भ्रष्टाचार, गंदी और निम्न कोटी की राजनीति है। बस नौकरी पाना युवा पीढ़ी का लक्ष्य है। आरक्षण की बीमारी भी जनता के बीच भेदभाव बढ़ा रही है। हमारा प्राचीन चिंतन एवं मूल्य बस किताबों में ही रह गया है। क्या हम सही मायने में इसे विकास कहेंगे?

शिक्षा; शिक्षण संस्थानों की संख्या में बढ़ोत्तरी हुयी फिर भी हमारे देश के लोग सही मायने में साक्षर व शिक्षित नहीं हो सके। जो शिक्षा, ग्रहण करते हैं वो बेरोजगार है। शिक्षा के केन्द्र भी पैसा बनाने की मशीन है। प्राचीन समय में मानव के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता था। उसमें ईश्वरीय गुणों का विकास, आदर्श एवं चारित्रिक विकास, शारीरिक तथा बौद्धिक विकास के साथ-साथ भौतिक ज्ञान के विकास पर भी बल दिया जाता था, मानव को जीविकोपार्जन करने लायक बनाया जाता था। आज जब हमारे पास तकनीकि है, किताबे हैं, सरकार एवं नीतियाँ है, हम वैश्विक स्तर पर एक शक्ति के रूप में उभर रहे हैं परन्तु वैश्विक स्तर पर हमारी शिक्षा प्रणाली, शिक्षा का स्तर, उसका पाठ्यक्रम बहुत पीछे है। हम समय के साथ अपने रहन-सहन, कपड़ों, खान-पान में तो सकारात्मक बदलाव लाये पर हमारे विचारों मूल्यों, शिक्षा के स्तर व उसके वास्तविक उद्देश्यों में जो बदलाव आये वे शिक्षा को बेहतरी की ओर न ले जाकर पतन की ओर ले गये। शिक्षण संस्थान छात्रों से बड़ी-बड़ी फीस लेते हैं कपड़े और किताबे उच्च दामों में बेचते है। शिक्षा, ज्ञान, मूल्यों एवं चारित्रिक गुणों के विकास के नाम पर एक प्रमाण पत्र थमा देते हैं जिन्हें पाकर छात्र समझते हैं कि वह नौकरी पाने की कुंजी है। शिक्षा में भी आरक्षण है। क्या यही सही मायने में शैक्षिक अवसरों की समानता है? शिक्षा का केन्द्र एक दुकान, शिक्षक कर्मचारी और छात्र उपभोगता के रूप में अपनी-अपनी भूमिका निभा रहे हैं। सरकार कि नीतियाँ और वित्तीय सहायता कागजों पर ही रह जाती है या कुछ लोगों की जेब में। क्या हमारे राष्ट्र की शैक्षिक नीति सही पथ पर चल रही है?

वर्तमान समय में शैक्षिक वातावरण नीरस हो चुका है। बच्चे कालेज जाना अनिवार्य नहीं समझते। दोषपूर्ण पाठ्यक्रम व परीक्षा प्रणाली एवं अच्छे और समर्पित शिक्षकों की कमी के कारण ट्यूशन एवं कोचिंग कक्षायें हर गली मोहल्ले में खुल गई हैं। शिक्षा को बेचने की वस्तु बना दिया गया। कुछ प्रश्नों को रटकर परीक्षा उत्तीर्ण करा दी जाती है। ऐसी पीढ़ी किस प्रकार अपना जीवकोपार्जन या जीवन कि कठिनाईयों का सामना कर पाएगी। समाज और राष्ट्र के निर्माण एवं प्रगति में योगदान कैसे देगी।

चरित्र एवं मानसिकता; यह कितने दुःख की बात है कि आजादी के 70 साल बाद भी हमारे माननीय प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी को स्वच्छता के लिए अभियान चलाना पड़ रहा है। हम राष्ट्र के प्रति प्रेम की बात करते हैं उसकी संपदा पर गर्व करते हैं, पर राष्ट्र के संसाधनों एवं उसकी संपदा को खुद ही नष्ट करते हैं। हमें ज्ञात है कि सफाई व स्वच्छता न रखने से बीमारियाँ होंगी पर हमारी मानसिकता इतनी निम्न है कि हम इसे अपना कर्तव्य जानते हुए भी नहीं करते। हमे आदत हो गई है लचर व्यवस्था की और हम स्वयं भी इस लचर व्यवस्था के स्थायी स्तम्भ हैं। हम अपने वातावरण को तो स्वच्छ नहीं रखते पर क्या विचारों की स्वच्छता रखते हैं। नारी का सम्मान आज भी नहीं है। हम लड़कियों को विद्यालय तो भेजने लगे, उन्हें नौकरी कर अपने पैरों पर खड़े होने, नए फैशन के कपड़े पहनने, और पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने की स्वतंत्रता तो दी, परंतु उन्हें सुरक्षित महसूस नहीं करा सके। दहेज प्रथा आज भी प्रचलित है। भ्रूण हत्या, बाल विवाह आज भी कई क्षेत्रों में व्याप्त है। आज भी स्त्रियों को वस्तु ही समझा जाता है। उन्हें भोग तथा मनोरंजन के लायक नहीं समझा जाता है। सड़क हो या घर, कार्यालय हो या विद्यालय वह सुरक्षित नहीं। और फिर समाज के कुछ महान चिंतनकर्ता, ठेकेदार एवं राजनेता उसमें नारी जाति कि गलती निकाल ही लेते हैं। क्या हमारी शिक्षा हमारा चारित्रिक निर्माण कर पायी है, हमारी सोच बदल पायी है?

वर्तमान की आवश्यकता

विभिन्न पक्षों पर विचार-विमर्श करके यह ज्ञात होता है कि समाज की हर संस्था, हर मनुष्य स्वार्थ सिद्धि के उद्देश्य से प्रेरित है। भ्रष्टाचार, गरीबी, बेरोजगारी, रिश्वतखोरी, शैक्षिक लचरता, अपराध आदि व्यापक रूप से हमारी रोजमर्रा की जिंदगी में रच बस गया है। या यों कहें कि एक विषम चक्र सा बन गया जिससे निकल पाना किसी चक्रव्यूह से कम नहीं। परन्तु प्रयास अवश्य ही किया जा सकता है। और अपनी संस्कृति और राष्ट्र को पतन से बचाने के लिए हमे प्रयास करना ही चाहिए।

शिक्षा के पुनरूत्थान द्वारा हम नये सिरे से, आदर्शों एवं मूल्यों के माध्यम से अपनी नई और युवा पीढ़ी के चरित्र का निर्माण कर सकते हैं। धर्म शिक्षा जीवन का ऐसा अंग है जिससे व्यक्ति के व्यवहारों, प्रवृत्तियों एवं संवेगों में परिवर्तन व सुधार लाया जा सकता है। वास्तव में धर्म सत्य और सुंदर की पूर्ण प्राप्ति में सहायक होता है। जो कि शिक्षा का लक्ष्य होता है। यहाँ धर्म से तात्पर्य किसी एक ईश्वर या जाति को मानना नहीं है। धर्म का अर्थ है सही या उचित मार्ग या कर्म। रॉस- ''आज भी बढ़ती हुई संख्या में विचारशील व्यक्तियों का विश्वास है कि यदि शिक्षा के द्वारा सभ्यता को उच्च मात्रा में बढ़ाना और कायम रखना है तथा उसकी समय-समय पर होने वाली असभ्यता और पाशविकता को रोकना है तो उसे धर्म पर आधारित करना चाहिए।''[3] धर्म शिक्षा देने का अर्थ है जीवन का सुधार, अच्छे गुणों का विकास जो आध्यात्मिक नैतिक और चारित्रिक विकास के द्वारा होता है। धर्म की शिक्षा के द्वारा यह चेष्टा की जाती है कि व्यक्ति में श्रद्धा भक्ति, मनुष्य का आदर, समाज के प्रति कर्तव्य आदि भावों का विकास हो। उच्चकोटि की सभ्यता का विकास, मानवता द्वारा सामाजिक एवं मूल्यों का पतन होने से बचाना, संस्कृति और विकास का साथ-साथ आगे बढ़ना शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।[3]

यदि राष्ट्र और समाज में से कुरीतियों का अंत करना है तो शिक्षण का कार्य ईमानदारी से करना होगा। वर्तमान की मांग है कि शिक्षा के हर पक्ष में सकारात्मक दृष्टिकोण से कदम उठाये जाये ताकि छात्रों का कल्याण हो सके। प्रवेश से लेकर उनके जीविकोपार्जन की स्थिति में लाने तक शिक्षण संस्थानों को उनका मार्गदर्शन एक अभिभावक बनके करना होगा। संख्यात्मक विकास के साथ गुणात्मक विकास पर भी बल दिया जाए। अब्दुल कलाम ने नवीन अविष्कार पर बल दिया जिसके लिए हमे युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन कर उन्हें अनुसंधान के लिए प्रेरित करना होगा। भारत में साक्षरता बढ़ाने के लिए बच्चों की निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया था। सर्व शिक्षा अभियान, मिड डे मील, छात्रवृत्ति आदि के रूप में अनेक योजनाएँ सरकार चला रही है परन्तु उसमें भी अनेक खामियाँ हैं। शिक्षकों की नियुक्ति, बच्चों की पढ़ाई व किताबे, भोजन, सबकी व्यवस्था लचर है। आवश्यकता है कि इन प्रावधानों का क्रियान्वयन सही ढंग से बिना भ्रष्टाचार के हस्तक्षेप के किया जाए। सभी के लिए शिक्षा की समान व्यवस्था तभी हो सकती है जब हम जात-पात को इसका आधार न माने। आरक्षण का लाभ आर्थिक दृष्टि से कमजोर, अनाथ व दिव्यांग बच्चों को देना चाहिए। जिस प्रकार बौद्धिक शिक्षण प्रणाली में उच्च शिक्षा के लिए बौद्धिक स्तर देखा जाता था न कि जात-पात।

यदि भारत को शक्तिशाली राष्ट्र बनाना है तो युवा पीढ़ी के हुनरमंद बच्चों को पहचानना होगा। उन्हें सुविधाएँ एवं प्रोत्साहन देना होगा। युवा शक्ति पलायन रोकना होगा। भारतीय प्रतिभाओं को वापस वतन लाने का प्रयास करना होगा।[4] बच्चों में ईमानदारी, स्वच्छता, चारित्रिक निर्माण के गुण परिवार से ही देने शुरू कर देने होंगे। हमें उन्हें सिखाना होगा स्त्रियों का सम्मान करना। समाज के प्रति अपने कर्तव्य निभाना, सही गलत में भेद करना। विद्यालयों को भी पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम से अधिक इन लक्ष्यों पर कार्य करना होगा। सिर्फ बौद्धिक विकास करना शिक्षण संस्थाओं का एकमात्र कार्य नहीं।

स्त्री शिक्षा एवं नारी सशक्तिकरण को बढ़ावा देने के लिए हमें उनके परिवारों की मानसिकता में बदलाव लाना होगा। उन्हें प्रोत्साहित करना होगा, जागरूकता फैलानी होगी कि स्त्री का शिक्षित होना और उसका सम्मान होना समाज हित और विकास के लिए कितना अनिवार्य और उपयोगी है। यूनिसेफ द्वारा प्रकाशित रिपोर्ट (1992) 'लड़कियों की शिक्षा को कैसे बढ़ावा दें?' में उपायों का उल्लेख है जैसे, समुदायों के निकट विद्यालय खोले, शिक्षिकाओं की नियुक्ति को बढ़ावा दें, बालिकाओं के लिए अलग स्कूल खोले, छात्रवृत्ति एवं पाठ्य पुस्तकों की व्यवस्था कि जाए, प्रासंगिक पाठ्यक्रम तैयार करें। समुदाय की सहभागिकता बढ़ाएं, बहुविधि शिक्षा पद्धति को बढ़ावा दें, छात्राओं की आवश्यकताओं के अनुकूल पद्धतियाँ बनाएँ।[5]

आज हम विश्वव्यापी आतंकवाद और युद्ध की दुनिया में जी रहे हैं। मानव इतिहास में युद्ध इतना भयावह और विध्वंसकारी कभी नहीं रहा, जितना आज हो गया है। जाति एवं धर्म के नाम पर भी समाज में अराजकतत्व तथा नेतागण अशांति फैलाते

हैं। विज्ञान, तकनीक एवं ज्ञान का गलत उपयोग कर अमानवीय कृत्य हो रहे हैं। आवश्यकता है कि मानवता को पुनः अहिंसक, सुरक्षित, निर्भय, व तनाव रहित बनाया जाय। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शांति शिक्षा देने पर बल दिया जाना चाहिए। शांति जीवन का अंतिम व सनातन मूल्य है, जिसे कोई भी मानव समाज चाहता है। गीता के आदर्शों को आत्मसात करके आज की युवा पीढ़ी विकास की चोटी पर पहुँच सकती है। यदि युवा पीढ़ी, सरकार, शिक्षण संस्थान, समाज, व्यापारी आदि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्म को निष्ठापूर्वक और ईमानदारी से करे और इसमें निष्काम भाव जोड़ दें तो समाज में स्वार्थपरता कहीं दिखाई ही नहीं देगी।

आज के परिवेश में एक बार फिर सभी विचार धाराओं एवं दार्शनिक चिंतन के उन पक्षों को समाज तथा शिक्षा में उपयोग करने की आवश्यकता है जो वर्तमान की परिस्थितियों में कारगर साबित हो। जिसे हम एकलेक्टिक टेंडेंसी भी कहते हैं। एकलेक्टिक टेंडेंसी से तात्पर्य है विचारों या सिद्धांतों के लाभकारी पक्षों का उचित मिक्स बनाकर उसे उपयोग में लाना।[6]

उपरोक्त कथनों में जिन मूल्यों, विचारों एवं उद्देश्यों की बात की गई है वह वास्तविकता में सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक उद्देश्य है। अकेले भारतवर्ष में ही नहीं अपितु विश्व के किसी भी देश के शैक्षिक उद्देश्य यही है। भारतीय शिक्षा एवं समाज की इमारत भी इन्हीं उद्देश्यों एवं मूल्यों की नींव पर खड़ी होनी चाहिए और उसका उचित क्रियान्वयन होना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

[1]लाल एवं पलोड (2010) -*शैक्षिक चिंतन एवं प्रयोग;* आर0लाल बुक डिपो, मेरठ, पृष्ठ संख्या 432

[2]चौबे एवं चौबे (2012) -*फिलॉसोफिकल एंड सोशियोलॉजिकल फाउंडेशंस ऑफ एजुकेशन;* अग्रवाल पब्लीकेशन्स्, आगरा; पृष्ठ संख्या 545

[3]पाल, गुप्त एवं श्रीवास्तव (2013) -*शिक्षा के सिद्धांत एवं शैक्षिक नियोजन;* न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 251

[4]सिंह, आभा (2011) -*शिक्षा दर्शन व समाज,* आलोक प्रकाशन, लखनऊ, पृष्ठ संख्या 182

[5]उपाध्याय, प्रतिभा (2013) -*भारतीय शिक्षा में उदीयमान प्रवृत्तियाँ,* शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या 96-99

[6]वालिया, जे0एस0 (2005) -*प्रिंसिपल्स एंड मेथड्स ऑफ एडूकेशन;* पौल, न्यू देलही, पृष्ठ संख्या 91

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,149-151
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 सितम्बर 2016

जनपक्षधरता की गूँजती आवाजें [हिन्दी गज़ल के परिप्रेक्ष्य में]

डॉ. ममता चौरसिया*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *जनपक्षधरता की गूँजती आवाजें [हिन्दी गज़ल के परिप्रेक्ष्य में]* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *ममता चौरसिया* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

हिन्दी गज़ल की परम्परा फारसी से शुरू होकर उर्दू से समृद्ध होती हुई विकसित हुई। फारसी में रोदसी नाम के कवि ने इस सर्वप्रथम एक स्वतंत्र विधा के रूप में स्थापित किया। वैसे तो अपने शुरूआती दौर में गज़ल से तात्पर्य स्त्रियों के प्रेमपरक वार्तालाप से लेकर इसका सम्बन्ध सुरा-सुन्दरी से जोड़ा गया। लेकिन मौलना हाली ने जनजीवन, जनचेतना से इसका सूत्र जोड़ा। इसी के समानांतर तेरहवीं सदी में हिन्दी गज़ल की परंपरा की नींव पड़ती है।

अमीर खुसरो हिन्दी गज़ल के पहले कलमकार माने जाते हैं। इसके पश्चात् भारतेन्दु युग से लेकर आधुनिक काल तक के कवियों में गज़ल शैली का उत्तरोत्तर दर्शन होता चला जाता है। जनपक्षधरता की आवाजें निराला साहित्य में प्रबल रूप से सुनाई पड़ती है, लेकिन दुष्यंत कुमार ने प्रथमतः हिन्दी गज़ल को आधुनिक संदर्भों में, व्यापक जनचेतना से जोड़ा। गज़ल के स्वरों में आई संजीदगी ने लोगों ने दिलों में गहरी चेतना जगाई।

आधुनिक युग के विषय परिवेश में आम आदमी पूंजीवादी सभ्यता संस्कृति के पाट में लगातार पिसता चला जा रहा है। सामंती मानसिकता उनका लगातार दोहन कर रही है। आज का युवा वर्ग सुशिक्षित, बेरोजगार, विश्रृंखल हो अपराध में संलिप्त होने को मजबूर है। दबंगई, भ्रष्टाचार ने समाज को अनैतिकता की राह पर ढकेल दिया है। बाजारवादी उपभोक्तावादी दृष्टिकोण ने पूरे समाज में बदलाव की सी स्थिति लाकर उसकी संरचना को खण्डित किया है। स्त्री देह की नुमाइंदगी, स्वार्थपरक दृष्टि पूरे परिवेश को विषैला बना रही है। आज भारत की अधिकांश जनता भूखमरी, शोषण, रुग्ण प्रजातंत्र से शापित है। देश की विकलांग सत्ता को उत्तराधिकारी अपनी व्यक्तिगत लाभ के लिए 'जनतंत्र का होम' करने से भी पीछे नहीं है। इनके विरोध की बुलंद आवाज हिन्दी गज़लों के सुनाई पड़ती हैं, ''राग रंग आम हो गए,/ काम यों तमाम हो गए। राजनीति जाति हो गई,/ छल-कपट सलाम हो गए/ सरपरस्त ही नहीं रहे/ अश्व बेलगाम हो गए।''[1]

* [पी.डी.एफ.] हिन्दी विभाग, दि. वि. वि. (दिल्ली) भारत। E-mail : mamatagyanoo@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

दुष्यन्त कुमार भी कहते हैं, ''कभी कश्ती, कभी बत्तख, कभी जल,/ सियासत के कई चोले हुए हैं।''[2]

वैसे तो सत्ता केन्द्रित शायरों का वर्चस्व हर एक जमाने में काबिज रहा है, परन्तु एसे संज्ञाहीन युगचेतना के दौर मे भी अनेक गजलकार हुए जो जनपक्षधर होकर अपनी आवाज बुलंद करते हैं। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन के खतरे उठाते हुए भी गज़लों के स्वरों को चेतनासंपन्न बनाया; क्योंकि वे आम जनता के दुख, दर्द के साक्षी-साथी रहे हैं। कभी-कभी हास्यपरक अंदाज में भी वे अपनी संवेदना व्यक्त करते हैं, ''लीडर स्वच्छंद हो गए/ कौवे निष्पंद हो गए। ऐसे ऐसे उम्मीदवार हैं,/ वोटर मतिमंद हो गए। जीर्ण-शीर्ण लोकतंत्र के/ इलेक्शन पैबंद हो गए।''[3]

सामयिक समय में अनेक विसंगतियाँ परिलक्षित हो रही हैं। एक तरफ मेहनतकश मजदूर वर्ग है जिसे दो जून की रोटी भी मयस्सर नहीं, दूसरी तरफ उन पर राज कर रहे भोग ऐश्वर्य में लिप्त सुविधासम्पन्न लोग हैं। आम आदमी की त्रासदी इसका परिणाम है। विकास के नाम पर लम्बे चाड़े वायदे, व्याख्यान करके 'वी0आई0पी0 एरिए' को और भी ज्यादा रौशनकर दिया जाता है। इस दर्द को बयान करती यह गज़ल, ''यह रोशनी है हकीकत में एक छल लोगों/ कि जैसे जल में झाँकता हुआ महल लोगों।''[4]

इस प्रवंचना को अदम गोंडवी की गज़लें सहज ही संप्रेषित करती हैं, ''भूखमरी की जद में है या दार के साए में हैं/ अहले हिन्दुस्तान अब तलवार के साए में है।''

शरीर और साए के समान ही जनपक्षधरता का जीवन के अनुभवों के साथ सम्बन्ध होता है। 'जाके पाँव न फटी बिवाई, सो का जाने पीर पराई' के अनुसार जिसने आमजन की पीड़ा, त्रासदी को झेला और भोगा ही वही आमजन की जुबान बन सकता है। कबीर और गालिब ने भी अपने समय में युग की त्रासदी को झेला था। लेकिन पूँजीवादी, सामंती मानसिकता से सीधे-सीधे टकराने का साहस उनमें था, परन्तु आधुनिक युग का गज़लकार इन सवालों से सीधा मुठभेड़ करता है। पर इन विषमताओं की बखिया उधेड़कर रख देता है। वर्गीय आधार पर आम जन का जीवन जीने वाले जनकवि कमल किशोर श्रमिक जी कहते हैं, ''हमें खुशी भी मिली सिर्फ दवाई की तरह,/ उसूल ओढ़ के लेते हैं रजाई की तरह।''[5]

सामयिक परिवेश की बहु-आयामी समस्याओं को जनवादी कवि महसूस करता है। चाहे वह सामाजिक हो, राजनीतिक हो या फिर किसी अन्य तरह के हों। वह गज़ल के माध्यम से उनका सकारात्मक हल भी ढूँढने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में संजीवन मयंक की यह गज़ल उद्धृत की जा सकती है, ''कष्ट के लिए क्षमा करे साहब/ हमारे ट्रस्ट में कुछ जमा करें साहब/ रोज पटरी से रेल खुद ही उतर जाती है/ भला बताइए हम इसमें क्या करें साहब।''[6]

21वीं सदी के इस दौर में जब भारत की संकल्पना एक सुदृढ़, सुविकसित, संम्पन्न देश के रूप में की जा रही है। ऐसे सुदृढ़, सुविकसित एवं सुसम्पन्न भारत देश में आखिर कृषक आत्महत्या के लिए बाध्य क्यों? गज़लकार स्वयं को कृषक के स्थान पर खड़ा कर प्रश्न करता है, 'क्यों दीनानाथ मुझपे तेरी दया नहीं,/ आश्रित तेरा नहीं हूँ कि तेरी प्रजा नहीं।'

स्वतंत्र भारत के सियासी आकाओं के कलुषित वोट बैंक की रणनीति जातिवाद, सम्प्रदायवाद का वर्चस्व कायम किया है। शेरजंग गर्ग के शब्दों में, ''बेचकर मुल्क मुस्कुराते हैं,/ कौम के मसखरों के क्या कहने।''[7]

जुल्मों सितमों का यह कहर आज से नहीं, बल्कि सदियों से है, उर्दू, गज़लकार भी आम आदमी की इस पीड़ा को गहराई से महसूस करता है, ''गुज़र चुके हैं हमारे सर/ हजारों सालों के तुन्द तूफां/ मुसीबतों की हवाएँ, जुल्मों-ओ-सितम की आँधी।''[8]

समाज की मूल्यधर्मी विडंबनाओं का धराशायी दिखाने के लिए कवि स्वयं को सारगर्भित प्रतीक के रूप में खड़ा करने से भी नहीं चूकता, ''हमने जो भी किया समझ वालों की समझ नहीं आया। खुद ही तेल छिड़ककर निकले आग बुझाने को।।''[9]

आज उपभोक्ता संस्कृति के दोमुँहे चलन ने लोगों को भ्रमित ही किया है। हिन्दी गज़लकार उस भ्रम को तोड़ने का सार्थक प्रयास करता है, 'मैं तुमको सावधान करने आया हूँ।'[10]

आवाज से आवाज मिलाते हुए इसी बात को उर्दू गज़लकार भी बेझिझक कहता है, ''हमने आपके सारे वादे देख लिए/ आप अपने ही पास अपना हर वादा रखिए।''[11]

सच को झूठ और झूठ को सच बनाने का फैशन सा चल पड़ा है, जिसमें आम जनता ही पिसती है। आम आदमी को बचाने के लिए भी कवि अपनी कुर्बानी देने के लिए भी तैयार है, ''चाहता यह हूँ कि दुनिया जुल्म को पहचान जाय। ख्वाह इस कर्बो-बला के मार्के में जान जाए।''[12]

भारत और भारतवासियों की रक्षा करने में आमजन को भी अपनी जान पर खेल जाने के लिए भी प्रेरित करते हैं, 'यहाँ तक सरफरोशाने-वतन बढ़ जाएँगे कातिल/ कि लटकाने पड़ेंगे नित तुझे दो चार फाँसी पे,'

लक्ष्य के प्रति समर्पित जनपक्षधर गज़लकार फौलाद इरादों से जंजीरे पिघलाने का हौसला रखता है। रामावतार त्यागी कहते हैं, ''जंजीर ने कर दी जो किसी रोज बगावत,/ बाँधोगे मुझे किससे बताना मेरे यार।।''[13]

हर एक युग का अपना युगबोध होता है जो साहित्य की मुख्यधारा कहलाती है। पराधीन भारत के बहु-आयामी समस्याओं के बीच ब्रिटिश सत्ता से मुक्ति साहित्य भी मुख्य धारा थी। वहीं स्वतंत्र भारत में अपूर्ण रह गए स्वप्नों से उपजे जनाक्रोश की अनुगूँज थी। भ्रष्टाचार, विषमताओं, राजनीतिक दाँव-पेंच, मिथ्या आडंबर को दिखाकर आमजन को चैतन्य करना समय की दरकार रही है। कवि अनिल खम्पारिया के शब्दों में, ''राम को राम की धुन के हल्ले में,/ जाने क्या-क्या हुआ मुहल्ले में,/ नेक सीता ने खुदकुशी कर ली,/ एक हैवान दुतल्ले में,/ उड़ गए जेवरात मंदिर से,/ गल कए सेठ जी के गल्ले में।''[14]

आज 21वीं सदी के भारत में, आधुनिक एवं उत्तर आधुनिक समय में भी आमजन की अपेक्षाएँ पूरी नहीं हुई। पूँजीवादी लोकतंत्र की बीमार राजनीति जनकल्याण छोड़ चंद लोगों की सुख सुविधा का एजेंडा बन गया है। प्रेमचंद के शब्दों में कहें तो 'जॉन' के स्थान पर 'गोविन्द' सत्ता पर काबिज हो गया है। चेहरा अलग है, लेकिन रूप वही है। आज के ग्लैमरस, ग्लोबलाइजेशन, वेस्टर्नइज्म की चकाचौंध में आम जनता का विराट दुःख दर्द दब सा गया है।

इसको रेखांकित करना वर्तमान साहित्य के समय सबसे बड़ी चुनौती है। आज यदि हम साहित्य के युगबोध की बात करें तो जनपक्षधर गज़लकार की आवाज होगी 'शोषण से जनता की मुक्ति' 'आमजन की चेतना'। यही हिन्दी गज़ल के कलमकार की रचनाधर्मिता का मुख्य लक्ष्य भी है।

वर्तमान समय के 'बहुजन हिताय' 'सर्वजन सुखाय' को केन्द्र में रखकर अनेक विधाएँ मुखरित हुई हैं, परन्तु भावनात्मक रूप से और संवेदना के स्तर पर गज़ल ही आमजनता के निकट रहा है। कम शब्दों में गहरे भाव लिए संवाद करने की आन्तरिक क्षमता इसमें निहित है। गंभीर विमर्श होने के साथ-साथ आमजन की आत्मा को स्पर्शकर उनकी आवाज, उनकी ताकत बनने की अपूर्व शक्ति है। इसमें आज आधुनिक समय से गज़ल सामंती प्रेमालाप नहीं, बल्कि जनमुक्ति, जनपक्षधरता की गूँजती आवाजें हैं, 'मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप रहूँ कैसे।' (दुष्यंत कुमार)

संदर्भ ग्रंथ

[1]हिन्दी गज़ल उद्भव एवं विकास -रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ संख्या 304, सुनील साहित्य सदन, सं0 2010
[2]साये में धूप -दुष्यंत कुमार, पृष्ठ संख्या 19
[3]हिन्दी गज़ल उद्भव और विकास -रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ संख्या 171, सुनील साहित्य सदन, सं0 2010
[4]*अलाव : समकालीन हिन्दी गज़ल,* संयुक्तांक मई-अगस्त 2015, पृष्ठ संख्या 115
[5]*अलाव : समकालीन हिन्दी गज़ल,* संयुक्तांक मई-अगस्त 2015, पृष्ठ संख्या 115
[6]हिन्दी गज़ल : उद्भव और विकास -रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ संख्या 170, साहित्य सदन, सं0 2010
[7]हिन्दी गज़ल का उद्भव एवं विकास -रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ संख्या 289, सुनील साहित्य सदन, सं0 2010
[8]अली सरदार जाफरी -नंद किशोर विक्रम, पृष्ठ संख्या 38, साहित्य भारती, प्रथम सं0 2006
[9]*अलाप : समकालीन हिन्दी गज़ल,* संयुक्तांक मई-अगस्त 2015, पृष्ठ संख्या 116
[10]दुष्यंत कुमार -शेरजंग गर्ग, पृष्ठ संख्या 106, वाणी प्रकाशन, सं0 2008
[11]गरीबे शहर -राही मासूम रजा, पृष्ठ संख्या 84, वाणी प्रकाशन, प्रथम सं0
[12]बीसवीं शताब्दी में उर्दू साहित्य -गोपीचंद नारंग, पृष्ठ संख्या 75, साहित्य अकादमी, प्रथम सं0 2005
[13]हिन्दी गज़ल : उद्भव और विकास -रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ संख्या 292, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं0 2010
[14]हिन्दी गज़ल : उद्भव और विकास -रोहिताश्व अस्थाना, पृष्ठ संख्या 171, सुनील साहित्य सदन, नई दिल्ली, सं0 2010

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,152-155
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 सितम्बर 2016

आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी के संदर्भ में

श्रीमती पूनम आर्या*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *आधुनिक हिन्दी काव्य में नारी के संदर्भ में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *श्रीमती पूनम आर्या* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

सारांश

हिन्दी साहित्य का आधुनिक युग भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से आरम्भ होता है। इस युग में साहित्य क्षेत्र में काफी परिवर्तन आया हैं। साहित्य में अलग-अलग विधाओं का निर्माण हुआ हैं। आधुनिक काल में नारी चेतना को लेकर भी विस्तृत चर्चा होती आई है। इस काल में उपेक्षित नारी की आत्मा जगाने हेतु सामाजिक सुधार के आन्दोलन का आरम्भ हुआ। नवजागरण के इस युग में देश सुधार के लिए नारी जागरण को प्राथमिकता दी गयी, समाज सुधारकों द्वारा चलाये गये इस आन्दोलनों से अनेक नारी जगत में एक चेतना की लहर दौड़ गयी। नारी से सम्बन्धित इस काल में अविधित उपन्यास, कहानी नाटक, कविता आदि विधाओं की अभिव्यक्ति मिलती है। जिसमें कवियों और लेखकों ने नारी के सौन्दर्य एवं प्रेम की अन्तभावनाओं दया, क्षमा, त्याग सेवा भावना और करूणा की प्रतिमा के रूपों को अपने काव्य का विषय बनाया है।

मुख्य शब्द : नारी चेतना, नारी शिक्षा, नारी शोषण, मानवीयता, गतिशीलता

आधुनिक काल के नारी जागरण को आशारानी वोहरा ने दो भागों में विभाजित किया है। ''सदी के 40-50 वर्षो को नारी जागरण का युग कहा जा सकता है। और स्वतंत्रता के पश्चात् जो दूसरा युग प्रारम्भ होता है। उसे नारी प्रगति का।[1]'' भारतेन्दु युग में अनेक कवियों एवं लेखकों ने नारी चित्रण में सौन्दर्य के साथ शिवरूप का सामंजस्य स्थापित किया है। भारतेन्दु युगीन काव्य में विभिन्न आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप विभिन्न समस्याओं को काव्य का विषय बनाया गया। ''नारी शिक्षा विधवाओं की दुर्दशा का चित्रण और विधवा विवाह का प्रतिपादन बालविवाह का विरोध आदि भारतेन्दु युगीन काव्य के विषय रहे है।[2]'' बालकृष्ण भट्ट ने ग्रहस्थी के संबन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा था। अब नारी नरक की खान य केवल विलास की सामग्री नहीं रही, वह वास्तविक सह-धर्मचारणी बनी प्रेमघन, प्रताप नारायण मिश्र, जगमोहन सिह, के काव्य में स्त्री जागरण एवं स्त्री शोषण का वर्णन हुआ। इस युग के अधिकांश कवियों ने स्त्रियों की विवशता परवशता उसके स्वाभिमान को उजागर

* शोध छात्रा, डी. एस. बी. परिसर, नैनीताल (उत्तराखण्ड) भारत। E-mail : ppoonam782@gmail.com

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

किया। भारतेन्दु युग के कवियों ने नारी के शौर्य रूप का वर्णन किया है। नारी जाागरण नारी सप्राणता मानवीयता गतिशीलता भावप्रवणता एवं व्यक्तित्व धारिणी का स्वरूप चित्रित किया है।

द्विवेदी युग जिसे जागरण सुधार काल के नाम से सम्बोधित किया जाता है, इस काल में नारी समस्या को चित्रित किया गया है। इस काल के कवियों ने अनमेल विवाह, विधवा विवाह आदि, समस्याओं को प्रस्तुत किया है। नाथूराम शर्मा शंकर श्रीधर पाठक, मैथलीशरण गुप्त आदि कवियों ने नारी जागरण का कार्य किया है। आलोच्य काल में हरिऔध जी ने प्रियप्रवास यशोदा में नारी के विभिन्न घटनाओं का वर्णन किया है। एक स्थान पर यशोदा का विरह वर्णन इस प्रकार है, ''प्रिय पति, वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है। दुख जलनिधि डुबी का सहारा कहाँ है। देख मुख जिसका मैं आज लौ जी सकी हूँ। वह हृदय हमारा नैन तारा कहाँ है। पल-पल जिसके में पन्थ को देखती थी। निशिदिन जिसके ही ध्यान में भी बिताती। उर पर जिसके है शोभती मुक्त माला। वहनवन नलिनी से नैनन वाला कहाँ है।''[3]

मैथिलीशरण गुप्त के प्रसिद्ध काव्य साकेत में नारी को आदर्श रूप में प्रस्थापित किया है। नथूराम शर्मा शंकर को कविताओं में विधवाओं का एवं अछूतों का दारूण दुःख और बाल विवाह प्रथा पर किया तीखा व्यंग दिखाई देता है। सत्यनारायण कविरत्न ने नारी शिक्षा सम्बन्ध में कविता के द्वारा अपने विचारों को व्यक्त किया है। नारी शिक्षा के संदर्भ में भ्रमरदूत की यशोदा कहती है, ''नारी शिक्षा निरादरत जे लोग अनारी,/ ते स्वदेश अवनति प्रचंड पातक अधिकारी,/ निरखि हाल मेरो प्रथम लेउ समझी सब कोई,/ विद्या बल लहि मति परम अवला सबला कोई।''[4]

छायावाद में प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी वर्मा ने नारी के करूणा रूप को समझा है। स्त्री के कोमलता एवं शालीनता के संदर्भ में महादेवी वर्मा कहती है, स्त्री की कोमलमयी सदाशयता और सहानुभूति समाज एक संतत जीवन के लिए शीतल अनुलेप का कार्य करता है। महादेवी वर्मा का काव्य उनका व्यक्तिगत एवं एक नारी का मानसिक संधर्ष अभाव समस्याग्रस्त जीवन का दस्तावेज है। महादेवी वर्मा के गीतों में चित्रित नारी का विरह रूप एवं प्रमिका का समर्पित रूप समस्त नारी के मन को केन्द्र में रखा है। विधवा के अन्तर्मन खोलकर रख दिया है। विधवा कविता में विधवा नारी का दर्द भरा दुखद जीवन उसकी करूण कहानी अधुरी प्यास को दर्शाया है। जयशंकर प्रसाद ने नारी के अंतर्मन को खोलकर समाज के सामने रख दिया है। कामायनी काव्य में नारी का जितना विषद्, व्यापक मनोवैज्ञानिक एवं दार्शनिक चित्रण हुआ है, उतना अन्य कविता में दुर्लभ है। जयशंकर प्रसाद ने अपने नाटकों में अनेक गीत लिखे हैं, जिसमें विरह व्यथा दिखाई देती है, जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में नारी के विविध रूपों को चित्रित किया है। कामायनी में कवि श्रद्धा के माध्यम से नारी के दया, माया, ममता, त्याग, क्षमा आदि रूपों को चित्रित किया है। कामायनी में प्रसाद का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण आधुनिक है। प्रसाद जी ने अपने अन्य नाटकों में सज्जन, कल्याणी, राजश्री, अजातशत्रु, स्कन्दगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि में सजीव और सबल तथा कोमल और संगीतमय स्त्री पात्रों की सृष्टि की है जो आपनी ममता की दृढता और त्याग के तेज से सबलों की आशा को फीकी कर देती है। प्रसाद ने स्त्री पात्र बाह्य संघर्ष के साथ अन्तर्दन्द्व से लड़ते हैं। ''जयशंकर प्रसाद के नाटकों की स्त्रियाँ बुद्धि सम्पन्न ऐसी नारियाँ हैं; जो अपनी मान्यताओं को सही सिद्ध कर सकती हैं। जिसकी सोच व्यापक है जो अपने विचार अपने चिन्तन से प्रेम करती हैं। अधिक सुलझी हुई हैं और अपनी आस्मिता के प्रति आस्थावान है, स्वेच्छाचारित की पुष्टि नहीं करती हैं।''[6] सुमित्रानन्दन पंत ने ग्रामयुवती में ग्रामीन युवती का शोषण अभिव्यक्त किया है। शिवमंगल सिंह सुमन ने गुनिया का यौवन में विधवा की स्थिति को स्पष्ट किया है। हिन्दी कवियों ने नारी को बहन के रूप में चित्रित किया है। रामकुमार वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान, हरिकृष्ण प्रेमी, मैथिलीशरण गुप्त आदि कवियों ने बहन के त्याग, बलिदान उसकी सूझ-बूझ आदि के सन्दर्भ में उत्कृष्ट रचनाएँ की हैं। छायावादोत्तर काल को प्रगतिवाद नाम से पहचानते हैं। प्रस्तुत युग वैविध्यपूर्ण युग माना जाता है। इस युग में राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा, वैय्यक्तिक प्रगीत कविता उत्तर छायावाद प्रगतिवादी धारा आदि के रूप में काव्य रचनाएं लिखी गई जिसमें नारी जागरण को महत्व दिया गया है। 1936 में प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ साहित्य में एक नया प्रवाह आया। जिसने नारी अस्तित्व एवं नारी स्वतंत्रता को प्रधानता देने को प्रयास किया, प्रगतिवाद में नागार्जुन केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन प्रमुख कवि रहे हैं। नागार्जुन में नारी के वात्सल्य एवं प्रेममय रूप का चित्रण किया है। वही नारी शोषण के प्रति भी अपनी कलम चलाई है। प्रयोगवाद के अंन्त में नारी तुम एक पिपासा हो, कहकर उसे तृष्णा माना है। हरिवंश बच्चन ने नागिन, प्रेमी, जादूगरनी आदि कविताओं में नारी के सन्दर्भ में विचार व्यक्त किए है। नारी को नारी मात्र मानने वाले में केदारनाथ अग्रवाल गिरिजा कुमार माथुर अंचल जैसे कवियों ने प्रान्तीय धारणा को लेकर रचनाएँ की हैं। नारी के मनोविज्ञान को परखने का प्रयास

अज्ञेय जी ने किया है। अज्ञेय ने चिन्ता की भूमिका में नारी सम्बन्धी विचारधारा को स्पष्ट किया है। नारी की सामर्थ्य शक्ति और पुरूष का पौरूषतत्व दोनों ही जीवन के लिए महत्वपूर्ण है। जो भारतीय स्त्री चेतना का सकारात्मक आधार है। अज्ञेय ने प्रेम प्रणय का चित्रण भी मनोविश्लेषण विज्ञान को ध्यान में रखकर किया है। सदियों से जकड़ी नारी को मुक्त कराने का प्रयास इस युग में हुआ है। प्रगतिवादी कवि नारी के प्रति सुधारवादी दृष्टिकोण रखते हैं। परंपरागत रूपों में नारी को निकालकर उसे मानवी के रूप में प्रतिष्ठित करने का कार्य प्रगतिवाद, प्रयोगवाद में हुआ है।

स्वातंत्र्योत्तर कालखण्ड में नारी जागरण हेतु अनेक स्त्री लेखिकाओं ने नारी को अपने कविता का केन्द्र बनाया है। 1960 के बाद अनेक कवियों ने नारी संधर्ष एवं नारी मुक्ति को लेकर कविताए की है। जिसमें स्नेहमयी चौधरी इन्दुजैन, चम्पा, वैद्य मणिक मोहिनी मोना गुलारी, अनामिका, सविता सिंह आदि के नाम आते हैं। इन्दू जैन तथा चंपा ने वैद्य की कविताओं में नारी की मन स्थिति को चित्रित करने का प्रयास किया है। मणिक मोहिनी के प्रेमप्रहार, मेरा मरना, कटघरे में और मोना गुलाटी के माध्यम से यौन शोषण को प्रस्तुत किया है। अनामिका ने नारी को स्वयं पहचान बनाने का उपदेश दिया है। स्वातंत्र्योत्तर कविता में पुरूष सत्तात्मक समाज में जीवन के विविध स्तरो पर पीड़ित व शोषित मध्यवर्गीय नारी की समस्याओं का आत्मीय सरोकार है, रूढियों और संकीर्णताओं की भर्त्सना करते हुए नारी में चेतना एवं जागरूकता लाने का प्रयास प्रभा खेतान ने किया है। उपन्यासों में नारी मन का आक्रोश नारी समस्याएं नारी शोषण और नारी मानसिकता में आये बदलाव को चित्रित किया है। कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, शिवानी, सूर्यवाला, मृणाले पाण्डे, मालती जोशी, मंजुल भगत, सुनिता जैन, नासिरा शर्मा प्रभा खेतान मैत्रिय पुष्पा राजी सेठ ऊषा प्रियंवदा आदि स्त्री लेखिकाओं ने नारी को इन्साफ देने का प्रयास किया है। इन लेखिकाओं ने परम्परागत जीवन मूल्य एवं आधुनिक जीवन मूल्य के बीच संघर्षरत नारी की मानसिकता को प्रमुखता दी है। नारी शोषण और शोषण मुक्ति के प्रयासों को उपन्यास का विषय बनाया है। हिन्दी कहानी क्षेत्र में कतिपय महिला कहानीकारों का उल्लेख मिलता है। जिन्होंने नारी की समस्याओं को स्वानुभूति के रूप में चित्रित करते हुए नारी जागृति पर प्रकाश डाला है। स्त्री लेखिकाओं ने स्त्री की आस्मिता को उजागर करने का प्रयास किया है। ''स्वातंत्र्योत्तर दौर की कहानी समाजसुधार के बजाय स्त्री के समाजिक अधिकार इच्छाशक्ति और प्रतिरोध की तरजीह है।''[7] वहीं राजी सेठ की कहानी अपने विरूद्ध में नारी समर्पण के भावों की अभिव्यक्ति मिलती हैं। ''राजी सेठ की कहानियों में स्त्री के उस रूप से साक्षात्कार होता है, जो रिश्ते के नाम पर अब किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं है, और विवाह उसके जीवन की अंतिम परिणति नहीं है।''[8] सभी लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में भारतीय परिवेश में अपनी मुक्ति के लिए छटपटाती नारी का चित्रण किया है। इस चित्रण में कुछ लेखिकायें जो सच्चे भाव से स्त्रीवादी हैं, जिसके कारण उनके स्त्री पात्र अक्सर विद्रोह करते हैं। इस दृष्टि से मणिका मोहिनी की कहानियाँ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके स्त्री पात्र 'बोल्ड' हैं। वे परंपरागत भारतीय नारी की तरह पति को अपनी अंतिम नियति मार कर झेलती नहीं है। बल्कि उसके साथ बराबरी का रिश्ता बना कर, मित्रवत् रहना चाहती है। अगर यह संभव नहीं होता तो उसे पति का परित्याग करने और स्वतंत्र जीवन जीने से कोई नहीं रोक सकता। उनकी अधिकांश कहानियां इसी मूल काव्य के विभिन्न रूप और विभिन्न आयाम प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियों का कथ्य उनका वैचारिक निष्कर्ष नहीं है, अपितु उनकी स्वानुभूत सत्य है।'' ''हिंदी की सभी लेखिकायें मध्यमवर्गीय परिवारों से संबद्ध हैं, इसलिए उनकी कहानियों में प्रधानता इसी वर्ग के स्त्री पात्रों की है; और उनकी समस्यायें भी प्रायः इसी वर्ग की हैं। लेकिन लेखिकाओं ने अपनी कहानियों में वेश्याओं, मेहनत - मजदूरी करने वाली स्त्रियों, तस्करी और लड़कियों से धंधा करनवाने वाली स्त्रियों आदि का भी चित्रण किया है। मेहरून्निसा परवेज ने अपनी कहानियों में आदिवासी स्त्रियों और महानगरों में झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाली स्त्रियों का चित्रण किया है। अलका सरवगी ने अपनी कहानियों में महानगर के सामंतीय मूल्यों वाले परिवारों की स्त्रियों का चित्रण किया है। उनकी कहानियों के कुछ स्त्री पात्र सामंती मूल्यों को स्वीकार करके उनके अनुसार जीने की कोशिश करते हैं, वे विद्रोह नहीं करते, अंदर ही अंदर घुटते रहते हैं। इनके विपरीत कुछ स्त्री पात्र सामंती मूल्यों को स्वीकार नहीं करते, उन्हें चुनौती देते हैं, लेकिन उन मूल्यों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाते, क्योंकि हमारे जीवन का यथार्थ तो यही है।''[9] इलाचन्द्र जोशी ने समाज के निम्न मध्यवर्गीय चरित्रों की कुंठित अस्मिता को स्वर प्रदान किया है। ''जोशी जी के स्त्री पात्र पुरूषों की तुलना में सशक्त, गंभीर, संयमी और प्रभावशाली है। उनका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रस्फुटित होता दिखाई देता है। इनके स्त्री - पात्र पुरूषों को प्रभावित करने की अपेक्षा अधिक आन्दोलित दिखाई देते हैं और वे पथभ्रष्ट होने पर विशिष्ट दृष्टिकोण रखने वाली नवयुगीन जागृत नारी भी हैं।[10] हिन्दी साहित्य के विविध विधाओं में नारी को स्थान प्राप्त होता है। एकांकी में

माध्यम से भुवेश्वर, रामकुमार वर्मा और उदयशंकर भट्ट ने नारी जागरण का कार्य किया है। डॉ0 रामकुमार वर्मा की एक्ट्रेस एकांकी की प्रभातकुमारी परीक्षा एकांकी की अल्पवयस्क पत्नी, रेशमी, टाई, एकांकी की ललिता आदि स्त्री पात्रों के माध्यम से लेखक ने आदर्श नारी की कल्पना की है। भुवनेश्वर ने स्त्री के व्यक्तित्व की प्रबलता और नारी के विद्रोही व्यक्तित्व की प्रबलता और नारी के विद्रोही व्यक्तित्व की एकांकियों में स्पष्ट किया है। उदयशंकर भट्ट जी ने यह स्वतंत्रता का युग' एकांकी में मीना के माध्यम से अपनी संस्कृति के आकर्षण में फॅसी नारी का चित्रण किया है। विष्णु प्रभाकर की समरेखा विषमरेखा आदि एकांकियो में स्त्री की विवेकशीलता, नारी की अत्याधुनिकता दहेज प्रथा का दुष्परिणाम क्रूर रीति- रिवाज, अस्तित्व के लिए संघर्ष, नारी का आत्मविश्वास, नारी के शोषण को चित्रित किया है। हिन्दी गीति काव्यों के माध्यम से नारी समस्या को उजागर किया गया है। गीति काव्यों में नारी की स्थिति का दर्शन होता है। विद्यावती कोकिल, सुभद्राकुमारी चौहान, महादेवी वर्मा, शांति सुमन, मधु भारतीय, डॉ0 रमा सिंह, शेरीन भारती आदि महिला लेखिकाओं ने, गीती काव्य रचनाकारों ने सामंती व्यवस्था में जकड़बंद नारी, घर, परिवार के लिए संघर्षरत नारी और नारी की संवेदनशीलता को स्पष्ट किया है।

हिन्दी साहित्य ने आगाज से लेकर आज तक नारी को केन्द्र में रखकर नारी उद्धार का प्रशंसनीय कार्य किया है। हिन्दी साहित्य ने विधवा-विवाह, नारी-शिक्षा, राष्ट्रीय आन्दोलनों में नारी की भूमिका, नारी शोषण, नारी जागरण आदि पर लेखन किया है। आधुनिक काल के साहित्यकारों ने नारी सम्बन्धी विचारों को क्रमबद्व किया है। भारतीय पुरूष-प्रधान समाज में लम्बे अरसे से उपेक्षित, प्रताणित, शोषित, नारी को आधुनिक काल में अंकित किया है। आरम्भ से लेकर आज तक नारी का यथार्थ चित्रण के साथ नारी के यथार्थ रूप को बड़े सजीव रूप में उजागर कर आधुनिक काल ने हिन्दी साहित्य में नारी की प्रगति का रास्ता खोल दिया है।

संदर्भ

[1]भारतीय नारी : दशा-दिशा -आशारानी वोहरा, पृष्ठ संख्या 08
[2]हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ0 माधव सोनटक्के, पृष्ठ संख्या 256
[3]हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या 486
[4]हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या 492
[5]श्रृंखला की कड़िया -महादेवी वर्मा, पृष्ठ संख्या 04
[6]स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम -(सं) डॉ0 ऋषभ देव शर्मा, पृष्ठ संख्या 187- 188
[7]स्त्री साहित्य विमर्श -जगदीश्वर चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या 157
[8]स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम, -(सं) डॉ0 ऋणभ देव शर्मा पृष्ठ संख्या 171
[9]हिन्दी साहित्य का इतिहास -डॉ0 नगेन्द्र, पृष्ठ संख्या 756
[10]स्त्री विमर्श समकालीन चिन्तन -(सं) डॉ0 ऋचा शर्मा, पृष्ठ संख्या 61

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

चतुर्वेदी जगदीश्वर (2002) -*स्त्रीवादी साहित्य विमर्श,* अनामिका प्रकाशन, नई दिल्ली
डॉ0 नगेन्द्र (2005) -*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* मयूर पेपर बैक्स ए-95, नोएडा, 201301
वर्मा महादेवी (1939) -*श्रृंखला की कड़िया,* भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद, 8वां संस्करण
वोहरा, आशारानी (1983) -*भारतीय नारीः दशा-दिशा,* नेशनल पब्लिशिन हाउस नई दिल्ली
डॉ0 सोनटक्के माधव (1992) -*हिन्दी साहित्य का इतिहास,* विश्व बैंक बर्ष कानपुर, प्रा0 सं0
डॉ0 शर्मा ऋचा (2009) -*स्त्री समकालीन चिन्तन,* मध्यप्रदेश राज्य हिन्दी साहित्य, सम्मेलन, सतना, (मध्यप्रदेश)
डॉ0 शर्मा ऋणभ देव (2004) -*स्त्री सशक्तिकरण के विविध आयाम,* गीता प्रकाशन, प्रथम तल, 4-2-771, गीत भवन हैदराबाद
डॉ0 शर्मा शिव कुमार (2010) -*हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां,* अशोक प्रकाशन 2615 नई सड़क, दिल्ली

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2016) 10,156-159
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 04 अक्टूबर 2016

कवि जायसी की रचनाओं में नारी विमर्श

डॉ. अंशुमाला मिश्रा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कवि जायसी की रचनाओं में नारी विमर्श* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अंशुमाला मिश्रा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

कवि जायसी की महत्त्वपूर्ण रचना पदुमावति में जायसी ने लौकिक चित्रण के साथ-साथ परमात्मा के स्वरूप का भी वर्णन किया है। ईश्वर की उपासना पर आधारित खण्ड का नाम स्तुति खण्ड है। पुस्तक के द्वितीय खण्ड का नाम सिंहलद्वीप वर्णन खण्ड है जिसमें कवि जायसी ने सिंहलद्वीप की जलवायु का वर्णन किया है। सिंहलद्वीप का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं, ''मानहुँ मै न मूरति सबअछरीं वर न अनूप। जिन्ह की ये पनिहारी सो रूनी केहि रूप।।''[1] अर्थात् यहाँ जायसी पनिहारियों की शोभा का वर्णन कर रहे हैं। मध्यकाल में पानी भरने वाली स्त्रियाँ भी अद्‌भुद् सौन्दर्य की स्वामिनी होती थीं, यह उस काल का स्त्रियों के सुन्दर स्वास्थ्य को दर्शाता है। इसी प्रकार आगे उन्होंने सिंहलद्वीप की वेश्याओं का वर्णन भी किया है- पुनि सो सिंगार हाट धनि देसा। कई सिंगार बैठी तहाँ पेशा[2]; अर्थात् वहाँ की वेश्यायें धन-धान्य से समृद्ध थीं। उनकी रचना में वेश्याओं की वेष-भूषा का अद्‌भुद् वर्णन यह दर्शाता है कि मध्यकाल वेश्यावृत्ति का भी चलन था। आगे कवि ने मालिन स्त्रियों का भी वर्णन किया है- लै लै फूल बैठे पुलहारी। पान अपूरब धरे अँवारी[3] अर्थात् फूल लेकर फूल बेचने वाली मालिने बैठी हैं ताम्बूल गंध सुगन्धित द्रव्य की बिक्री करना यह दर्शाता है कि स्त्री भी मध्यकाल में व्यवसाय किया करती थीं।

जायसी ने सिंहलद्वीप वर्णन के अंतिम दोहे में कहा, ''बरनौ राज मंदिर रनिवासू। अछरिन्ह भरा जानु कबिलासू। सोरह सहस पदुमनि रानी।[4] अर्थात् राजभवन का रनिवास अप्सराओं से भरे हुए कैलाश (स्वर्ग) के समान है। उसमें सोलह हजार पद्‌मिनी जाति की रानियाँ हैं ये रानियाँ सभी द्वीपों से चुनकर लायी गयी हैं। उन सभी रानियों में चम्पावती रानी प्रधान रानी है। वह सभी रानियों में अद्वितीय है। ये बातें मध्यकाल के राजपरम्परा में राजाओं के बहुविवाह एवं स्त्री अपहरण की ओर संकेत करती हैं।

जायसी ने जन्मखण्ड में बताया कि पदुमावति अपनी माँ चम्पावती के गर्भ में है और उसके रूप की छाया से चम्पावती अधिक रूपवती हो गयी है- ''चम्पावति जो रूप उतिमाहा। मदुमावति कै ज्योति कै छाहाँ।''[5] एवं ''भए दस माँसपूरि भै धरी।

* एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, जगत तारन गर्ल्स डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2016, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

पदुमावति कन्यां औतरी।''[6] अर्थात् दस माह पूर्ण हो जाने पर पद्मावती का कन्या के रूप में जन्म लेने का वर्णन है। वह कन्या इतना रूप लेकर उत्पन्न हुई थी कि कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। ये वर्णन स्पष्ट करता है कि मध्यकाल में स्त्री की बुद्धि का अपेक्षा रूप को अधिक महत्त्व दिया जाता था। पण्डित द्वारा यह निर्णय किया जाना कि ''कन्या सिंहलद्वीप में उत्पन्न हुई और जम्बूद्वीप में लोकलीला करेगी'' स्पष्ट करता है कि मध्यकाल में पुत्र-पुत्री के जन्म पर समान रूप से पण्डित विचार किया करते थे। अर्थात् कन्या की भी जन्मपत्री बनायी जाती थी- अही जनमपत्री सो लिखी। दै असीस बहुरे ज्योतिषी।[7]

जायसी लिखते हैं, ''बारह बरिस माँह भइ रानी। राजैं सुना सँयोग सयानी।''[8] अर्थात् 'बारह वर्ष की अवस्था में वह रानी हो गयी अर्थात् वह युवती हो गयी और राजा ने सुना कि वह विवाह योग्य सयानी हो गयी' यह वर्णन स्पष्ट करता है कि मध्यकाल में स्त्री के विवाह की उम्र मात्र 12 वर्ष ही निर्धारित थी अर्थात् बाल-विवाह का प्रचलन था। जायसी ने जन्म खण्ड के 55, 56 दोहों में पदुमावति के रूप सौन्दर्य की विभिन्न रसों के माध्यम से प्रशंसा की है जो स्त्री के रूप पक्ष को प्रस्तुत करता है। आगे जायसी कहते हैं कि-

राजा ने यह सुना कि जो चतुर सुआ पदुमावति के साथ रहता है वह उसे मन्त्रणा देता है तो उसकी दृष्टि बदल गयी। ''राजै सुनाँ दिष्टि भई आनाँ। बधि जो देर्द संग सुआ सयाना।''[9]

स्पष्ट है कि मध्यकाल में विवाह पूर्व युवतियाँ सुन्दर एवं योग्य वर ही चुनती थीं इसके लिए वो किसी दूत अथवा सहयोगी मित्र के माध्यम से मन्त्रणा भी करती थीं।

जायसी आगे कहते हैं कि- रानी ने शुक को छिपा दिया और पिता से कहा[10] की आप की आज्ञा मानना मेरा परम कर्त्तव्य है पिताजी कोई शुक ज्ञानवान नहीं होता नाऊ बारी ऐसा उत्तर पाकर लौट गये किन्तु तोता डर गया। यह स्पष्ट है कि मध्यकालीन स्त्री में वन्य जीव जन्तु के प्रति भी प्रेम था वह उसकी रक्षा के लिए पिता से भी असत्य बोलना गलत न समझती थी। एवं साथ ही स्पष्ट है कि तत्कालीन स्त्रियों के ऊपर पिता का कड़ा अनुशासन रहता था। इस घटना से तोते के हृदय में खटका बना हुआ था कि अभी काल (मृत्यु) आ जायेगी।

जायसी ने मानसरोदय खण्ड में स्पष्ट किया है कि रानी पदुमावति की सेवा में अनेक सखियाँ लगी रहती थीं- पदुमावति सब सखी बोलाई जनुफुलवारि सबै चलि आई।''[11]

सखियाँ पदुमावति से कहने लगीं कि पिता के घर में चार दिन रहना है पुनः कल हमें श्वसुर घर जाना है फिर यह स्वतन्त्रता यह खेल हमें दोबारा कब मिलेगा। ससुराल से लौट कर आना भी हमारे हाँथों में नहीं होगा। सास ननद की कठोर बोली हमारा प्राण हर लेगी और सुसरजी की कठोरता हमें मायके वापस आने नहीं देगी। और यह भी नहीं पता कि जिस पति को हम सबसे ज्यादा प्यार करेंगे वह पति कैसा होगा वह सुख से रखेगा या दुःख से, वह जन्म भर साथ निभायेगा या नहीं' जायसी इन कथनों के माध्यम से मध्यकालीन स्त्रियों की व्यथा कथा कहते हैं। आगे के दोहे में जायसी पुनः पुदमावति के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हैं।

जायसी ने आगे सुआ खण्ड में वर्णन किया है कि सुआ किस प्रकार अपनी जान बचाने के लिए संघर्षरत हैं रानी पदुमावति अपने तोते के कष्ट से दुःखी है।

जायसी ने रतन सेन जन्म खण्ड में रत्नसेन के जन्म एवं उनकी माता के धन्य भाग्य का वर्णन किया है। ज्योतिर्विदों ने बताया कि पदुमावति के साथ उसकी जोड़ी लिखी हुई है। बनिजारा खण्ड में हीरामन तोता ब्राह्मण से कहता है ''हे ब्राह्मण देवता जब मैं पिंजरे से मुक्त हुआ तो मेरे अन्दर गुण था अब मैं बंदी हूँ[12]'' स्पष्ट है कि मध्यकाल में स्त्री स्वेच्छा से एक तोता भी पाल पाने का अधिकार नहीं रखती थी उसे भी दर-दर की ठोकरें खाने के लिए उड़ा दिया जाता था।

जायसी ने नागमती सुआ खण्ड में वर्णन है कि रानी शुक से पूछती है जगत् में मेरे समान और कोई है- 'है कोई एहि जगत महँ मोरें रूप समान।'[13] अर्थात् मध्यकाल में स्त्री में अन्य किसी बात का अभिमान हो न हो सौन्दर्य का अभिमान अवश्य रहता था। ईर्ष्या द्वेष के भाव उनके मन में अवश्य होते थे। नागमती का पदुमावति के प्रति असीम द्वेष दिखाई देता है इससे स्पष्ट है कि मध्यकाल में जब राजा कई विवाह कर लेते थे उन विवाहित स्त्रियों का आपस में प्रेमभाव नहीं रहता था। नागमती जो चांद के समान उज्जवल थी पति पर क्रोध करने के कारण ऐसी हो गयी थी जैसे चांद पर ग्रहण लग गया हो- 'चाँद जैस धनि उजियरि अही। भा पिउ रोज गहन अस गही।'[14]

दासी के कथन पर ध्यान दें- दासी रानी से कहती है जो अपने प्रियतम के आज्ञाधीन रहता है और उसके समक्ष कमजोर बना रहता है वही चन्द्रमा के समान सुन्दर बना रहता है जन्म भर मलीन नहीं होता- 'रहै जो पिउ के आएसु औ बरतै होई खीन सोई दीख चाँद अस निरमर जरम न होई मलीन।'[15]

स्पष्ट है कि मध्यकाल में स्त्री को पति के अधीन रहना होता था, उनका अपना कोई व्यक्तिगण निर्णय नहीं होता था। रानी थक कर राजा से कहती है- 'तुम्ह सो कोई न जीता हारे बररूचि भोज पहिले आयु जो खावै करै तुम्हारा खोज।'[16] अर्थात् रानी कहती है मैंने तुम्हारे मन का मर्म जानना चाहा पर असफल रही, हे प्रिय मैं समझती थी तुम मेरे हो पर पता चला तुम बहुतों के हो। अब क्या रानी क्या दासी, जिस पर तुम प्रेम प्रकट करो वही अच्छी है। तुम्हें पाने के लिए जो अपना अहंकार नष्ट कर दे वही तुम्हें पा सकती है। ये बातें भक्तिकाल की स्त्री की विवशता एवं अधीरता को अभिव्यक्त करती है। राजा-सुआ-संवाद खण्ड में जायसी ने तोते के मुख से प्रेम की व्याख्या करवायी है। नख शिख खण्ड में हीरामन तोता पदुमावति के श्रृंगार का वर्णन करता है। नख शिख वर्णन सुनकर राजा मूर्छित हो जाता है। तब जायसी प्रेम खण्ड का वर्णन आरम्भ करते हैं। राजा पदुमावति के प्रेम में जोगी हो गया है ऐसा वर्णन जायसी ने जोगी खण्ड में किया है। जायसी ने राजा- गजपति संवाद खण्ड भी बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णित किया है। बोहित खण्ड में राजा कहता है मैंने प्रेम किया है इसमें कुशल क्षेम कहाँ होता है। मैं सात आकाशों पर चढ़कर उस मार्ग में दौड़ूँगा। जिस मार्ग पर मुझे पदुमावति मिल जाय- 'सप्त पतार खोज जस काढ़े बेद गरंथ सात सरग चढ़ि धावौं पदुमावति जेहि पंथ।'[17] अर्थात् स्त्री का महत्त्व चाहे एक स्त्री के रूप में हो न हो भक्तिकाल में स्त्री का महत्त्व प्रेम की देवी के रूप में अवश्य था जिसे पुरूष किसी भी हद तक जाकर प्राप्त कर लेना चाहता था।

सात समुद्र खण्ड में राजा ने सत्य को हृदय में बांध लिया है ऐसा वर्णन किया गया है। हीरामन तोता राजा से कहता है इसी समुद्र में आकर सबका सत्य डिग जाता है। और सभी को गुरू का सहारा लेना पड़ता है। पुनः सिंहलद्वीप खण्ड का वर्णन है। राजा तोते से कहता है मुझे पदुमावति का किसी प्रकार दर्शन मिल जाय। राजा रत्नसेन पदुमावति के विरह में बावला है। मण्डप गमन खण्ड में जायसी ने इन्हीं बातों का वर्णन किया है।

जायसी ने पदुमावती वियोग खण्ड में वर्णन किया कि राजा के योग से पदुमावति भी प्रेम के वशीभूत होकर वियोग का अनुभव करती है- 'पदुमावति तेहि जोग संजोगा। परी प्रेम बस गहे वियोगौ।'[18]

रानी पदुमावति बहुत ही समझदार एवं बुद्धिमती थी इस खण्ड के अध्ययन से ज्ञान होता है। पदुमावति सुआ भेंट खण्ड में जायसी ने वर्णित किया है कि एक बार पुनः पदुमावति की भेंट अपने सुग्गे से होती है। यह मध्यकाल की स्त्री के मन में प्रकृति एवं जीव प्रेम को प्रदर्शित करता है। हीरामन तोते के मुख से राजा की प्रशंसा सुनकर रानी पदुमावति का अभिमान जागृत हो उठता है वह कहती है जब सोने को गरम करके कसौटी पर कसा जाता है तभी पता चलता है वह पीला है या लाल। ये बातें स्पष्ट करती है रानी पद्मावती अहंकारिणी तो थी पर बुद्धिमती भी थी। बसंत खण्ड में जायसी ने बसंत ऋतु का वर्णन किया है। पदमावति महादेव के मंदिर में जाकर कहती है- 'बर संजोग मोहि मेरवहु कलस जाति हौ मानि। जेहि दिन इंछ्या पूजै बोगि चढ़ावौ आनि।'[19]

अर्थगत् हे देव मुझे मेरे योग्य वर से मिला दो। पद्मावति की यह उक्ति स्पष्ट करती है मध्यकाल में विवाह एक अनिवार्य संस्कार था जो सभी स्त्रियों का होता था, बस अंतर उनकी पद्धतियों में होता था। विवाह में दहेज भी दिया जाता था। स्पष्ट है इसी से आगे चलकर दहेज-प्रथा को बढ़ावा मिला।

जायसी ने राजा रत्नसेन सती खण्ड में पदुमावति की विरह व्यथा का वर्णन किया है। राजा सती होना चाहता है। जायसी ने पार्वती महेश खण्ड में वर्णन किया है। कि महेश पार्वती एक साथ राजा से उसका वियोग वर्णन पूछते हैं। गौरी राजा की परीक्षा भी लेती हैं। प्रस्तुत काव्य में जायसी राजा को विभिन्न माध्यमों से प्राण त्याग करने की इच्छा व्यक्त करते दिखाया है। अन्ततः लग्न निश्चित कर रत्नसेन एवं पदुमावति के विवाह का भी वर्णन जायसी ने किया है। प्रेम में जहाँ एक ओर रानी पदुमावति की जीत होती है वहीं नारी नागमती की पराजय भी दृष्टिगत है। सात फेरों के माध्यम से होने वाले विवाह से दृष्टिगत होता है कि मध्यकाल में विवाह की पद्धति प्राचीन परम्परा से चली आ रही थी उसी की अनुपालन किया जाता था। विवाह के अवसर पर स्त्री-धन देने की बात भी स्पष्ट होती है। विवाह के उपरान्त रानी राजा के भोग का वर्णन जायसी ने बड़ी ही

कमनीयता से किया है। जायसी ने नागमती वियोग खण्ड में चित्तौड़ में अपने प्रवासी पति की बाट जोहती स्त्री नागमती का वर्णन किया है- 'नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए फिर किन्ह न फेरा।'[20]

रानी नागमती कहती है। किसने हमारे जोड़े का अपहरण कर लिया है। ये पंक्तियाँ भक्तिकालीन उन सभी स्त्रियों की व्यथा का वर्णन करती हैं जिनके पती परस्त्री में अनुरक्त हो जाते थे। जायसी ने वर्णन किया है कि लापरवाह राजा रत्नसेन की याद में उसकी माँ भी बूढ़ी हो गयी थी- 'रतनसेन कै माइ सुरसती। गोपिचंद जसि मैनावती। आंधरी बूढ़ि सुतहि दुख रोवा।'[21]

राजा रत्नसेन की विदाई का वर्णन भी जायसी ने बड़ी सरसता से किया है। जायसी ने देशयात्रा खण्ड में पदुमावति एवं रत्नसेन के वियुक्त हो जाने का वर्णन किया है।

जायसी ने स्त्री भेद वर्णन खण्ड में स्त्रियों के अनेक भेदों का वर्णन किया है। आगे के खण्डों में राजा रत्नसेन के प्रमुख युद्धों का भी वर्णन है। आगे रत्नसेन बंदी भी बनाया जाता है। आगे जायसी नागमती एवं पद्मावती का सामूहिक विलाप भी प्रस्तुत करते हैं। प्रस्तुत काव्य में प्रमुखतः दो नारी पात्रों के जीवन को वर्णित किया गया है। एक पदुमावति द्वितीय नागमती। यदि इनके सन्दर्भ में स्त्री विमर्श को विस्तार से आयाम देना हो तो ग्रन्थ के मौलिक दोहों का अध्ययन अवश्य करें।

संदर्भ ग्रंथ

[1]पदुमावति, सिंहलद्वीप वर्णनखण्ड, दोहा 32, पृ. 30
[2]पदुमावति, सिंहलद्वीप वर्णनखण्ड, दोहा 38, पृ. 34
[3]पदुमावति, सिंहलद्वीप वर्णनखण्ड, दोहा 39, पृ. 35
[4]पदुमावति, सिंहलद्वीप वर्णनखण्ड, दोहा 49, पृ. 44
[5]पदुमावति, जन्मखण्ड, दोहा 50, पृ. 46
[6]पदुमावति, जन्मखण्ड, दोहा 51, पृ. 47
[7]पदुमावति, जन्मखण्ड, दोहा 52-53, पृ. 48-49
[8]पदुमावति, दोहा 54, पृ. 49
[9]पदुमावति, दोहा 56, पृ. 51
[10]पदुमावति, जन्मखण्ड, दोहा 56-57, पृ. 51-52
[11]पदुमावति, मानसरोदकखण्ड, दोहा 59-60, पृ. 54-55
[12]पदुमावति, बनिजारा खण्ड, दोहा 66, पृ. 61-62
[13]पदुमावति, नागमती सुआ खण्ड, दोहा 83-84, पृ. 66
[14]पदुमावति, नागमती सुआ खण्ड, दोहा 89, पृ. 82
[15]पदुमावति, नागमती सुआ खण्ड, दोहा 90, पृ. 83
[16]पदुमावति, नागमती सुआ खण्ड, दोहा 91, पृ. 84
[17]पदुमावति, बोहित खण्ड, दोहा 149, पृ. 132
[18]पदुमावति, पदुमावति वियोग खण्ड, दोहा 168, पृ. 148
[19]पदुमावति, बसंत खण्ड, दोहा 191, पृ. 167
[20]पदुमावति, नागमती वियोग खण्ड, दोहा 241, पृ. 286
[21]पदुमावति, नागमती संदेश खण्ड, दोहा 362, पृ. 303

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

प्रकाशन
अन्य एम.पी.ए.एस.वी.ओ. पत्रिकाएँ
सार्क अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका
www.anvikshikijournal.com

अन्य सहसंयोजन
एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
अर्द्धवार्षिक पत्रिका
www.ajmams.com

www.anvikshikijournal.com

ISSN 0973-9777
09739777
₹ 1300/-